All rights reserved

प्राकृत भारती अकादमी
क्रमांक 18214
जयपुर

राजविद्या

श्रीशंकरोक्ता

संसारसन्मार्गशिक्षा

उदय आर्ट प्रिण्टिंग प्रेस,
जोधपुर

॥ राजविद्या ॥

श्रीशंकरटीका

क्रमांक 18214
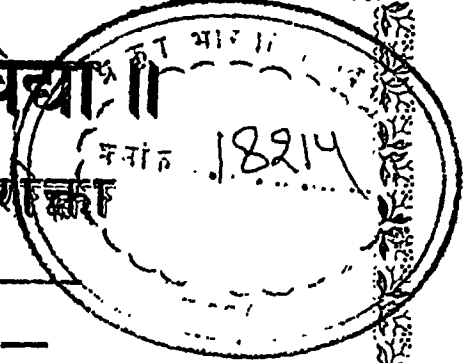
प्रकाशकः—

रावराजा श्रीगुलाबसिंहः ।

(ज्येष्ठपुत्र रावराजा श्री बड़े तेजसिंहजी साहब)

अन्वेशकः—

स्वामीलालपुरी शिवपुरी ।

संस्कृत पद्यरचिता भाषानूवादकश्च—

प्राप्तस्वर्णपदक आशुकवि कविराज पं० रविदत्त

शास्त्री आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरिः

प्रबन्धको मुद्रकश्च ।

भट्टारक राजवैद्योपाध्याय पं० उदयचन्द्रः

उदयआर्ट मुद्रणालयाध्यक्षः

योधपुरम् ।

प्रथमा वृत्तिः] विक्रम संवत् १९८९ { मूल्य ७) रु

{ सजिल्द ८) रु.

ALL RIGHTS RESERVED.

सर्वाधिकाराः स्वायत्ताः

पुस्तक मिलने का पता—

रावराजा गुलाबसिंह

जोधपुर (राजपूताना)

❀ श्रीः ❀

(प्राक्कथन)
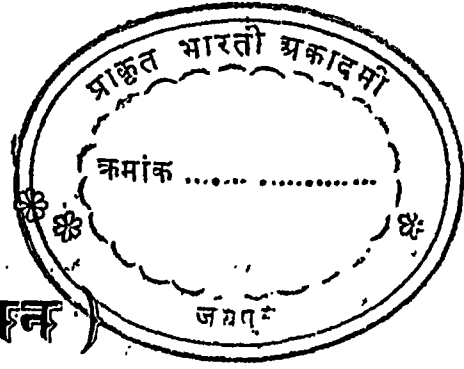
सच्चिदानन्द स्वरूप उस परब्रह्म परमात्माने अपनी आंशिक माया का विभागकर अनादि काल से समस्त ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। जिसमें भिन्न २ लोकोंकी विभिन्न पदार्थों की, पृथक् २ तत्वो की, अन्य २ जीवों की अनुपम रचना कर अनन्य चारु चमत्कार दिखाया है। मानव लोक में जिसने उत्तम २ भूमि, वड़े २ पर्वत, सघन गहन कानन, अनेक सागर, वड़ी वड़ी नदियां अनन्त वनस्पतियां, दर्शनीय झरने और इसी प्रकार असंख्य जीव योनियों का अवर्णनीय दृश्य दृष्टि गोचर कराया है। उसमें भी आंशिक कर्म वन्धन की श्रेष्ठ श्रेणीद्वारा सवसे अधिक श्रेय मानव देहने ही पाया है। अतः संसार में मनुष्यों की सुख, शान्ति, और स्थिति को स्थित रखने के निमित्त भूमि के भिन्न भिन्न प्रदेशों में राज्य स्थापना का उपदेशामृत भगवान् नेअपनी शांकरी मूर्तिद्वारा इस राजविद्या के रूप में पार्वतीजी को पान कराया है जिसको योग द्वारा विष्णु भगवान् ने ग्रहण किया पुनः तत्कालीन चक्रवर्ति राजा सूर्य ने प्राप्तकर मनु आदि राजर्षि क्षत्रियों को उपदेश प्रदान किया। जिसके ज्ञानके प्रबल वल से भासुर हुए भूपति वृन्द सुख, शान्ति तथा स्थिति की स्थापना कर चिरकाल पर्यन्त गौरवान्वित होते हुए संसार पर श्रेष्ठ शासन करने के अनन्तर अपने विशाल कीर्तिस्तम्भको चिरस्थायि वनागये हैं।

इक्ष्वाकु, मनु, दिलीप, अज, रघु, दशरथ, रामचन्द्र आदि २ प्रचण्ड प्रतापी शासकों का शासन काल, प्रजा के मध्य में सुख शान्ति और स्थिति को विद्यमान रखने के कारण ही भूलोक को सुरलोक की समता से समलंकृत किया करता था। उस समय राजविद्या के उपदेशानुसार न्याय तथा रक्षा का यथोचित प्रवन्ध होने से प्रजा अपने शुभ कार्यों में लगी हुई निर्विघ्न राज्य में प्रमुदित रहा करती

थी। एवं भूपति वृन्द भी स्वकीय शुभ कार्यों में निरत हुए निःशङ्क शासन किया करते थे। यही कारण था कि उस समय के मानवों का कर्म बन्धन विशुद्ध बनता था, शारीरिक तथा मानसिक समुन्नतिको आदर्श बनाते थे जिसके उपाख्यानों से आज प्राचीन भारत वर्ष का इतिहास भरा पड़ा है।

जिस प्रकार हमारे प्राचीन भारत के अनेकों आदर्श ग्रन्थ रत्न जिनका कि आज नाम तक सुनने में नहीं आता समय की विकृत गति के अनुसार विलुप्त होचुके हैं उसी प्रकार क्षत्रियों की प्रधान धार्मिक पुस्तक श्रीराजविद्या भी संसार की आखोंसे ओझल होगई थी।

सौभाग्य से स्वामी लालपुरी ने इस राजविद्या नामक पुस्तक को जो कि हस्त लिखित प्राकृत गद्य में थी जिसे उक्त स्वामी जी आदि महोदयों ने प्रकाशित करने की चेष्टा की परन्तु इन के पास मुद्रण करने के लिये पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण स्वामी लालपुरीजी ने मेरे पास आकर इस राजविद्या पुस्तक को मुद्रण और प्रकाशन कराने की आवश्यकता प्रगट की तब मैंने इस पुस्तक की उपयोगिता समझ कर तथा इसके उपलक्ष में स्वामीजी को पर्याप्त द्रव्य देकर इस पुस्तक के मुद्रणादि के सर्वाधिकार स्वाधीन कर जनता में प्रकाशित करने की इच्छा की और इस को सबसे प्रथम श्री सुमेर प्रिण्टिङ्ग प्रेस जोधपुर में मुद्रण कराई थी किन्तु शीघ्रता वस बहुत सी अशुद्धियां रहने से तथा प्राकृत गद्य बद्ध होने के कारण बहुत से विद्वानों ने सम्मति दी कि सर्व साधारण के समझ में आने के लिये इस राजविद्या को संस्कृत काव्यानुवाद तथा सरल भाषानुवाद में प्रकाशित कराई जाय। अतः मैंने अधिक द्रव्य व्यय कर जनता के समक्ष प्रकट करने की इच्छा से "स्वर्णपदक प्राप्त आशुकवि कविराज पं० रविदत्त शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरी कासगंज निवासी से रोचक सरल संस्कृत काव्य बद्ध तथा सरल भाषानु वाद कराया। जिसे जोधपुर के प्रसिद्ध भट्टारक राजवैद्योपाध्याय पं० श्री उदयचन्द्रजी महाराज की सहायता से इस का संशोधन कराकर आपके ही उदय आर्ट प्रिण्टिङ्ग प्रेस में मुद्रण कराने के अनन्तर प्रकाशित किया।

उक्त महानुभावों ने जो इसमें सराहनीय परिश्रम तथा सहयोग दिया उसके लिये मैं इन महानुभावों का हृदय से आभारी हूं ।

राजविद्या के पांचों उपदेशों में राज्य, राजा और प्रजा के सम्बन्ध में समस्त वर्णन कियागया है । जैसे-राज्य क्या है ? किस रीती से करना चाहिये ? राजा और प्रजा किस रीति से राज्य में रहकर सुख, शान्ति और स्थिति प्राप्त कर सकते हैं ? राज्य से क्या २ लाभ है ! कैसा राज्य उन्नति के शिखर को प्राप्त होता है ! अवनति तथा नाश किस प्रकार के राज्य का होता है । तथा राजा किसे कहते हैं ? उसे कैसा आचरण करना चाहिये जिससे सुख, शान्ति और स्थिति स्थापित रह सके ! किन गुणों से युक्त राजा अचल राज्य कर सकता है ! अन्य राजाओं से राजा का कैसा वर्ताव होना चाहिये ! एवं प्रजा किसे कहते हैं उसे राजा के साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये ! प्रजाके लिये सुख, शान्ति और स्थिति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है आदि २ समस्त विषय राज्य राजा और प्रजा हितार्थ यौक्तिक, सम्मानित और सरल रीति से वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार बल, रक्षा और न्याय की विवेचना पूर्ण रूप से विन्यस्त की गई है । जैसे—बल किसे कहते हैं ? किसरीति से प्राप्त करना चाहिये ? उसके भेद, एवं रक्षा क्या है ? कितने भेद हैं ? किस रीति से करनी चाहिये ? पुलीस और सेना (फोज) कितनी और किस रीति से रखनी चाहिये ? गुप्तदूत (डिटेक्टिव) के कर्तव्य युद्ध करने की रीतियां तथा न्याय का स्वरूप न्यायाधीश के गुण, न्याय करने की विधि, न्यायालय स्थापन करने के प्रकार एवं वेभी समस्त विषय जिनसे मनुष्यों का ऐहिलौकिक तथा पारलौकिक कर्म विशुद्ध बनसके आदि २ अनेकों मनोहर विषयों का विशद वर्णन किया गया है ।

राजविद्या का आद्योपान्त विलोकन तथा मनन करने से पाठकों को स्वयम् ही विदित हो जायगा कि संसार में राजा तथा प्रजा दोनों की सुख शान्ति और स्थिति स्थापन करने का मुख्य साधन राजविद्या ही है । तथा यह अनुभव होगा कि जहांपर राजविद्या का कार्य रूप में प्रचार हो वहां सर्वदा मङ्गल बना रहेगा, इसके इतर यह भी

सिद्ध होगा कि क्षत्रियों की धार्मिक पुस्तक तथा शासन को आदर्श बनाने वाली एक मात्र राजविद्या है इसका अध्ययन करना, सुनना, और सुनाना क्षत्रियों का परम धर्म है।

अब पाठको से मेरा यह नम्रनिवेदन है कि राजविद्या के मुद्रण तथा संशोधन में दुःसमस्याओं के उपस्थित होजाने से इस प्रथमावृत्ति में जो कुछ त्रुटियां रहगई हैं उनके प्रति आशा करता हूं कि उन त्रुटियों पर ध्यान न देकर तथा शास्त्रीजी के परिश्रम और इसके विषय के महत्व को हृदयङ्गम कर सज्जन वृन्द मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। तथा विश्वास करेंगे कि द्वितीया वृत्ति में समस्त त्रुटियां निकाल दी जाएगी इसके अनन्तर क्षात्रजाति का ध्यान इस नीचे के पद्यपर आकर्षित करता हुवा अपनी लेखनी को विश्राम देता हूं।

देशाभिमानी क्षत्रियो।
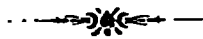
जब राजविद्याभानु का आलोक भूपर छायगा।
यह विश्व सुख शान्ति स्थिती का धाम तब हो जायगा॥
देशाभिमान मनुष्यता का भाव जिसमें है भरा।
वह राजविद्या ज्ञान करता हृदय सरसिज को हरा॥
तरुणत्व फिर आजायगा इस क्षात्र-धर्म चरित्र में।
नय स्वयम ही लेजायगा शुभ मार्ग—सत्य, पवित्र में॥
बस प्रार्थना है विनय पूर्वक क्षत्रियों से एक ही।
श्रीराजविद्या का प्रचार करो सुखद प्रत्येक ही॥

विनीत

रावराजा गुलाबसिंह.

श्रीराजविद्यायाम्

सुरक्षायास्तथा न्यायस्यवृत्तं राजविद्यायाम् ।
समतं वर्णितं कल्याणदं श्रीराजविद्यायाम् ॥
स्वयं या शंकरेणोक्ता मनुष्येष्वेवमनुकम्प्य ।
अतःश्रद्धा विधेया मानवेभ्यो राजविद्यायाम् ॥
कयारीत्याऽस्तुराज्यंसौख्यशान्तिस्थैर्यदंवास्यात् ।
समस्तं कृत्य मस्याऽऽवर्णितं श्रीराजविद्यायाम् ॥
बलं स्यात्कीदृशं शस्यं तथा भेदाश्च के सन्ति ।
सुबुद्धेर्लक्षणं वा विद्यतेऽस्यां राजविद्यायाम् ॥
जनैः सार्द्धं जनानामस्तु तावत्कीदृगाचारः ।
मनुष्यत्वस्य शिक्षावर्तते श्रीराजविद्यायाम् ॥
पुनर्भूयात्प्रचारो भूतलेऽस्मिन्कार्य रूपेण ।
रवेर्भूयात्तदा साफल्य मस्यां राजविद्यायाम् ॥

अनुवादकः

॥ श्रीः ॥

समर्पण

श्रीमान् राठौर क्षत्रिय कुलकमल दिवाकर मरुधराधीश धीरवीरशिरोमणि राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्रीउम्मेदसिंहजी साहिब बहादुर के कर कमलों में।

जय हो नृपवर ? उम्मेद ? आपकी, त्रिभुवन में मरुनाथ।
यह तुच्छ भेट है, आज राजविद्या, प्रविनय के साथ॥
लीजे विनोद से कर कमलों मे, कीजे पुण्य प्रभात।
है विनय विनीत गुलाबसिंह की नव कर के निज माथ॥

श्रीमान् ?

आपके परम पुण्य प्रताप से समस्त मारवाड़ राजधानी में प्रजा सब प्रकार कल्याण के साथ निवास कर रही है। ऐसी प्रजा प्रियता, न्याय और रक्षा की कुशलता आपके ही शासन काल में प्रमाणित होती है। सच्चरित्रता, सुजनता आदि पुनीतगुणों ने आपके कीर्ति रूपी भानु का प्रकाश समस्त संसार पर व्याप्त कर रक्खा है। आप जैसे धर्मात्मा गुणग्राही नरेश होने के कारण ही मुझ जैसे जागीरदार के हृदय में क्षात्र धर्म तथा क्षत्रिय जाति की समुन्नति के भाव अंकुरित होने से बहुत खोज तथा द्रव्य व्यय करके स्वामी लालपुरी आदि व्यक्तियों द्वारा विभिन्नस्थानो से सूर्यवंशी क्षत्रियों की प्राचीन धार्मिक पुस्तक श्री राजविद्या जो कि प्राकृत भाषा में हस्त लिखित थी वह मैंने प्राप्त

राष्ट्रकूटकुलकमलदिवाकर मरुधराधीश राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्रीश्री १०८
श्री उमेदसिंहजी साहिब बहादुर, जोधपुर.

U.A.P. PRESS. Ju

राव राजा गुलाबसिंह, जोधपुर (राजपूताना)

U A.P. PRESS, Ju.

की तथा इसका क्षत्रियों के प्रत्येक घर २ में प्रचार होने के उद्देश्य से प्राकृत राजविद्या का संस्कृत काव्यानुवाद तथा भाषानुवाद प्राप्त स्वर्णपदक आशुकवि कविराज पं० रविदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि की विद्या परिस्कृत तथा रसिक लेखनी से कराया। राजविद्या सूर्य वंशी क्षत्रियों के घराने की विद्या है जो कि चिरकाल से लुप्त हो-गई थी जिसे मैंने आपके ही पुण्य प्रताप से प्राप्त कर इस नवीन रूप में अविरल भक्ति भाव से आपकी ही विद्याको आपके ही भेट किया है साथ ही मैं आशा करता हूं कि क्षत्रिय जाति को उन्नतिशील बनाने वाली, तथा सुख, शान्ति, और स्थिति पूर्वक राज्य करने की शिक्षा देने वाली इस राजविद्या के प्रचार के लिये श्रीमानजी पूर्ण सहानुभूति प्रदान कर मेरे परिश्रम को सफल बनाकर कृतार्थ करावेंगे।

शांकरीय उपदेश है—सुख-शान्ति-स्थिति मर्म।

भूप राजविद्यानुगत, करें सभी यदि कर्म॥

तुच्छ सेवक—

रावराजा, गुलाबसिंह.

राजविद्यान्तर्गतविषयानुक्रमणिका.

प्रबन्ध, राज्याङ्ग, द्रव्यसदुपयोग, आय साधनों पाय स्वास्थ्य निरूपण, विविध विद्या प्रचार, नृपति, मान धन, पुण्य धर्म, ईश्वराराधन, सद्विद्याप्राप्ति, दान पारितोषिक वितरण, गुप्तदूतों का प्रबन्ध, योग्यता प्राप्ति, शासन शक्ति प्रबन्ध सदाचार, तथा सभानिरूपण और ग्रन्थ समाप्ति आदि २ विषय वर्णन किये गये हैं ।
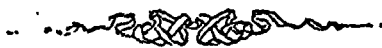
राजविद्यापाठसंशोधनम् ।

पृष्ठं	पंक्तिः	अपाठः	सुपाठः
४	४	नैजम्वपु	नैजंवपु (सन्धिरेषान्यत्रापि-समाधेया)
१३	२	तत्वज्ञानं	तत्त्वज्ञानं (वहुत्र)
१४	१२	कुर्यात्	प्रकुर्यात्
१६	१२	धारग	धारण
१६	२३	पदेश	परदेश
१८	७	एकत्रिक	एकत्रित
३२	१	परिभपा	परिभापा
३२	७	शत्रुपक्षि	पशुपक्षि
२६	११	पञ्चविंशतिसाहस्र	सपादलक्षसंयुक्तं
३६	२३	पच्चीसहजार	एकलाख-पच्चीसहजार
४२	२	शक्तिस्मुमु	शक्तिस्समु
४६	११	कार्यसाधनं	कार्यस्य साधनम्
४८	१७	वुद्धिर्निश्चयात्मिका	वुद्धिस्तुनिश्चयात्मिका
५३	१५	सक्षितिश्वरः	सक्षितीश्वरः
६८	१२	वाय	वाम
८३	१२	दुःखेष्ट	दुःखेष्ट
८०	५	विघ्नानि	विघ्नाश्च
९८	११	तस्मादृते	तस्मादृेन

९८	१७	निश्चत	निश्चित
९९	६	लोभाहकार	लोभाहंकार
१००	१०	बलबुद्धिम्यां	बलबुद्धिभ्यां
१०५	६	ग्रह्णीयात्	गृह्णीयात्
१०८	१३	विघ्नानि	विघ्नाश्च
११५	६	षट	षट्
११९	८	योन्यता	योग्यता
१२०	३	ह्यनिरन्तरम्	निरन्तरम्
१२०	५	मर्यादाञ्चच	मर्यादाञ्च
१२१	११	प्रजाणान्तु	प्रजानान्तु
१४१	१५	विनासम्मति०	विनामति०
१४८	१७	भूपात्	भूयात्
१५३	९	सद्धेश्चिह्न०	समृद्धेश्चिह्न
१७१	५	मानयोग्य	मानयोग्यः
१८१	१५	वरमीक्ष्यच	वीक्ष्यसद्वरम्
१८७	१७	प्रहण	ग्रहण
१९७	१६	दशमे	त्वग्रादशे
१९७	२२	स्यात्तत्र	स्यात्त त्रयोः
२०२	१४	कमा	कर्मां०
२०३	१२	सुकृत दुष्कृतयोः	पुण्यदुष्कृतयोः
२०४	१३	धर्म	धर्मं
२०८	१८	युद्धते	युद्ध्यन्ते
२१५	१७	अस्त्रशस्त्रयो	अस्त्रशस्त्रयोः
२१६	११	देश	देष
२१८	६	षट	षट्
२२२	२०	लम्बञ्च	लंवश्च
२२७	१३	प्वेधिका	प्वधिका
२३४	१९	प्रजायाश्च	प्रजानाञ्च
२३५	१५	ग्रह्य०	गृह्य

२३९	१०	नित्य	नित्यं
२४१	७	वेतनेनव	वेतनेनैव
२४६	६	संस्तरण	संस्तरणं
२४८	१४	समूल	समूलं
२४९	२१	भर्यादायाः	मर्यादायाः
२५१	१५	रैक्य	रैक्यं
२५२	५	सह	सिंह
२५५	२१	श्रयतां	श्रूयतां
२५६	१७	रज्यरूपे	राज्यरूपे
२५६	११	घेपमपि	घेयमपि
२६१	२	प्राप्त्यथम्	प्राप्त्यर्थम्
२६५	१३	अधार्मिक	आधार्मिक
२७४	८	सयुतं	संयुतं
२७४	९	वुद्धयादि	वुद्ध्यादि
२७६	२०	राज्व	राज्य
२७२	१२	गिर	घिर
२८२	८	समुया	समुपा
२८२	१८	आहस	अहिंसा
२८२	२२	स्वजाते	स्वजातौ
२८४	१८	मण्मंग	मण्मंत्वङ्ग
२८६	२२	कार्य	कार्य
२८६	२३	तस्मातथा	तस्मात्तथा
२८७	२१	मानसिको	मानसिकः
२८८	७	भुपगच्छति	मुपगच्छति
२९०	१०	शुखन्तुनो	शुसुखन्तुनो
२९२	१०	कृपिकादि	कृपकादि
२९३	१६	विनिलाभा	विर्निर्लोभा
२९३	२४	नाशुतिकुर्यात्	नाशुकुर्यात्
३०२	२	सहः	सह

३०२	२२	नव	नैव
३०७	७	न्याय	न्याये
३०९	२	धर्मेश्वरा	धर्मैश्वरा
३१३	७	मयिमे	मीयमेव
३१३	१५	छलीःस्वार्थी	छली स्वार्थी
३१८	३	मदान्त्ययि	महान्त्यपि
३·८	५	वर्द्धयेन्नेव	वर्द्धयेन्नैव
३२०	४	नियमै	नियमैः
३२१	६	अन्याभिनो	अन्यायिनो
३२२	५	धूतं	द्यूतं
३२२	६	वाहुल्पे	वाहुल्ये
३२२	७	स्वाया	स्वापा
३२२	२०	ददाति	ददति
३२४	७	यादहीनो	पादहीनो
३२८	८	सर्वशौ	सर्वशो
३२८	२०	विधुर्यया	विधुर्यथा
३२९	२	मालुर्जलं	भानुर्जलं
३२९	१५	लोक	लोको
३३०	१०	भावांश्च	भावांश्च
३३१	३	वीरान्	वीरे
३३१	४	शक्तिनाश्च	शक्तीनाश्च
३३१	४	यते !	पते ?
३३१	५	नाश्चापते	नाश्चपते
३३२	८	हेमहाशिह	हेमहाशिव
३३२	१५	त्यक्षयां	हाक्षयां

३३२	१६	चन्द्रशेखरे	चन्द्रखर
३३२	२४	नाशत्वं	नाशयत्वं
३३३	२	शम्भ शिव	शम्भशिव
३३३	११	यथा चल	यथाचलं
३३५	१४	प्राणवल्लभः ?	प्राणल्लवभ ?
३३५	२०	तीक्ष्ण	तीक्ष्णं

श्रीः

श्रीपरमात्मनेनमः

प्रस्तावनिरूपणो नाम प्रथमःसम्वादः

मङ्गलाचरणम्

विधुज्योत्स्नारम्यज्वलननयनोद्भासि वदनं
सविघ्नेशं कुर्वन्तमपिनिजवामे गिरिसुताम् ॥
जगद्धात्री यस्य प्रवहति शिरस्तः सुरणदी
मुदा वन्दे शम्भुं सविनयमनन्येन मनसा ॥१॥

भावार्थः—चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्वल तथा अग्निमय नेत्र अर्थात् तीसरे नेत्र से शोभायमान मुख है जिनका, तथा जिन के शिरसे सकल संसार की तरण तारिणी मातेश्वरी श्रीगंगाजी वहतीं हैं, और श्रीपार्वतीजी वाम भाग में विराजमान हैं ऐसे सकलगुणालङ्कृत श्रीशंकर भगवान् को और गणपतिजीको सहर्ष विनय के साथ एकाग्रचित्त होकर मैं प्रणाम करता हूं ॥१॥

सकलभुवनसारं सच्चिदानन्दसिन्धुं
मुनिजनहृदयेषु ध्यानगम्यन्निनान्तम् ।
सरससरलकाव्ये राजविद्यारूपवित्रां
विलिखति रविदत्तः शम्भुमाराध्य पूर्वम् ॥२॥

भावार्थः—सम्पूर्ण भुवन (चौदह भुवनों) के सार भूत सत्य, चेतना और आनन्द के सागर, मुनिजनों के हृदयों में निरन्तर ध्यान करने से प्राप्त होने योग्य, ऐसे श्रीशंकर भगवान् की आराधना करके रोचक और सरल रीति से काव्यबद्ध पवित्र राजविद्या को रविदत्त लिखता है ॥२॥

आसीत्प्राकृतगद्यमण्डितमहागम्भीरभावाऽऽवृता
भूपालप्रकृतिप्रमङ्गलमयी श्रीराजविद्या च या ।
विद्वद्वृन्दविनोदवर्द्धनविधौ पद्येषु पूर्वं मुदा
पश्चात्सा रविदत्तशर्मविहिता भाषानुवादे हिता ॥३॥

भावार्थः—राजा और प्रजाओं की परम मङ्गल कारिणी प्राकृत गद्य में लिखी हुई महागम्भीर भावों से युक्त जो श्रीराजविद्या थी । वह विद्वान् जनों के विनोदको बढ़ाने के लिये रविदत्तशर्मा ने पहले संस्कृत पद्यों में लिखकर पश्चात् भाषानुवाद किया ॥३॥

श्रीविष्णोस्सूर्योपदेशः

U A.P.PRESS, Ju.
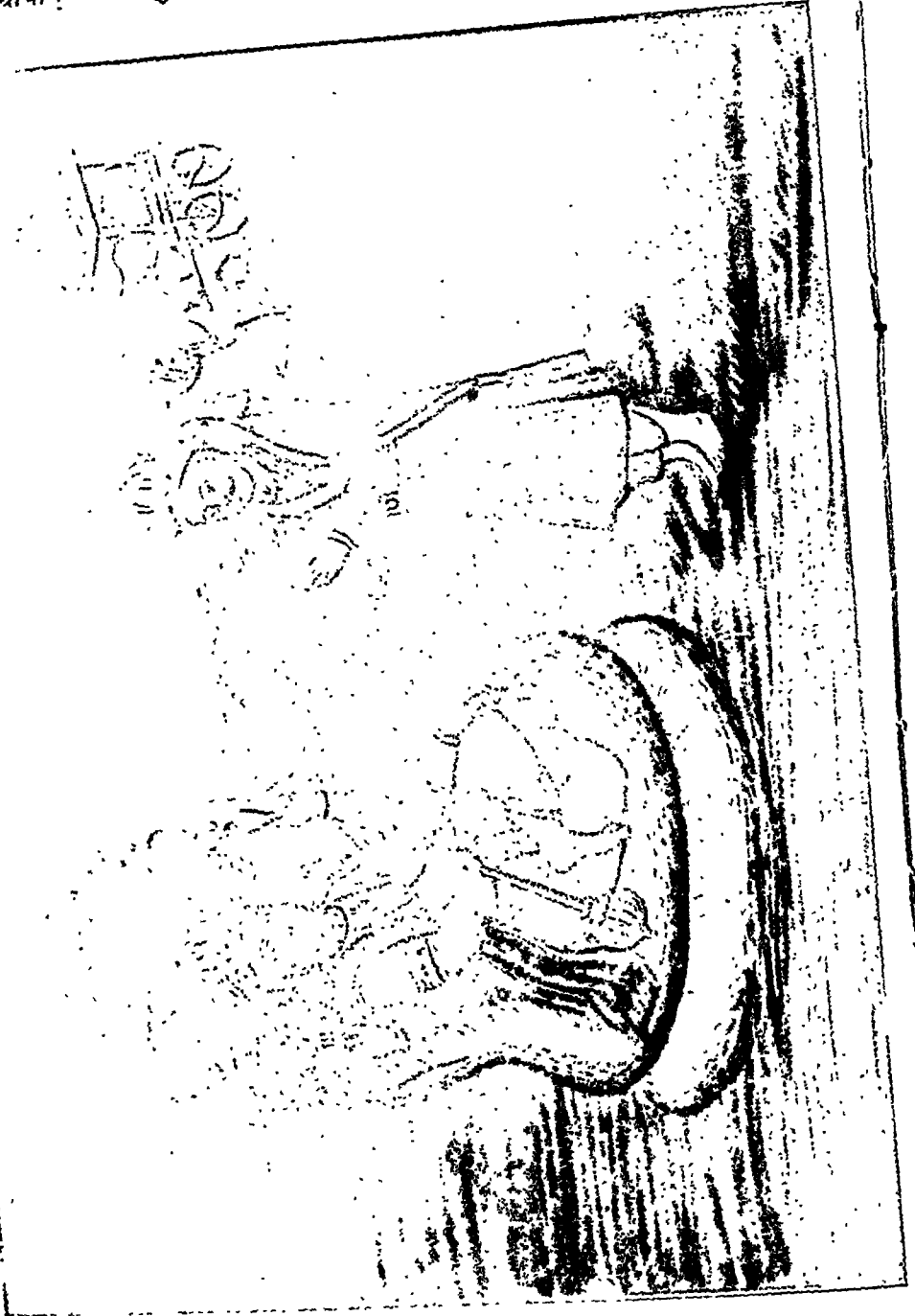
॥ श्रीविष्णुभगवानुवाच ॥

श्रीराजविद्याऽऽगमनम्पृथिव्यां
जातङ्कथम्वाऽपि कया च रीत्या ।
तच्छ्रूयताम्मद्वचनं समस्त-
मुवाच सूर्यं किल पद्मनाभः ॥४॥

भाषार्थः—पद्मनाभ श्रीविष्णुभगवान् सूर्य के प्रति बोले कि इस संसार में श्रीराजविद्या का आगमन किस लिये और किस रीति से हुआ सो हे सूर्य ! तुम मेरे वचन को सुनो ॥४॥

आदावुमेशस्त्रिगुणस्वरूपो-
नैशाचरीमाकृतवान्स सृष्टिम् ।
निजेच्छयाऽन्योन्यभयप्रदात्रीं
ततः स्वमूर्त्याः कृतवान्विभागम् ॥५॥

भाषार्थः—सात्विक, राजस, तामस, इन त्रिगुण स्वरूप वाले श्रीशंकर भगवान् ने अपनी इच्छासे आदि कालमें निशाचरों से युक्त तथा आपस में भयको पैदाकरने वाली सृष्टि को रचा, इसके अनन्तर अपनी त्रिगुणात्मिक मूर्ति का विभाग किया ॥५॥

रजोगुणात्तत्र बभूव धाता,
मनुष्यसृष्टिङ्कृतवान्स तस्याम् ।
स्वाधीनतायाः प्रविचारणायाः
बलन्त्वपारंपुरुषाय दत्तम् ॥६॥

भाषार्थः—उस विभाग में रजोगुण से ब्रह्माजी पैदा हुए उन्होंने मानुषी सृष्टिको रचा जिसमें स्वाधीनता और अधिक विचार शक्ति का अपार बल पुरुष को दिया ॥६॥

तत्पालनार्थम्वपुरस्मदीय-
मभूत्तदा सत्वगुणोपयुक्तम् ।
संहारहेतोस्तमसाऽभिपूर्णं
नैजम्वपुःस्वीकृतवान्महेशः ॥७॥

भावार्थः—उस सृष्टि की पालना के लिये सत्वगुण से युक्त मेरा शरीर हुआ और इसी प्रकार संहार के लिये तमोगुणप्रधान श्रीशंकर भगवान् ने अपना शरीर स्वीकार किया ॥७॥

अहङ्कारमनोबुद्धि-पञ्चतत्वयुताऽपरा ।
सृष्टिनिर्माणवाञ्छाया-मष्टधा प्रकृतिःकृता ॥८॥

भावार्थः—संसार को बनाने की इच्छा में अहङ्कार, मन, बुद्धि और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांचों तत्वों से युक्त आठ प्रकार से अपरा प्रकृति हुई ॥८॥

अनन्तैश्चेतनैर्जीवैः सञ्जाता प्रकृतिः परा ।
इच्छा स्वीया शिवेनास्यां सम्यगेव निवेशिता ॥९॥

भावार्थः—तथा अनन्त चेतन जीवात्माओं से पराप्रकृति हुई और शिवजी ने इस परा प्रकृति में अपनी इच्छा भली भांति प्रविष्ट की ॥९॥

जीवात्मानो निजस्यैव भिन्नभिन्नेच्छया सदा ।
धारयन्तु महीलोके रूपञ्चाऽपि तथाऽऽकृतिम् ॥१०॥

भावार्थः—वे जीवात्मा हमेशा (सर्वदा) अपनी भिन्न भिन्न इच्छाओं से संसार में रूप, और आकृति को ग्रहण करते रहें ॥१०॥

सृष्टिसंपालनार्थं च स्वस्वादः स्थितिहेतवे ।
पार्वतीशिवयोर्जातः प्रारम्भे जगतः पुरा ॥११॥

भापार्थः—सृष्टि की भली भाँति पालना और स्थिरता के लिये संसार के आरम्भ में शिवजी और पार्वतीजी का सम्वाद हुआ ॥११॥

सम्वादो जगतो हेतो ध्यानयोगेन लम्भितः ।
हेसूर्य नृपते ! सैव तुभ्यं सम्प्रतिपाद्यते ॥१२॥

भापार्थः—हे राजन् सूर्य! संसार के हित के लिये जो सम्वाद हुआ वह मैंने ध्यान योगसे प्राप्त किया वही मैं तुमसे कहता हूं ॥१२॥

सम्वादो राजविद्याख्य-योगनाम्ना हि कथ्यते ।
तन्त्वम्मन्वादिराजर्षि-क्षत्रियेषु प्रचारय ॥१३॥

भापार्थः—वह सम्वाद राजविद्या योग नाम से कहा जाता है सो उसको तुम मनु आदि राजर्षि क्षत्रियों में प्रचलित करो ॥१३॥

एतद् ज्ञानानुसारेण राज्यं सुस्थिरतां सदा ।
सन्ततिः क्षत्रियाणाञ्च विस्तारमेष्यतिध्रुवम् ॥१४॥

भापार्थः—इस (राजविद्या योग) ज्ञान के अनुसार क्षत्रियों का राज्यऔर सन्तति विस्तार को प्राप्त होती रहेगी ॥१४॥

सर्गादिकाले भगवान् त्रिनेत्रः
कैलाशकुञ्जे सहितो भवान्या ।
प्रश्नोत्तरम्विश्वहिताय कुर्वन्
विराजमानो मुदितःसमासीत् ॥१५॥

भापार्थः—सृष्टि के आदि समय में तीन नेत्र वाले श्रीशंकर भगवान् कैलाशपर्वत के लतागृह में पार्वतीजी के साथ संसार के हित के लिये विविध प्रश्नोत्तर करते हुये प्रसन्नचित्त विराजमान थे ॥१५॥

॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥

हे हे भूतपते! विभो! पशुपते! मायापते! श्रीमता
मूर्तिस्त्रैगुणिकींविभज्य रचितो विश्वस्तु तस्मिञ्जनः।
स्वाधीनोऽतिविचारशक्तिसहितः कार्येऽखिले सर्वदा
स्वातन्त्र्यञ्च विचारशक्तिरतुला ऽस्त्येतद्बलन्तन्महत्॥१६॥

भावार्थ— हे प्राणियों के पति और व्यापक, माया के स्वामी, पशुपति भगवान् श्रीशंकरजी! आपने अपनी त्रिगुणात्मिक मूर्ति का विभाग कर के संसार बनाया और उस संसार में मनुष्य को स्वाधीन और अधिक विचार शक्ति सहित बनाया, स्वतन्त्रता के साथ अधिक विचार शक्ति यह बड़ा भारी बल है॥१६॥

यद्येतद्बलमेत्य योहि पुरुषो दोषेषु लिप्तो भवेत्
भोगैश्वर्यविमोहसौख्यनिरतिस्वार्थाधिकांशेष्वपि।
तर्ह्यस्मिन् भुवनाम्बुधौ निपतितो दुःखानि सम्प्राप्य सः
नाशङ्गच्छति जन्ममृत्युमुपगत्यानन्तकालावधि॥१७॥

भावार्थः— यदि इस (स्वतन्त्रता और अधिक विचार शक्ति) के बल को प्राप्त कर के भी मनुष्य भोग, ऐश्वर्य, (प्रभुत्व) मोह, सुख और स्वार्थ इन दोषों की अधिकता में लिप्त होजाता है तो इस संसार रूप सागर में पड़ा हुआ दुःखों को और अनन्त समय तक जीवन मरण को प्राप्त कर के नाश को प्राप्त होजाता है॥१७॥

तस्माद्विश्वहितन्त्वीक्ष्य प्रबन्धं प्राणवल्लभ!।
प्रकाशय त्वमुचितं येन स्यात् क्षितिमङ्गलम्॥१८॥

भावार्थः—इसलिये हे प्राणनाथ! संसार के हित को देख कर उचित प्रबन्ध प्रकाशित कीजिये जिससे संसार का हित हो॥१८॥

श्रीशिवशक्तिसंवादः ।

U.A P. PRESS. Ju

॥ श्रीशंङ्कर उवाच ॥

उमावाक्यं समाकर्ण्य शंङ्करोलोकशंकरः ।
सुधासारसमुद्भूतं वाक्यं संप्रत्यपीपदत् ॥१९॥

भाषार्थः—उस समय पार्वतीजी के वचन को सुनकर संसार का कल्याण करने वाले श्रीशङ्कर भगवान् अमृत के समान वाक्य बोले ॥१९॥

भोगैश्वर्याऽऽदिकाऽऽधिक्ये न पतेन्मानवो यतः ।
सर्गादौ राजविद्यां यां वदामि, श्रूयतां प्रिये! ॥२०॥

भाषार्थः—भोग, ऐश्वर्य, स्वार्थ, सुख, और मोह की अधिकता में मनुष्य न पड़जाय, इस लिये सृष्टि के आरम्भ काल में जिस राजविद्या को मैं कहता हूं सो हे प्रिये! उसे तुम सुनो ॥२०॥

समये समये साऽपि विकाशं लोपमेति च ।
विकाशे राजविद्यायाः वृद्धिः शान्तिः स्थितिर्भवेत् ॥२१॥

भाषार्थः—वह राजविद्या भी समय समय पर विकाश और लोप को प्राप्त होजाती है राजविद्या के विकाश होने पर संसार में वृद्धि, शान्ति, और स्थिति होती है ॥२१॥

राजविद्याख्ययोगोयं समूलन्न विनश्यति ।
न्यूनाऽधिकम्मनुष्याणां बुद्धिमध्ये प्रवर्तते ॥२१॥

भाषार्थः—यह राजविद्या नाम योग समूल नष्ट नहीं होता है किन्तु न्यून अथवा अधिकता से मनुष्यों की बुद्धि में बना रहता है ॥२१॥

यदा यदाऽस्य योगस्य समाधिक्यम्प्रजायते ।
तदासत्ययुगस्यात्र प्रवृत्तिर्जायते क्षितौ ॥२२॥

भापार्थः--जबजब इस राजविद्या योग की अधिकता होती है तब संसार में सत्ययुग की प्रवृत्ति होती है ॥२२॥

वृद्धिस्थितिसुखान्येव जायन्ते नात्रसंशयः ।
प्रजाभूपालयोर्योगे कल्याणम्परिवर्द्धते ॥२३॥

भापार्थः—संसार में वृद्धि, स्थिति और सुख होते हैं इस में सन्देह नहीं इस से राजा और प्रजा दोनों के कल्याण की वृद्धि होती है ॥२३॥

न्यूने नष्टे च योगेऽस्मिन् जनानामासुरी गतिः ।
लब्ध्वाऽन्यायश्चदुःखञ्च जायन्ते संक्षया अपि ॥२४॥

भापार्थः--इस राजविद्या योग के कम पडने पर या नष्ट होजाने पर मनुष्यों की राक्षसी वृत्ति होजाती है, तब मनुष्य अन्याय और दुःखों में पड़कर नाश को प्राप्त होते हैं ॥२४॥

शुद्धमार्गेषु जगतः प्रवृत्यर्थं विनिर्मितौ ।
बलस्वरूपःपुरुषः स्त्री जाता मतिरूपिका ॥२५॥

भापार्थः संसार को शुभमार्ग में चलाने के लिये बल स्वरूप पुरुष और बुद्धिरूपा स्त्री बनाई गई है ॥२५॥

ताभ्यांमेव सूर्यवंश श्चन्द्रवंशः प्रवर्तते ।
जायेते बलबुद्धिभ्यां रक्षान्यायौ महीतले ॥२६॥

भापार्थः—उन दोनों से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तदनन्तर क्षत्रियों का सूर्यवंश और चन्द्रवंश प्रवृत्त होते हैं तथा बल से रक्षा और बुद्धि से न्याय होता है ॥२६॥

वंशयोरनयोःस्वेष्ट-दार्ढ्येन प्रविचारणा ।
राजविद्याख्ययोगस्तु तयोर्धर्मः समीरितः ॥२७॥

भावार्थः—इन दोनों सूर्यवंश और चन्द्रवंश वाले क्षत्रियों को अपने इष्ट में दृढ़ रहकर विचार करना चाहिये। तथा राजविद्या योग उन दोनों का मुख्य धर्म है ॥२७॥

स्वेष्टे दार्ढ्यमवाप्यैव धर्मस्यास्यानुगामिनौ।
सूर्यचन्द्रकुलोत्पन्नौ भवेतां क्षत्रियौ सदा ॥२८॥

भावार्थः—तथा अपने इष्टमें दृढ़ रह कर ही सूर्य और चन्द्रवंशोत्पन्न क्षत्रिय लोग इस राजविद्या धर्म के अनुगामी होवें अर्थात् श्री राजविद्या धर्म का अनुसरण करें ॥ २८ ॥

स्थावरस्य जङ्गमस्य जडचेतनयोस्तथा।
चातुर्विध्यं धनानाञ्च न्यायधर्माऽभिसम्मतम् ॥२९॥

प्रजानां प्राणवपुषोः स्वातन्त्र्यस्य च रक्षणम्।
रक्षाधर्मो महीपाना मेष--एव प्रजायते ॥३०॥

भावार्थः—तथा न्याय और धर्म पूर्वक स्थावर, जङ्गम, जड, चेतन इन चारों प्रकार के धनों की तथा प्रजा के प्राण शरीर और स्वतन्त्रता की रक्षा करना यह राजाओं का रक्षा धर्म है ॥२९-३०॥

नैरोग्यं प्रेम शान्तिश्च स्थितिर्भूतिः प्रशासनम्।
दीर्घायुरैक्यं वृद्धिश्च प्रजामध्येऽभिजायते ॥३१॥

एतादृशस्य भूपस्य राज्यं स्यान्न्यायसम्मतम्।
प्रमाणमेतदेवाऽस्ति सन्न्यायस्याऽपि सर्वशः ॥३२॥

भावार्थः—नीरोगता, प्रेम, शान्ति, स्थिति, भूति (सम्पत्ति) शासन, दीर्घायु, एकता, और वृद्धि जब प्रजा में ये नौ बातें प्रचलित होवें तो ऐसे राजा का राज्य न्याय युक्त है और यही न्याय का प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥३१-३२॥

राजविद्याऽनुसारेण स्यान्न्यायः परिरक्षणम्।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासात् नित्यं रक्षाऽभिजायते ॥३३॥
शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु न्याय एवप्रवर्तते।
न्यायेन रक्षया वाऽपि राज्यस्थैर्यमसंशयम् ॥३४॥
न रक्षा यत्र नोन्यायः तद्राज्यं नश्यतिध्रुवम्।
अतो भूमिपतिर्योग्यः कुर्यान्न्यायश्च रक्षणम् ॥३५॥

भापार्थः—राजविद्या के अनुसार न्याय और रक्षा करनी चाहिये इन दोनों में से नित्य अस्त्र शस्त्रों के अभ्यास से रक्षा होती है तथा शुद्ध, उच्च और ईश्वर भावसे न्याय होता है और जहां न रक्षा है न न्याय है वह राज्य निश्चय नष्ट होजाता है। इसलिये योग्य राजा रक्षा और न्याय सदैव करता रहे ॥३३-३४-३५॥

क्षात्रजातिसमुत्पन्नाः स्त्रियो वा पुरुषास्तथा।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासं कुर्वन्तु सर्वदैव हि ॥३६॥
कथं ह्येतेन तेपान्तु स्थितिःशक्तिश्च वर्द्धते।
रक्षणं चाऽपि साम्राज्ये प्रजानामपिजायते ॥३७॥

भापार्थः—क्षत्रिय जाति में उत्पन्न स्त्रीपुरुषों को अस्त्र शास्त्रों का अभ्यास सदैव करना चाहिये क्यों कि इसी से उनकी शक्ति और स्थिति बढ़ती है तथा राज्य में रहने वाली प्रजा की रक्षा होती है ॥३६-३७॥

राजविद्योपदेशस्य श्रवणेन स्त्रियो नराः।
जन्म वाञ्छितजात्यां हि लभन्तेसर्ववर्णजाः ॥३८॥

भापार्थः—परमपवित्र श्री राजविद्या के उपदेश को सुनने से सम्पूर्णवर्णों के स्त्री पुरुष वाञ्छित (इच्छा की हुई) जाति में जन्म प्राप्त करते हैं ॥३८॥

इति श्रीराजविद्यायां
प्रस्ताव निरूपणो नाम
प्रथमःसम्वादः

अथ श्रीराजविद्यायां परिभाषा निरूपणोनाम द्वितीयः सम्वादः

श्रीशंकर उवाच

अथ श्रीराजविद्यायां परिभाषानिरूपणः।
द्वितीयोऽत्रसुसम्वादो वर्ण्यते, श्रूयतां प्रिये ! ॥१॥

भाषार्थः—अब मैं श्री राजविद्यान्तर्गत परिभाषा निरूपण नामक द्वितीय सम्वाद का वर्णन करता हूं सो हे प्रिये कैलाशनन्दनि! उसे तुम सुनो ॥१॥

राज—परिभाषा

प्रकृत्याः मङ्गलार्थं हि जगत्यान्निर्मितोनृपः।
प्रजा संरञ्जनाद्राजा तच्छद्बार्थप्रकाशनम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—परमात्मा ने प्रजा के कल्याण के लिये संसार में राजा बनाया है तथा प्रजा को प्रसन्न रखने से संसार में राजा कहा जाता है यही उस का शब्दार्थ है ॥ २ ॥

पण्डिताः सर्वशास्त्राणां लोकाऽनुभवशालिनः।
बुद्धिमन्तः स्वामिभक्ताः स्वजातिशुभचिन्तकाः॥३॥
न्यायसत्यरता वृद्धाः प्राज्ञास्ते दूरदर्शिनः।
भूपतेः सङ्गतौ चेत्स्युः वृद्धिहेतुर्नृपोभवेत् ॥४॥

भावार्थः—राजा की संगति में संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित, संसार के अनुभवी, बुद्धिमान्, स्वामिभक्त, जगत के शुभ चिन्तक, वृद्ध, न्याय तथा सत्य के प्रेमी, और दूरदर्शी यदि ऐसे मनुष्य हों तो राजा वृद्धि का कारण होता है ॥३-४॥

अतोनृपः प्रजावृद्धे—रुपायं साधयेत्सदा ॥
चेतसा सर्वभूतानां हितं चाऽपि विचारयेत् ॥५॥

सर्व भूतोपकारी यः सर्वभूतहिते रतः ।
लोके प्रशस्यते भूप इहामुत्र सुखी भवेत् ॥६॥

भावार्थः—इसलिये राजा सर्वदा प्रजा की वृद्धि के उपायों का साधन करे, तथा मन से समस्त प्राणियों का हित विचारे, क्यों कि जो सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार करने वाला है और सब के हित में अनुरक्त (लगा हुआ) है वही राजा संसार में प्रसंशा प्राप्त करता है और दोनों लोक (इस लोक और पर लोक) में सुख प्राप्त करता है ॥५-६॥

सर्वेपुधर्मकार्येपु कुर्यान्नित्यं सहायताम् ।
दुष्कृतेपु च कार्येपु तादृशं दण्डमाचरेत् ॥७॥

भावार्थः—सम्पूर्ण धार्मिक कार्यों में नित्य सहायता करे तथा निकृष्ट (बुरे) कार्य करनेपर अपराध के अनुसार दण्ड दे ॥७॥

शुद्धोच्चैश्वरभावान्तु धृत्वैव न्यायरक्षणे ।
भूनायकेन कर्तव्ये सर्वकल्याणहेतवे ॥८॥

भावार्थः—अपने और प्रजा के कल्याण के लिये शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव धारण कर के ही राजाको न्याय तथा रक्षा करनी चाहिये ॥८॥

सर्वं प्रबन्धान् राज्यस्य तत्वज्ञान ञ्च भूपतिः ।
पश्येद्यतो राजविद्या-विज्ञाने पूर्णतां व्रजेत् ॥९॥

क्षत्रियाणां प्रवीराणां तदातद्देशवासिनाम् ।
शिरोमणिर्महीनाथो जायते स प्रतापवान् ॥१०॥

भावार्थः—समस्त राज्य के प्रबन्ध तथा तात्विक ज्ञान को राजा देखे और राजविद्या के विज्ञान में परिपूर्ण हो, तब उस देश में रहने वाले वीर क्षत्रियों का प्रतापशाली राजा शिरोमणि होता है ॥ ९-१० ॥

प्रजाप्रियश्चिरं भूपो निर्व्यथः शास्ति मेदिनीम् ।
न्याययुक्तप्रजाकार्ये संलग्नः स्यान्निरन्तरम् ॥११॥

भावार्थः—प्रजाप्रिय जो राजा है वह आनन्द पूर्वक राज्य करता है अतएव न्याय से युक्त प्रजा के कार्यों में राजा को लगा रहना चाहिये ॥ ११ ॥

प्रातःकाले समुत्थाय शरीरस्यात्मनस्तथा ।
शुद्धिं कुर्याच्च तत्रास्ति स्नानं कायविशुद्धये ॥१२॥

तथैवात्मविशुद्ध्यर्थ—मीश्वराराधनं मुदा ।
सदाचारे तथा योगे सर्वदा कुशलो भवेत् ॥१३॥

भावार्थः—प्रातःकाल उठकर राजा शरीर और आत्मा की शुद्धि करे उसमें स्नान करना शारीरिक शुद्धि के लिये है । एवं आत्मा की शुद्धि के लिये परमात्मा का आराधन तथा सदाचार और योग में भी सर्वदा कुशलता पूर्वक लगा रहे ॥ १२ १३ ॥

रक्षान्यायौ ततः पश्येत् वीराणाञ्च निरन्तरम् ।
दैनिकं पृथ्वीनाथश्चाभ्यासमन्त्रशस्त्रयोः ॥१४॥

भाषार्थः—इसके पश्चात् निरन्तर रक्षा और न्याय का निरीक्षण करे और वीरों के प्रतिदिन के अस्त्रशस्त्राभ्यास को देखे ॥१४॥

कार्याणि योग्यतांचाऽपि राज्यस्य कर्मचारिणाम् ।
पश्येत्स्वातन्त्र्यमाश्रित्य प्रकृत्या सह सम्मिलेत् ॥१५॥

गुप्तवृत्तपरिज्ञानं चारोत्साहैरुपाचरेत् ।
राज्यस्याऽऽयव्ययौ भूपः सर्वदैव विलोकयेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थः—भूपति राज्य के कर्मचारियों की योग्यता और कार्यों को देखे तथा स्वतन्त्रता पूर्वक प्रजा से मिलता रहे। तथा गुप्त (छिपी हुई) बात का ज्ञान राजा गुप्त दूतों के उत्साह से करे और राज्य का आय व्यय (जमा खर्च) सर्वदा देखता रहे ॥१५-१६॥

अत्यावश्यककार्यस्य कुर्यात् सर्वतः पुरा ।
उपायं, भोजनं पश्चात् शृणुयाद्वीरवृत्तकम् ॥ १७ ॥

भाषार्थः—नृपति को चाहिये कि परमावश्यक कार्य का उपाय सब से प्रथम करे तदनन्तर भोजन करे पश्चात् वीरों के इतिहास को सुने ॥ १७ ॥

राजविद्योपदेशं च सम्प्राप्य धर्ममाचरेत् ।
धनिनां ज्ञानिनां वाऽपि शृणुयाद्विमलंयशः ॥ १८ ॥

भाषार्थः—राजविद्या के उपदेश को प्राप्त करके धर्म का आचरण करे, तथा धनी और ज्ञानवान् पुरुषों के निर्मल यश को सुने ॥१८॥

स्वेष्टे ह्यऽऽसक्तं भावं भूप इंद्रियपंचकम् ।
शरीरं स्ववशे कुर्यात् सदाचारं समाचरेत् ॥ १९ ॥

भाषार्थः—राजा अपने इष्ट में दृढ़ आस्तिक भाव रक्खे तथा पांचों इंद्रिय और शरीर को अपने वश में रक्खे एवं सदाचारी बने ॥ १९ ॥

स्वदेशमातृभाषायां प्रीतिं कुर्यान्महीपतिः ।
यथासाध्यं स्वदेशीयं सेवेत वारि भोजनम् ॥ २० ॥

भाषार्थः—अपने देश की मातृभाषा में राजा प्रीति रक्खे तथा यथा साध्य (जहां तक हो सके) अपने ही देश का जल और भोजन सेवन करे ॥ २० ॥

स्वीयमेववीरवेषं धारयेत्क्षितिनन्दनः ।
येनैव सर्वसंसारे तत्प्रभावोऽधिको भवेत् ॥ २१ ॥

भाषार्थः—राजा परम्परागत अपना ही वीर वेष धारण करे जिससे सम्पूर्ण संसार पर उसका प्रभाव पड़े ॥ २१ ॥

मर्यादया स्वजातौ हि पाणिग्रहणमाचरेत् ।
यथासाध्यमेकपत्नी-व्रतञ्चपरिशीलयेत् ॥ २२ ॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि अपनी जाति ही में नियम पूर्वक विवाह संस्कार करे तथा यथा साध्य (जहां तक हो सके) एक पत्नीव्रत धारण करे ॥ २२ ॥

पुरुषार्थं धर्मयुक्तं प्रकुर्यान्मेदिनीपतिः ।
प्राकृतान्यपि कार्याणि काले काले विलोकयेत् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—राजा का कर्तव्य है कि पुरुषार्थ धर्मयुक्त करे तथा प्रकृति के कार्यों को समय समय पर देखता रहे ॥ २३ ॥

एतेनैवाद्भुतं ज्ञानं महीपालाय जायते ।
अतो राज्ये प्रकुर्वीत सुनरामद्भुतालयम् ॥ २४ ॥

भावार्थः—प्राकृतिक कार्यों को देखने से ही राजा के लिये अद्भुत ज्ञान होता है अतएव राज्य में भले प्रकार अद्भुतालय (अजायबघर) बनावे ॥ २४ ॥

परिज्ञानाय सर्वेषां भूपतेः वेषवाहने ।
विशेषचिह्नसंयुक्ते भवेतामेव सर्वथा ॥२५॥

गुप्तवृत्तपरिज्ञान—समये तु कदाचन ।
नैव सन्धारणं कुर्यात् नयोश्च कुशलो नृपः ॥२६॥

भावार्थः—प्रत्येक मनुष्य के परिज्ञान (पहचान) के लिये राजा के वेष (पहिनाव) तथा वाहन (सवारी) सर्वथा विशेष चिह्नों युक्त होने चाहिये किन्तु गुप्त वृत्तान्त को जानने के समय राजा उन विशेष चिह्नों को कभी न धारण करे ॥ २५-२६ ॥

नराणामधिकांशेन नरैःसंजायते सुखम् ।
तस्मादेव हितन्तेषां नृपः साधु विचारयेत् ॥२७॥

भावार्थः—अधिकता से मनुष्यों का सुख मनुष्यों से ही होता है इसलिये राजा मनुष्यों का हित भली भाँति विचारता रहे ॥ २७ ॥

प्रजा नृपो गुणैस्वीयैः स्वाधीनाः कुरुते यदा ।
नैश्चल्यं मङ्गलश्चापि सम्प्राप्नोति क्षितौ तदा ॥२८॥

भावार्थः—जब राजा अपने गुणों से प्रजा को स्वाधीन कर लेता है, तब वह संसार में निश्चलता तथा दृढ़ता को प्राप्त [illegible]ता है ॥ २८ ॥

दूरदेशनिवासिभ्यः समीपस्था प्रजास्तदा ।
परदेशनिवासिभ्यः स्वदेशपरिसम्भवः ॥२९॥

अन्योन्यव्यवहारः स्यात् धार्मिको हितलिप्सया ।
त एव सम्प्रजायन्ते नराः समुपयोगिनः ॥३०॥

भापार्थः—हित की इच्छा से यदि आपस का धार्मिक व्यवहार हो तो दूर देश में रहने वालों से समीप में रहने वाले तथा विदेशियों से स्वदेश में रहने वाले मनुष्य ही अधिक उपयोगी होते हैं ॥२९-३०॥

यथाकृतस्य कार्यस्य पुरस्कारन्तथाऽभिधम् ।
दापयेन्नाशयेन्नैव कस्यापि भूमिवल्लभः ॥ ३१ ॥

भापार्थः—जिस मनुष्य ने जैसा कार्य किया हो उसे तदनुसार उस कार्य का पुरस्कार (बदला) राजा दिलादे, किसी के पुरस्कार को नष्ट न करे ॥३१॥

न्यायः स एव सम्प्रोक्तो यथाकर्म फलं तथा ।
यद्ययं प्रोच्चभावेन स्यात्सधर्मो महीभुजाम् ॥३२॥

भाषार्थः—जैसा जिसका कर्म हो उसे वैसा ही फल देना यह न्याय कहा गया है, यदि यही न्याय उच्च भाव से किया जाय तो धर्म कहा जाता है ॥३२॥

परस्परभवा प्रीतिः हितन्देशस्य वा तथा ।
राजविद्याविलोपश्चे देतत्कर्म विनश्यति ॥३३॥

पराक्रमो बलं बुद्धिः राज्यं चाऽपि शनैः शनैः ।
नाशं गच्छति चाऽन्येषां राज्यं हस्तगतं भवेत् ॥३४॥

भाषार्थः—यदि राजविद्या का विलोप होजाय तो आपस का प्रेम तथा स्वदेश का हित ये दोनों कर्म नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार पराक्रम, बल, बुद्धि और राज्य ये भी शनैः शनैः विनाश को प्राप्त हो

जाते हैं अथवा राज्य अन्य राजाओं के हाथ में चला जाता है ॥३३-३४॥

परार्थन्यायधर्मेषु रक्षायां लोकसंग्रहे ।
उपकारे विलग्नोऽपि स्यादतो नृपतिः सदा ॥३५॥

भाषार्थः—इसलिये राजा दूसरों का हित, न्याय, धर्म, रक्षा, लोक संग्रह (जन समूह को एकत्रिक करना) और प्रत्युपकार इन सब बातों में लगा रहे ॥३५॥

आयस्य सर्वदोपायान्-साधयेत्क्षितिनायकः ।
धर्मेणैव स्वकीयेन राज्यसंस्थितिहेतवे ॥३६॥

भाषार्थः—राज्य की स्थिति के लिये अपने धर्म से ही राजा सर्वदा आमदनी के उपायों का साधन करे ॥३६॥

प्रबन्धं विधवादीना-मनाथानां विशेषतः ।
स्वपोषणासमर्थानां कुर्यात् समभिपालनम् ॥३७॥

भाषार्थः—राजा विशेष करके पंगु (लंगडे) अन्धे और विधवा स्त्री, अनाथ तथा अपने पोषण में असमर्थों की पालना करता रहे ॥३७॥

धर्मदानोपदेशानां विश्वेशाराधनस्यच ।
प्रचारं सर्वविद्यानां कुर्याद् भूपः स्वमण्डले ॥३८॥

भाषार्थः—राजा अपने राज्य मण्डल में धर्म, दान उपदेश और परमात्मा की उपासना का प्रचार करे ॥३८॥

प्रबन्धन्यायमर्यादाः सर्वदैव विलोकयेत् ।
शुद्धे शुभे प्रजाः मार्गे भूपतिः सम्प्रवर्तयेत् ॥३९॥

भापार्थः—प्रवन्ध, न्याय और मर्यादा को राजा सर्वदा देखे तथा प्रजा को शुद्ध (पवित्र) और शुभ (अच्छे) मार्ग में चलावे ॥३९॥

अन्यैर्भूपतिभिः सार्धं वृत्तिं प्रीतिञ्च धार्मिकाम्।
कुर्याद् भूनायकोऽवश्यं राष्ट्रमंगलहेतवे ॥४०॥

भापार्थः—राज्य के कल्याण के लिये राजा अन्य राजाओं के साथ अपना व्यवहार तथा प्रेम धर्म पूर्वक रक्खे ॥४०॥

चिकित्सालयानामनाथालयानां
वपुश्छेदनस्यालयानान्तथैवम्।
प्रकुर्यात्प्रबन्धन्तु शिल्पालयानां
महीनायकः सर्वदा सर्वहेतोः ॥४१॥

भापार्थः—राजा सम्पूर्ण प्रजा के हित के लिये चिकित्सालय अनाथालय, शरीरच्छेदनालय (चीरा फाड़ी का गृह, शफाखाना) और शिल्प (कारीगरी) के स्थानों का प्रवन्ध करे ॥४१॥

रसशालास्थापनन्तु रोगिणां हितकाम्यया।
जलवायुपुरादीनां प्रबन्धं शुद्धये सदा ॥४२॥

भापार्थः—रोगी मनुष्यों के हित की इच्छा से औपधियों की रसायनशाला स्थापन करे तथा जलवायु और नगर आदि कों की शुद्धि के लिये प्रवन्ध करे ॥४२॥

सेवा सहायता दानं पुरुषार्थश्च कीदृशः।
पूजा भक्ति जपो ध्यानं प्रीति रैक्यञ्च कीदृशम् ॥४३॥

कीदृक् शौर्यं तपश्चापि पुरुषार्थश्च कीदृशः।
प्रजामध्ये महीपालो गुणानेतान्विलोकयेत् ॥४४॥

भावार्थः—प्रजा के मध्य में राजा इतनी बातें देखे, कि प्रजा-में-सेवा, सहायता, पुरुषार्थ, पूजा, भक्ति, जप, मान, प्रीति, एकता, पराक्रम और तप कैसा है ॥४३-४४॥

इतिहासं प्रवीराणां यशश्चोत्साहदायकम् ।
शृणुयाद् भूपतिर्नित्य-माचारशुद्धिहेतवे ॥४५॥

भावार्थः—अपने आचार की शुद्धि के लिये राजा बड़े बड़े वीरों का इतिहास तथा उत्साह को बढ़ाने वाले यश (कीर्ति) को सुनें ॥४५॥

सर्वोपयोगिवस्तूनां कुर्यात्सञ्चयमुत्तमम् ।
कार्यालयविनिर्माणं जगतो हेतवे नृपः ॥४६॥

भावार्थः—संसार के हित के लिये राजा समस्त उपयोगि वस्तुओं का उत्तम संचय करे तथा कार्यालयों (कार्य करने के स्थान) का भी निर्माण करे ॥४६॥

येषां नवनिधीनाञ्च करिष्यामः प्रवर्णनम् ।
धर्मोपार्जितद्रव्यैस्तु तान्नृपः परिपूरयेत् ॥४७॥
तैश्च सम्पूरितैरेव विपत्तीनां समागते ।
जायते राज्यसंरक्षा लभते विजयश्रियम् ॥ ४८ ॥

भावार्थः—जिन नौ कोषों (खजानों) का हम आगे वर्णन करेंगे उन कोषों को राजा धर्म से उपार्जित किये हुये धन से परिपूर्ण करे, क्योंकि आपत्तियों के आने पर उन्हीं पूरित कोषों से राज्य की रक्षा होती है और उन्हीं के सहारे से राजा विजय लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥४७-४८॥

अपिस्वयं प्रतिफलं दद्यादौदार्यतो नृपः ।
प्रजाकार्ये समुत्साहं वर्द्धयेदपिनित्यशः ॥४९॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने आप भी उदारता के भाव से प्रतिफल दे तथा प्रजा के कार्यों में उत्साह को भी बढ़ावे ॥४९॥

यथायोगयुक्त्या प्रमोदप्रपूर्णाः
प्रजाः पालयेद् भूमिनाथः प्रबुद्धः ।
क्षितौ प्राप्नुयाद्येन सौख्याऽधिकांश-
महोरात्रमेतन्नृपश्चिन्तयेत ॥५०॥

भावार्थः—प्रमुदित चित्त होकर राजा यथासाध्य (जिस किसी प्रकार सिद्ध होने वाली) युक्ति से प्रसन्नता पूर्वक प्रजा का पालन करे, जिससे संसार में सुख की अधिकता का अवलंवन करे । बस इसी बात का राजा निशिदिन चिन्तवन करता रहे ॥५०॥

बलबुद्धी तयोः कार्ये गुणाश्चापि पृथक् पृथक् ।
विभक्ताः जनतायां च क्वचिन्मिश्रणमेवच ॥५१॥

भावार्थः—बल बुद्धि और उन दोनों के कार्य तथा गुण ये पृथक् २ मनुष्यों में विभक्त किये हुये हैं (जुदे २ बटे हुए हैं) तथा कहीं पर इनके कार्य और गुण मिश्रित (मिले हुये) भी हैं ॥५१॥

राज्यलिप्सुरतो भूपः प्रकृत्या सह नित्यशः ।
स्वातन्त्र्येण मिलेदेवं राज्यसंस्थितिहेतवे ॥५२॥

भावार्थः—इसलिये राज्य को प्राप्त करने की इच्छा करने वाला राजा राज्य की स्थिति के लिये स्वतन्त्रता के साथ नित्यप्रति प्रजा से मिलता रहे ॥५२॥

न्याये संरक्षणे चाऽपि शासने भूकरग्रहे ।
प्रबन्धे क्षत्रियान्वीरान् योजयेत्पृथ्वीपतिः ॥५३॥

भावार्थः—राजा न्याय, रक्षा, शासन, भूकर ग्रह (पृथ्वी का लगान लेना) और प्रबन्ध इन कार्यों में क्षत्रिय वीरों को नियत करे॥५३॥

नृपतुष्टाः प्रजा नित्यं सर्वस्वं भूपतेरिमाः ।
बलं मित्राण्यपि तथा तासां तादृक् महीपतिः ॥५४॥

भावार्थः—राजा से नित्य संतुष्ट हुई प्रजा ही राजा का सर्वस्व बल और मित्र है तथा इसी प्रकार प्रजा से संतुष्ट राजा भी प्रजा का सर्वस्व, बल और मित्र है ॥५४॥

न्यायधर्मदयारक्षा उपकाराश्च सर्वथा ।
पारस्परिकभावैः स्युस्तदा मैत्री प्रजायते ॥५५॥

भावार्थः—किन्तु यदि आपस के भावों से न्याय, धर्म, दया, रक्षा और उपकार हों तो राजा और प्रजा की मित्रता होती है ॥५५॥

यदैवात्युपकारःस्यात् न्यूनदोषं न चिन्तयेत् ।
उपेक्षां शुद्धभावेन कुर्यात्तत्र महीपतिः ॥५६॥

भावार्थः—यदि किसी ने अधिक उपकार किया हो तो उस समय न्यून (कम) दोष को न देखे यहां पर राजा को योग्य है कि शुद्ध भाव से उस बात की उपेक्षा (त्याग) करदे ॥५६॥

स्वराज्यस्यान्यराज्यानां मित्रतां कर्मचारिभिः ।
सार्द्धं कुर्यान्महीनाथो भजेत्तेषां न चाश्रयम् ॥५७॥

भावार्थः—राजा स्वकीय (अपने) राज्य के तथा अन्य राज्यों के कर्मचारियों के साथ मित्रता तो बनाये रक्खे किन्तु उनका वशीभूत न हो जाय ॥५७॥

स्वराज्यबलबुद्ध्योश्च भेदन्नप्रकाशयेत् ।
यदा च शत्रुतां यान्तु कुर्युस्ते महतीं क्षतिम् ॥५८॥

भावार्थः—अपने राज्य का बल (सेना आदि) तथा बुद्धि के भेद को राजा प्रकाशित न करे क्योंकि वे कर्मचारी भेद प्राप्त करने

से यदि शत्रुता धारण करलें तो राज्य की महान् हानि कर सकते हैं ॥५८॥

प्रत्येककार्येऽभ्यधिकां प्रवृत्तिं
कुर्यात् क्षितीशो न कदाचिदेव ।
स्थितिं प्रमादे पतितः कदाचित् ॥
नोल्लङ्घयेत्क्षेमनिवासहेतोः ॥५९॥

भाषार्थः—सर्वदा कल्याण से रहने के लिये राजा प्रत्येक कार्य में अति प्रवृत्ति न करे तथा प्रमाद (व्यसन) में पड़कर मर्यादा का उल्लंघन भी न करे ॥५९॥

स्वोपकारैः सदाचारैः प्रजाः सन्तोषयेन्नृपः ।
तदाऽऽदर्शोऽभिजायेत लोकयोः संप्रशस्यते ॥६०॥

भाषार्थः—जब राजा अपने उपकार तथा अच्छे आचारों से प्रजा को सन्तुष्ट कर लेता है तब वह आदर्श राजा कहलाता है और दोनों लोकों में प्रशंसा प्राप्त करता है ॥६०॥

यस्य कस्यापि भूपस्य प्रजाः स्युरधिकास्तदा ।
उच्चाधिपो महीपालः कथ्यते स महीतले ॥६१॥

भाषार्थः—जिस किसी राजा की प्रजा अधिक होती है वही राजा संसार में उच्चाधिपति कहा जाता है ॥६१॥

आशीर्वादञ्च दुःखञ्च सुकृतं दुष्कृतं तथा ।
ईश्वरो वेत्त्युपकृतिं क्रमवृद्धाश्च भूभुजः ॥६२॥

भाषार्थः—आशीर्वाद, दुःख, शुभकर्म (अच्छा काम) अशुभ कर्म (बुरा काम) और उपकार इन सब बातों को ईश्वर तथा क्रम· वृद्ध (एक से एक बढ़े हुये) राजा भी जानते हैं ॥६२॥

निजार्थस्य सौख्यस्य भोगाऽधिकस्य
प्रमोहस्य वा स्वामिभावस्य भूपः।

समां वृत्तिमाधारयेन्नित्यमेवं
कृते जायते मङ्गलं सर्वकाले ॥६३॥

भावार्थः—इसलिये स्वार्थ, सुख, भोग की अधिकता, मोह और ऐश्वर्य इन सबों की समान वृत्ति को राजा धारण करे क्योंकि ऐसाकरने से उसका सर्वदा कल्याण होता है ॥६३॥

यत्र कुत्राऽपि जायेत सुशान्त्या कार्यसाधनम्।
स्वार्थस्य सा समाख्याता साम्यावस्था महीतले ॥६४॥

अहिंसयाऽऽशिषा वापि सद्धर्माचारपौरुषैः।
साम्यावस्था सुखस्योक्ता सौख्यं संजायतेऽनया ॥६५॥

भोगस्योक्ताऽत्र वंशस्य पारम्पर्येण चागमः।
ऐश्वर्यस्यतु सम्प्रोक्ता प्रबन्धस्थैर्यमेवच ॥६६॥

भावार्थः—जहां कहीं शांति से कार्य की सिद्धि की जाय वह संसार में स्वार्थ की साम्यावस्था कही जाती है। तथा अहिंसा आशीर्वाद, धर्म, आचार और पौरुष इन सबों से सुख की सम्यावस्था होती है तथा इसी से सुख की उत्पत्ति होती है। इसी भांति परम्परा से वंश का चला आना यह भोग की साम्यावस्था है। तथा प्रबन्धों की स्थिरता होना यह ऐश्वर्य की साम्यावस्था है ॥६४-६५-६६॥

अहिंसया भवत्येव वयोवृद्धिर्निरन्तरम्।
आशिषा वा वरेणाऽपि जायते शुद्धसन्ततिः ॥६७॥

धर्माद्धनं सुखान्येव जायन्ते सर्वभूतले।
पुरुषार्थेन मानं च प्रतिष्ठा स्थिति रेवच ॥६८॥

भाषार्थः—अहिंसा के पालन करने से आयु की निरन्तर वृद्धि होती है तथा आशीर्वाद और वरदान से शुद्ध सन्तान की उत्पत्ति होती है धर्म से धन और सुख की उत्पत्ति संसार में होती है पुरुषार्थ से सन्मान, प्रतिष्ठा और स्थिति होती है ॥६७-६८॥

सदाचारेण नैरोग्यं निश्चयं जायते नृणाम्।
सर्वार्थसिद्धिर्नैरोग्यात् सम्यगेवाऽभिजायते ॥६९॥

भाषार्थः—सदाचार से मनुष्यों की निश्चय रूप से नीरोगता रहती है तथा नीरोगता से ही समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है ॥६९॥

स्वदेशोत्पन्नसुभटान् सर्वविद्यावतो नरान्।
आत्मीयान्परिकुर्वीत मानान्नधनसत्कृतैः ॥७०॥

एवं बुद्धिमतः सर्वान् दीनान् संपालयेत्तथा।
दुर्जनान् ताडयेदेवं सर्वदैव महीपतिः ॥७१॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि अपने देश में उत्पन्न हुये अच्छे योधा तथा सर्व विद्याओं के शिक्षित पुरुषों को मान, अन्न, धन और सत्कारों से अपना बनाले और दीन जनों की पालना करे तथा दुष्ट मनुष्यों को दण्ड दे ॥७०-७१॥

यस्मिन् श्रीराजविद्याया राजगुह्यस्यविद्यते।
अयमाद्योपदेशस्तु वर्णनं परमं हितम् ॥७२॥

महत्तत्वं यदैतस्य ज्ञात्वा धर्मेण रक्षति।
न्यायेन पालयेच्चापि प्रजाः स पृथिवीपतिः ॥७३॥

अखण्डितं सुखोपेतं भुनक्ति मेदिनीं चिरम्।
राज्यं तस्याऽचलं नित्यं वर्द्धन्तेऽखिलसम्पदः ॥७४॥

भावार्थः—जिसमें श्री राजविद्या तथा राजा की गुप्त बातों का परम कल्याणदायक वर्णन है वही यह प्रथमोपदेश है। जब राजा इसके महत्व को जानकर धर्म पूर्वक रक्षा और न्याय से प्रजा की पालना करता है तब वह राजा अखण्डित सुख पूर्वक चिरकाल तक पृथ्वी पर शासन करता है तथा उसी का राज्य अचलता प्राप्त करता है एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियां नित्यप्रति वृद्धि को प्राप्त होतीं हैं ॥ ७२-७३-७४॥

इति श्री राजविद्यायां
राजपरिभाषा

प्रजाः

नरौघोयेनकेनाऽपि शुद्धमार्गे निरन्तरम् ।
चालनीयोऽनुरागेण ताःप्रजाःप्रतिपाद्यते ॥७५॥

भावार्थः—जो मनुष्यों का समूह, जिस किसी से निरन्तर शुद्ध मार्ग पर परमानुराग से चलाया जाता है उस जन समूह को प्रजा कहते हैं ॥७५॥

करः

द्रव्यं यन्न्याय्यरक्षार्थं जनतासम्प्रयच्छति ।
करः स एव संप्रोक्तः करग्राही यतो नृपः ॥७६॥

भावार्थः—अपनी रक्षा और न्याय के लिये जनता जो धन देती है उसे कर कहते हैं क्योंकि उस धन को ग्रहण करने वाला राजा होता है ॥७६॥

चक्रवर्ती

समस्तभूमण्डलराजवृन्दं
संशास्ति यो भूमिपतिर्वरेण्यः।
स चक्रवर्ती प्रतिपाद्यमानः
यशः सुखं संलभते पृथिव्याम् ॥७७॥

भापार्थः—सम्पूर्ण भूमण्डल के राजाओं के समूह पर जो श्रेष्ठ राजा शासन करता है वही चक्रवर्ती कहलाता हुआ संसार में यश और सुख को प्राप्त करता है ॥७७॥

पारमार्थिकी बुद्धिः

ययोच्चबुद्ध्या धर्मेण कार्याणां महतामपि।
संसाधनं महीलोके सदा यत्नेन जायते ॥७८॥
यस्यान्धनस्य सौख्यस्य स्थितिःसम्यक् प्रवर्तते।
परमार्थरताबुद्धि ज्ञेया सा मंगलप्रदा ॥७९॥

भापार्थः—जिस बुद्धि के द्वारा धर्म तथा प्रयत्न पूर्वक बड़े २ कार्यों को सिद्ध किया जाता है तथा जिस बुद्धि से ही धन और सुख की भली भांति स्थिति होती है वह कल्याण को देने वाली पारमार्थि की बुद्धि जानना चाहिये ॥७८-७९॥

स्वार्थिकी बुद्धिः

स्वल्पया क्षुद्रया बुद्ध्या शीघ्रस्वल्पसुखाय वा।
स्वल्पलाभाय वाऽन्येषां-हानिंकृत्वा निरन्तरम् ॥८०॥
सन्तोषस्थापनं येषा-मधर्माचारिणां नृणाम्।
सा क्षुद्रा स्वार्थिकी बुद्धिः तेषामेवाभिजायते ॥८१॥

भावार्थः—स्वल्प अथवा क्षुद्र बुद्धि से थोड़े सुख और लोभके लिये निरन्तर दूसरों की हानि करके अधर्म का आचरण करने वाले मनुष्यों के सन्तोष की स्थिति होती है अर्थात् अधार्मिक कार्यों के करने से ही जिन मनुष्यों को सन्तोष होता है उनकी क्षुद्र स्वार्थिकी बुद्धि कही गई है ॥८०-८१॥

त्यागः

प्रत्येकसंप्राप्यपदार्थमध्ये
दुर्लोभदुष्कर्मविवर्जनं चेत् ॥
त्यागः स एवेति निगद्यतेऽत्र
समस्तभूपालहितैकहेतुः ॥८२॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राप्त होने वाले पदार्थों में यदि लोभ और बुरे कामों का परिहार (छोड़ देना) हो तो वह सम्पूर्ण राजाओं के हित का कारण त्याग कहा गया है अर्थात् अति लोभ और बुरे कामों का छोड़ना ही त्याग है ॥८२॥

क्षत्रियः

क्षतात् संत्रायते यस्तु क्षत्रियः सहिकथ्यते ।
अतो न्यायं तथा रक्षां कुर्यात् स क्षत्रियःक्षितौ ॥८३॥

भावार्थः—विनाश अर्थात् दुःखों से जो रक्षा करता है उसे क्षत्रिय कहते हैं इसलिये क्षत्रिय को चाहिये कि संसार में सर्वदा रक्षा और न्याय करता रहे ॥८३॥

राजविद्या

विद्यानां या मुख्यतो राजविद्या
राज्ञां विद्या राजविद्याऽथवा स्यात् ।

याथातथ्यं स्यात्पदार्थोपलब्धिः
वाञ्छा-पूर्णा जायते चानयैव ॥८४॥

भाषार्थः—समस्त विद्याओं में जो मुख्य अथवा राजाओं की जो विद्या है वही राजविद्या कही जाती है इस राजविद्या से ही यथार्थ वस्तुओं का ज्ञान तथा इसी के द्वारा इच्छाओं की पूर्ति होती है ॥८४॥

फलवाञ्छां विहायैव सुकृतं यः करोति ना ।
तदा तस्य फलं श्रेयः सम्प्राप्नोति महीतले ॥८५॥
राजविद्योपदेशात्तु मानवो लभते कृतिः ।
फलेच्छामपि संकुर्वन् महदिष्टफलं सदा ॥८६॥
तथा यो राजविद्याया उपदेशे सहायताम् ।
करोति जायते तस्य दैनिकं त्विह मंगलम् ॥८७॥

भाषार्थः—जो मनुष्य फल प्राप्त करने की इच्छा का परित्याग करके ही शुभ कर्म करता है तब ही उसे सर्वदा उत्तम फल की प्राप्ति होती है। किन्तु राजविद्या के उपदेश से कुशलता प्राप्त किया हुआ मनुष्य फल प्राप्ति की इच्छा करके भी महान् वांच्छित फल की प्राप्ति करता है तथा जो मनुष्य राजविद्या के उपदेश में सहायता करता है उसका प्रतिदिन कल्याण होता है ॥८५-८६-८७॥

राजविद्याशिक्षा

सृष्ट्यां श्रीराजविद्यैव संशिक्षयति सर्वदा ।
स्वस्त्यादिनवकं ज्ञानं शक्तेश्चसुमतेरपि ॥८८॥

भाषार्थः—श्री राजविद्या ही संसार में स्वस्ति, वृद्धि, शांति स्थिति, राज्य लक्ष्मी, प्रीति, एकत्व, शासन और दीर्घायु ये नौ बातें तथा शक्ति (बल) और सुमति (अच्छी बुद्धि) के ज्ञान को सिखाती है ॥८८॥

ज्ञानेनैतेन जायेते रक्षान्यायौ महीतले ।
लोकानां संग्रहस्ताभ्यां राज्यप्राप्तिश्चजायते ॥८९॥

भावार्थः—इस ज्ञान से ही संसार में रक्षा तथा न्याय होते हैं और रक्षा, न्याय से जनसंग्रह (जन समूह को एकत्रित करना) तथा राज्य की प्राप्ति होती है ॥८९॥

राजविद्या ददाति किम्

क्षत्रियेभ्यःसमाधारं प्रतिष्ठां मानमेव च ।
ईशाधिकांश संप्राप्तिं राजविद्या प्रयच्छति ॥९०॥

भावार्थः—राजविद्या क्षत्रियों के लिये आधार, प्रतिष्ठा, मान तथा परमात्मा के अधिकांश की प्राप्ति को देती है ॥९०॥

पूर्वजन्मकृतैस्तावत् कर्मभिस्तु शुभाऽशुभैः ।
प्राणिनां जायते जन्म प्रेरणा च पृथक् पृथक् ॥९१॥

भावार्थः—पूर्वजन्म में किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार प्राणियों का जन्म होता है तथा पूर्वकृत कर्मानुसार ही पृथक् २ प्रेरणा होती है ॥९१॥

पूर्वोपार्जितकर्मेभ्यः वर्तमानसमुद्भवाः ।
विद्योपदेशाः सत्संगा ह्यसत्संगा महत्तराः ॥९२॥

बलाद्बुद्धिं समाकृष्य स्वानुसारं निरन्तरम् ।
प्रकुर्वन्ति च तद्रूपा प्रेरणा चापि जायते ॥९३॥

भावार्थः—किन्तु पूर्व जन्म में किये हुये कर्मों से वर्तमान समय में होने वाले विद्याओं के उपदेश सत्संग (सज्जनों की संगति) और असत्संग (असंगति) ये बलवान होते हैं तथा ये ही बल

(जबरदस्ती) से खीचकर अपने अनुसार कर लेते हैं तब उसी के समान प्रेरणा भी होती है ॥९२-९३॥

बलम्

कर्तुं शक्नोति यत्कार्यं येन तद्बलमुच्यते ।
यदेवाश्रित्य भूलोके सर्वकार्यक्षमोनरः ॥९४॥

भावार्थः—जिससे मनुष्य काम को कर सकता है उसे बल कहते हैं और जिस बल का ही आश्रय करके मनुष्य संसार में सब कामों में कुशलता धारण करता है ॥९४॥

बुद्धिः

ज्ञानेन युक्त्याह्यभिवांछितस्य
कार्यस्य सम्यक्करण न्नितान्तम् ।
यथा कृतं येन जनेन कार्यं
फलम्भवेत्तादृशमेव तस्मै ॥९५॥

यथायस्य भवेत्कर्म बुद्धिस्तस्य च तादृशी ।
अतएवाऽत्र विख्याता बुद्धिःकर्मानुसारिणी ॥९६॥

भावार्थः—ज्ञान और युक्ति से इच्छित काम का भली भांति सिद्ध करना तथा जिस मनुष्य ने जैसा काम किया हो उसे वैसा ही फल मिलना चाहिये जिसका जैसा कर्म होता है उसकी बुद्धि उसी प्रकार की हो जाती है इसीलिये विश्व में बुद्धि कर्मानुसारिणी कही गई है ॥९६॥

न्यायशक्तिः

औदासीन्येन निर्णीतं सुकृत न्दुष्कृत न्तथा ।
दुष्टे दण्डस्सतस्तोषो न्यायशक्तिरुदीर्यते ॥९७॥

यथापराधाचरितस्य जन्तोः
भवेत्सदा तादृश एव दण्डः ।
सन्ताडनेनापि सतर्जनेन
कृतेरनुष्ठानमितीह दण्डः ॥९८॥

भावार्थः—अच्छे और बुरे काम को उदासीनता (पक्षपात रहित) होकर निर्णय करके दुष्टों को दण्ड देना और सत्पुरुषों को सन्तुष्ट करना यह न्यायशक्ति कही जाती है । जैसा अपराध जिस मनुष्य ने किया हो उसके लिये सदा वैसा ही दण्ड देना चाहिये और इस राजविद्या में ताडना के साथ काम करने को ही दण्ड कहते हैं ॥९७-९८॥

मानवदण्डभेदाः

दुर्वाक्यमात्रधनसंहरणे च दण्डः
कारागृहश्च किल रज्जुनिबन्धनं हि ।
एकान्तसद्मनियतानिर्नियमेन वा पि
व्याघातहानिभयसम्बहुताडनानि ॥९९॥

प्राणदण्डः स्वदेशाद्वा निर्वासः प्रियहानिकाः ।
दुःखश्चबहुदुःखश्च दण्डभेदाश्चतुर्दश ॥१००॥

भावार्थः—कटुवाणी (वाक् पारुष्य) धन हरण, कारावास रस्सी आदि से बन्धन, एकान्त नियम से कारावास, आघात, हानि, भय और अधिक ताड़ना, प्राणान्त, अपने देश से निकाल देना, प्रिय की हानि, दुःख तथा अति दुःख देना यह चौदह दण्ड के भेद हैं ॥९९-१००॥

आ श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर
द्वारा सप्रेम भेंट सा.

प्राकृतदण्डभेदाः

प्रकृत्याः विपरीतत्वात् कदाचिदृतुतत्वयोः।
हीनत्वेनाति योगेन जायन्ते व्याधयः क्षितौ ॥१०१॥

स्वार्थादीनां समाधिक्ये विधर्माचरणेन वा।
अन्यायात्पापलग्नत्वात् पारस्परिकविग्रहः ॥१०२॥

शत्रुपक्षिकृमीणाञ्चे-दाघातै र्दंशनै रपि।
उच्छ्वासैर्भक्षणैरेष तृतीयो दण्ड ईरितः ॥१०३॥

वज्रपातैर्भूमिकम्पैः वह्निवारिप्रकोपनैः।
देवासुरपिशाचैर्वा प्रेतैर्हानैः समुद्भवः ॥१०४॥

अभावे राजविद्यायाः मतिरल्पाप्रजायते।
विपरीतै स्तथाचारैः शापेनापि विनाशनम् ॥१०५॥

भाषार्थः—प्रकृति, ऋतु और पांचों तत्वों की हीनता और अधिक योग होने से संसार में व्याधियां होजाती हैं। यह प्रथम दण्ड है। अधर्म के आचरण करने से तथा अन्याय से स्वार्थ सुखादि पांचों की अधिकता में पड़ने पर आपस में लड़ाइयां होती है यह द्वितीय दण्ड है। पशु पक्षीकृमियों के आघात (मारना) दंशन (काटना) उच्छ्वास (फूंक मारने से) तथा भक्षण से यह तीसरा दण्ड कहा है। वज्रपात भूकम्प जल और वायु का प्रकोप, देवता, असुर, पिशाच और प्रेतों से हानिका होना ये चौथा दण्ड है। राजविद्या के अभाव से बुद्धि कम हो जाती है और फिर विपरीत आचरण करने से तथा सिद्ध महात्माओं के शाप से विनाश हो जाना, यह पाचवां दण्ड कहा गया है ॥१०१-१०२-१०३-१०४-१०५॥

DELISTED

मन्वन्तरम्

षड्ऋतुद्वादशमिश्च मासैर्वर्षमुच्यते ।
द्वादशाब्दैश्च संयुक्तं सामान्यं जायते युगम् ॥१०६॥

भाषार्थः—छः ऋतु वा बारह महीनों का एक वर्ष कहा जाता है ऐसे बारह वर्षों से युक्त सामान्य युग होता है ॥१०६॥

सहस्रसामान्ययुगैः प्रजायते
सामान्यमन्वन्तरनामधेयम् ।
चतुर्दशाख्यैरिहजायते तैः
सामान्यकल्पः प्रलयस्तदन्ते ॥१०७॥

भाषार्थः—हजार सामान्य युग का एक सामान्य मन्वन्तर होता है और चौदह सामान्य मन्वन्तरों से एक सामान्य कल्प होता है इस सामान्य कल्प के अन्त में प्रलय होजाता है ॥१०७॥

द्वादशाब्दं सहस्रैस्तु पृथिव्यां सम्प्रवर्तते ।
एकं महायुगन्नाम नरै रित्यवधार्यताम् ॥१०८॥

भाषार्थः—बारह हजार वर्षों से पृथ्वी पर एक महायुग होता है यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिये ॥१०८॥

वेदनेत्रैर्महायुगैः महामन्वन्तरम्भवेत् ।
एवं मन्वन्तरादीनां जायते वर्णनाऽधुना ॥१०९॥

भाषार्थः—चौबीस महायुगों से एक महामन्वन्तर होता है इस प्रकार यहां पर मन्वन्तरादिकों का वर्णन है ॥१०९॥

चतुर्दशाख्यैः संप्रोक्तः महामन्वन्तरैरिह ।
महाकल्पस्तथाऽस्यान्ते स्यात् महाप्रलयस्तदा ॥११०॥

भापार्थः—चौदह महामन्वन्तरों से एक महाकल्प होता है और इस महाकल्प के अन्त में महाप्रलय होजाता है ॥११०॥

सर्गः प्रारभ्यते पश्चात् सर्वदाजगतीतले ।
एतेनैवप्रकारेण कालोभ्रमतिचक्रवत् ॥१११॥

भापार्थः—इसी प्रकार सर्वदा पृथ्वी में महाप्रलय के पश्चात् सर्ग प्रारम्भ होता है तथा चक्र की भांति काल घूमता रहता है ॥१११॥

लक्षैश्चसप्तदशभि-रष्टाविंशतिभिः पुरा ।
सहस्त्रैः संयुतो वर्षैः कालः सत्ययुगे भवेत् ॥११२॥

भापार्थः—सर्ग के आरम्भ में सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षों से युक्त सत्ययुग का समय होता है ॥११२॥

लक्षैर्द्वादशाभिश्चैवं षण्णवति सहस्त्रकैः ।
वर्षैस्त्रेतायुगस्यात्र कालः सम्यक् प्रवर्त्तते ॥११३॥

भापार्थः—बारह लाख छानवे हजार वर्षों से युक्त त्रेतायुग का समय इस पृथ्वी पर प्रवर्तित होता है ॥११३॥

अष्टलक्षचतुष्षष्टि-सहस्त्रवर्षसंयुतः ।
द्वापरस्यप्रवर्त्तन कालस्तुभूमिमण्डले ॥११४॥

भापार्थः—आठ लाख चौसठ हजार वर्षों से युक्त द्वापर युग का समय भूमण्डल में व्यतीत होता है ॥११४॥

चतुर्लक्षैस्तथावर्षैः द्वात्रिंशत्संसहस्त्रकैः ।
युतः कलियुगस्याऽत्र कालोऽन्त्यस्तु महीतले ॥११५॥

भापार्थः—चार लाख बत्तीस हजार वर्षों से कलियुग का समय भूतल में वरतता है ॥११५॥

आदौ सत्ययुगे काले राज्यं सच्चक्रवर्तिनाम् ।
राजविद्यानुसारेण कार्याणिप्रभवन्ति हि ॥११६॥

भाषार्थः—सतयुग में उत्तम चक्रवर्ती राजाओं का राज्य होता है तथा सब काम राजविद्या के अनुसार होते हैं ॥११६॥

प्रवर्तते प्रजामध्ये स्वस्त्यादिनवकं सदा ।
चराचराणां सर्वेषां-दीर्घमायुः प्रजायते ॥११७॥

भाषार्थः—प्रजा के मध्य में स्वस्त्यादि नौ बातें बरतती हैं तथा सम्पूर्ण चराचरों की दीर्घायु होती है ॥११७॥

वपु विंशालश्च तथा बलाधिक्यं प्रजायते ।
पञ्चविंशतिसाहस्र-वार्षिकम्मानवं वयः ॥११८॥

भाषार्थः—शरीर बड़े विशाल तथा अधिक बलवान् होते हैं और उस समय पच्चीस हजार वर्षों की मनुष्य की अवस्था होती है ॥११८॥

सुमतौ सुकृते सत्ये पुण्ये धर्मेऽधिका रतिः ।
ईश्वराराधने भक्तिः सर्वश्रेष्ठा तदा भवेत् ॥११९॥

भाषार्थः—अच्छीबुद्धि, अच्छेकाम, सत्य, पुण्य और धर्म इन में अधिक अनुराग होता है तथा ईश्वर की आराधना में सर्वश्रेष्ठ भक्ति होती है ॥११९॥

भूमिर्बहुफला नित्यं जायते कृतजेयुगे ।
सहस्रेषु च वर्षेषु ग्रहणं पापजं फलम् ॥१२०॥

भाषार्थः—उस समय भूमि अधिक फल वाली होती है तथा हजारों वर्षों में जो ग्रहण होता है वह पापों का फल स्वरूप है ॥१२०॥

नभो जलं समुद्रस्य शेषतत्वानि वा तथा।
तारामण्डलमेतानि स्वच्छतांयान्ति सर्वशः ॥१२१॥

भाषार्थः—आकाश, समुद्र का जल, शेषतत्व, (पृथ्वी, तेज, वायु) तथा तारा मण्डल निर्मलता को प्राप्त होते हैं ॥१२०॥

क्रमात्प्रतियुगे तानि विकारं प्राप्नुवन्त्यथ।
स्थावरा जङ्गमाश्चापि क्रमशो यान्ति लाघवम् ॥१२२॥

त्रेताहस्तिसमं पुंसां वपुः सत्ययुगे भवेत्।
बलन्ताहग्भवेत्तेषां क्रमश्चैष युगे युगे ॥१२३॥

त्रेताखर्जूरतुल्यास्तु गोधूमाश्चापि शालयः।
सत्ये युगेऽभिजायन्ते प्रमाणं लघुदीर्घयोः ॥१२४॥

त्रेतान्ते राजविद्यायाः न्यूनता जायते क्षितौ।
द्वापरेऽपि तथैवंस्यात् ततः कलियुगेऽधिका ॥१२५॥

चतुर्युगेषु कालोऽयं द्विलक्षानामथापि च।
अष्टाशीतिसहस्राणां वर्षाणां याति संक्षयम् ॥१२६॥

एतानिदुष्कृतानीह रुन्ध्यु र्येदिमहीक्षितः।
तदाल्यान्येव वर्षाणि युगेषु यांति संक्षयम् ॥१२७॥

भाषार्थः—क्रम से प्रत्येक युग में वे सब विकार को प्राप्त होते हैं और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम भी इसी प्रकार लघुता को प्राप्त होते हैं। त्रेता युग के हाथी के समान मनुष्यों का शरीर सतयुग में होता है और उस समय उनका बल भी हाथियों के समान ही होता है। इसी प्रकार खजूर के बीज के समान सत्ययुग में गेहूं और चावल होते हैं। युगों में यह लघु दीर्घ का प्रमाण है। त्रेतायुग के अन्त में राजविद्या की न्यूनता पृथ्वी में होजाती है इसी प्रकार द्वापर में भी

और उससे भी अधिक न्यूनता कलियुग में होती है । दो लाख अट्ठासी हजार वर्षों का समय चारों युगों में क्षीणता को प्राप्त होना है । यदि इन पाप कर्मों को राजा लोग रोकदें तो इन युगों में से कम वर्ष क्षीण होते हैं ॥१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७॥

अस्मात्क्षयात्पापयुगे कलौ तु
लोकप्रजासम्परिरक्षणार्थम् ।
श्रीराजविद्या परिपूर्णरूपा
प्रकाशमभ्येति समस्तलोके ॥१२८॥

प्रकाशं राजविद्यायाः ये कुर्वन्ति महाजनाः ।
दीर्घायुर्जायतेतेषां योगिनामपि वा सदा ॥१२९॥

पापानि संक्षयं यान्ति पश्चात्स्वर्गसुखान्यपि ।
सम्प्राप्य परमानन्दे लीयन्ते ते महाजनाः ॥१३०॥

भावार्थः—पापमय कलयुग में इस क्षय के अनन्तर संसार की प्रजा की रक्षा के निमित्त श्री राजविद्या परिपूर्ण रूप से समस्त लोक में प्रकाश को प्राप्त होती है । तथा जो बड़े आदमी श्री राजविद्या का प्रकाश करते हैं उनकी तथा योगिजनों की दीर्घायु होती है । एवं उनके पाप नष्ट होजाते हैं और बाद में स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करके वे महापुरुष परमानन्द में लीन हो जाते हैं ॥१२८-१२९-१३०॥

भावी

अदृश्यशक्तिश्च तथेश्वरेच्छा
प्रवर्तते पूर्णतया न तान्ना ।
ज्ञातुं समर्थः क्षिति मण्डलेऽन्यो-
भाव्यं भवेत् सा परमेश्वरेच्छा ॥१३१॥

भावार्थः—जो अदृश्य शक्ति और ईश्वरेच्छा प्रवर्तित होती है उसको मनुष्य पूर्णरूप से संसार में जान नहीं सकता इसलिये ईश्वरेच्छा भावी (होनहार) कही जाती है ॥१३१॥

धर्मः

वेदाख्यधारणायुक्तो मानवो धर्म उच्यते ।
प्रकृत्या नियमैर्बद्धा प्रथमा धारणास्मृता ॥१३२॥

सृष्टौ शांतिर्भवेन्नित्यं द्वितीया सा यया स्थिता ।
यया वृद्धिर्भवेत्सातु तृतीया धारणा परा ॥१३३॥

ययास्थितिर्विजायेत चतुर्थी धारणा हि सा ।
एताभिर्धारणाभिश्च राज्यं भवति सुस्थिरम् ॥१३४॥

भावार्थः—चार धारणाओं से युक्त मानवधर्म कहा जाता है उसमें प्रकृति नियम के अनुकूल कार्य करना पहली धारणा कही जाती है। तथा जिससे संसार में नित्य शांति बनी रहे वह दूसरी धारणा है। और जिस धारणा से संसार में वृद्धि हो वह तीसरी धारणा है। तथा चौथी धारणा वह है जिससे संसार में स्थिति बनी रहे इन चारों धारणाओं से राज्य स्थिर होता है ॥१३२-१३३-१३४॥

शुद्धाधारणा शान्तिश्च

सर्वेजनाः महीलोके सुखेन निवसंतु सा ।
संशुद्धा धारणा प्रोक्ता निर्विघ्नाशांति रुच्यते ॥१३५॥

भावार्थः—संसार में सम्पूर्ण मनुष्य सुख से रहें ऐसी वह शुद्ध धारणा कही गई है । और जिसमें विघ्न न हो उसे शान्ति कहते हैं ॥१३५॥

वृद्धिस्थितिसुखानां च प्रयत्नेनाऽत्र सर्वशः ।
उपायकरणं सम्यक् प्रबन्धः प्रतिपाद्यते ॥१३६॥

भाषार्थः—वृद्धि, स्थिति और सुख इनके सर्वथा प्रयत्न से उपायों का करना ही प्रबन्ध कहा जाता है ॥१३६॥

मनोविचारशक्तिश्च

सर्वार्थचिन्तनं येन जायते तन्मनो जगुः ।
विचारशक्तिरेवात्र माया संप्रतिपाद्यते ॥१३७॥

अनया मायया विश्वो विस्तृतः परिनिष्ठितः ।
बलं मनुष्यदेहेषु मायाया एव विद्यते ॥१३८॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण अर्थों का जिससे चिन्तन होता है उसे मन कहते हैं । यहां राजविद्या में विचार शक्ति को ही माया कहा गया है । इस माया से ही संसार विस्तृत (फैला हुआ) और स्थित है तथा मनुष्यों के शरीर में इस माया का ही अपार बल है ॥१३७-१३८॥

विचारशक्तिः

शुद्धास्तिकं भावमवाप्य सम्यक्
भवेद्विचारः प्रथमा मताऽत्र ।
तथेश भावेन परार्थचिन्ता
विचारणेयं कथिता द्वितीया ॥१३९॥

भाषार्थः—शुद्ध और आस्तिक भाव को भली भांति प्राप्त कर विचार करना यह पहली विचारणा कही गई है तथा ईश्वर भाव से परमार्थ का चिन्तन करने को दूसरी विचारणा कहते हैं ॥१३९॥

प्रभुत्वभावेन सदैव चिन्ता
न्यायस्य वास्यात्परिरक्षणस्य ।
विचारशक्तिस्समुदीरितेयं
संसारहेतोस्सततं तृतीया ॥१४०॥

भाषार्थः—प्रभुत्व (स्वामि) भाव से न्याय और रक्षा का सर्वदा चिन्तन करना यह संसार के हित के लिये तीसरी विचार शक्ति कही गई है ॥१४०॥

पुण्यस्य धर्मस्य तु चिन्तनं स्यात्
प्रबन्धभावेन तदा चतुर्थी ।
अहिंस्रभावेन भवेद्दयायाः
कारुण्यमूलस्य तु पञ्चमीयम् ॥१४१॥

भाषार्थः—पुण्य और धर्म का प्रबन्ध भाव से विचार करना यह चौथी विचार शक्ति है । तथा अहिंसा भाव से दया और करुणा का विचार करना पांचमी विचार शक्ति कही गई है ॥१४१॥

स्वार्थस्याधमकार्यस्य विचारस्तु यया भवेत् ।
षष्ठी विचारणा प्रोक्ता विद्यते चाधमा परा ॥१४२॥

भाषार्थः—स्वार्थ तथा अधम (निकृष्ट) कार्यों का जिससे विचार होता है वह छठी विचार शक्ति है और यह सब से निकृष्ट है ॥१४२॥

शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु विचरो यत्र जायते ।
विचारणा तु संप्रोक्ता सप्तमी मंगलप्रदा ॥१४३॥

भाषार्थः—शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव से जो विचार किया जाता है वह कल्याण कारिणी सातवीं विचारणा है ॥१४३॥

में अत्यन्त लाभ करने वाला तथा उच्च स्थान प्राप्त करने वाला होता है एवं विनाश को कभी प्राप्त नहीं होता ॥१५९ १६०॥

प्रवृत्तिः

शुद्धात्मना परप्रीत्या जगद्धेतोर्निरन्तरम् ।
परार्थकार्ये लग्नत्वं प्रवृत्तिः प्रोच्यते नृणाम् ॥१६१॥

भाषार्थः—शुद्ध आत्मा से और परमप्रीति से संसार के हित के लिये निरन्तर पराये कामों में लगना मनुष्यों की प्रवृत्ति कही जाती है ॥१६१॥

साम

सुखशान्तिमृदुवाक्यैः सम्यक्कार्यसाधनम् ।
सामसम्यक्समाख्यातं प्राप्नोति सामवान् जयम् ॥१६२॥

भाषार्थः—सुख, शांति तथा मृदु वचनों से भली भांति कार्य सिद्ध करलेना ही साम कहा जाता है तथा साम गुण जिसमें है वह विजय को प्राप्त करता है ॥१६२॥

स्थितिः

अविनाशि ह्यखण्डं य-दविच्छिन्नतया क्षितौ ।
क्रमाद्वंशागमश्चापि स्थितिरित्यवधीयते ॥१६३॥

भाषार्थः—अविनाशमान, अखण्डित, और अविच्छिन्न रूप से तथा क्रम पूर्वक परंपरा से वंश का चला आना इसको स्थिति कहते है ॥१६३॥

दानम्

लोभम्वापिधनन्दत्वा कार्यानुष्ठान मेवहि ।
दानं श्रीराजविद्याया–मित्येवं प्रतिपाद्यते ॥१६४॥

भावार्थः—लोभ तथा धन देकर किसी काम का सिद्ध कर लेना ही श्री राजविद्या में दान कहा जाता है ॥१६४॥

दैवीसम्पत्

प्रभुत्वं तु धने यस्य सन्तत्यादिषु वा तथा ।
सुसन्तत्यादयः सर्वे भवन्त्वाज्ञानुकारिणः ॥१६५॥
शरीरं व्याधिभिर्हीनं स्थानं सौख्यविधायकम् ।
स्वेष्टे धर्मे भवेद्दार्ढ्यं विद्यासत्फलदायिनी ॥१६६॥
तेजोवत्वं क्षमावत्वं परमार्थाभिसाधनम् ।
अनुगामिनी भवेत्पत्नी दैवीसम्पदितीर्यते ॥१६७॥

भावार्थः—धन तथा सन्तति आदिकों पर प्रभुत्व होना और सन्तत्यादिकों का अच्छा तथा आज्ञाकारी होना, शरीर नीरोग होना, सुख से विभूषित स्थान होना, अपने इष्ट और धर्म में दृढ़ता होनी, परमार्थ का साधन करना, विद्या अच्छा फल देने वाली होना, कीर्तिवान् तथा क्षमावान् होना, पत्नी का अनुगामिनी होना इन सब बातों को दैवी सम्पत् कहते हैं ॥१६५-१६६-१६७॥

आसुरीसम्पत्

हिंसाकृतिरदानम्वाप्य–न्यायार्थाभिसाधनम् ।
मदमानाभिलग्नत्वं लिप्तत्वं कामभोगयोः ॥१६८॥

भाषार्थः—हित और अहितों की शुभ सम्मति को ग्रहण करने के लिये जो बुध जनों का अच्छा समूह स्थापन किया जाता है वह संसार में सभा कहलाती है ॥१५१॥

सुखं दुःखञ्च

स्वानुकूलपदार्थानां सम्प्राप्तिः सुखमुच्यते ।
एतस्मात्तुविपरीतं यत्तद्दुःखं प्रणिगद्यते ॥१५२॥

भाषार्थः—अपनी आत्मा के अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति को सुख कहते हैं और जो इससे विपरीत है वह दुःख कहा जाता है ॥१५२॥

सत्संगतिः

कामक्रोधविमोहानां लोभाहंकारयोरपि ।
रुध्वाऽऽधिक्यं समैर्भावैः कुर्वतां स्ववशे च तान् ॥१५३॥
विचाराणामुच्चभावं विनिश्चितवतामथ ।
सुदृढास्तिकभावानां लोकानुभवशालिनाम् ॥१५४॥
स्वार्थाधिक्यविमुक्तानां शुद्धानां दूरदर्शिणाम् ।
न्यायसत्यानुरक्तानां कुलीनानां नृणाञ्च या ॥१५५॥
संगतिः सर्वलोकेऽस्मिन् सत्संगतिरुदीर्यते ।
तथैनां संगतिं प्राप्य मानवो याति सद्गतिम् ॥१५६॥

भाषार्थः—काम, क्रोध, मोह, लोह और अहंकार की अधिकता को रोककर और सम्भाव से उनको अपने वश में करने वाले, तथा विचारों के उच्च भाव को निश्चित् करने वाले, अच्छा दृढ़ आस्तिक भाव रखने वाले, संसार के अनुभवी, स्वार्थ की अधिकता से विमुक्त, शुद्ध, दूरदर्शी, न्याय और सत्य के अनुरागी और कुलीन ऐसे पुरुषों

की संगति संसार में सत्संगति कही जाती है। और इस संगति को प्राप्त करके मनुष्य अच्छी गति को प्राप्त करता है ॥१५३-१५४-१५५-१५६॥

राजर्षिः

राजविद्या परिज्ञा ये वृद्धाश्च क्षत्रिया जनाः।
राजर्षयोऽभिजायन्ते क्षात्रधर्मप्रबोधकाः ॥१५७॥

भाषार्थः—राजविद्या के ज्ञाता वृद्ध (बुड्ढे) क्षत्रिय लोग क्षत्रियों के धर्म को बताने वाले राजर्षि होते हैं ॥१५७॥

असङ्गशक्तिः

संगदोषं परित्यज्य दृढभावेन रक्षणम्।
असंगशक्तिरित्येषा कथ्यते जगतीतले ॥१५८॥

भाषार्थः—सङ्ग (समूह) दोष को छोड़ कर दृढ़ भाव से रक्षा करना यह असङ्ग शक्ति संसार में कही जाती है ॥१५८॥

पुण्यम्

दानं सदुपदेशार्थं पुण्यस्थानेषु दीयते।
पुण्यं तत्कोटिगणिकं वर्द्धते मंगलप्रदम् ॥१५९॥

पूर्णलाभकरं श्रेयः त्रैलोक्येषु ददाति च।
पदमुच्चं कदाचिन्नो विनाशमुपगच्छति ॥१६०॥

भाषार्थः—पुण्यस्थानों में अच्छे उपदेश के लिये जो दान दिया जाता है वह पुण्य करोड़ गुना बढ़ जाता है। और तीनों लोकों

विचारशक्तिस्समुदीरितेयं
विभज्य भावेषु च सप्तधाऽत्र ।
नान्यो विचारस्तु निरर्थकःस्यात्
कदापि भावैः परिहीयमानः ॥१४४॥

भाषार्थः—पृथक् २ भावों में सात प्रकार से विभाग करके यह विचार शक्ति यहां पर कही गई है। इसलिये जिन २ भावों को धारण करके जिन २ वातों का विचार करना चाहिये उन्हें उन्ही भावों से विचार करे। तथा अन्य निरर्थक और उक्त भावों से गिरे विचार न करे ॥१४४॥

राज्यम्

धर्मशांतिप्रबन्धैश्च सदाज्ञायाः प्रवर्तनम् ।
राज्यं तदिह संप्रोक्तं राजाज्ञा सा निगद्यते ॥१४५॥

भाषार्थः—धर्म शांति और प्रबन्धों से अच्छी आज्ञा को चलाना राज्य कहा जाता है। वही राज्यसम्बन्धी आज्ञा कही जाती है ॥१४५॥

सेना

जितेंद्रिया वीरभटास्तथैवं
शस्त्रास्त्रशिक्षापरिपूर्णदक्षाः ।
नित्यं श्रमाभ्यासरताश्चसभ्याः
सुशिक्षिता युद्धविशारदाश्च ॥१४६॥
प्रजाजनानां परिरक्षकाश्च
शस्त्रैस्तथास्त्रैरपिसज्जिता ये ।

तेषां जनानांहि समूह एव
वरूथिनी संप्रतिपाद्यते सा ॥१४७॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय, वीर और योधा शस्त्रास्त्रों की शिक्षा में पूर्णदक्ष, नित्य परिश्रम के अभ्यास में लगे हुए, सुशिक्षित, युद्ध-विशारद (लड़ने में चतुर) और प्रजा जनों के रक्षक, शस्त्र तथा अस्त्रों से सजे हुए मनुष्यों का जो समूह है वही सेना कही जाती है ॥१४६-१४७॥

उत्साहः

शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु क्षत्रियाणां प्रजायते ।
उत्साहः सर्वदा लोके परम्मङ्गलकारणम् ॥१४८॥
शुद्धोच्चाभ्यां भावाभ्यां जायते विप्रवैश्ययोः ।
शुद्धभावात्समुत्साहः शूद्राणां प्रणिगद्यते ॥१४९॥
हितप्रीत्यैकतामध्ये प्रोत्साहो निवसत्यसौ ।
भक्तिभावेन साम्यन्तु सर्ववर्णेषु विद्यते ॥१५०॥

भावार्थः—शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव से सर्वदा संसार में परं कल्यानकारी क्षत्रियों का उत्साह होता है। तथा शुद्ध उच्च भावों से वैश्य और ब्राह्मणों को उत्साह होता है। केवल शुद्ध भाव से शूद्रों का उत्साह कहा गया है। हित प्रीति और ऐक्यता में यह उत्साह सदा निवास करता है। और भक्ति भाव से समानता सम्पूर्ण वर्णों में है ॥१४८-१४९-१५०॥

सभा

हितानामहितानाञ्च गृहीतुं सम्मतिं शुभाम् ।
बुधानां स्थाप्यते व्यूहः सा सभा कथ्यते क्षितौ ॥१५१॥

स्तब्धत्वमात्ममानित्वं भयक्रोधावलम्बनम् ।
अशांतिमत्वं पैशुन्यं तथास्यादाततायिता ॥१६९॥
अभिद्रोहावलम्बश्च नास्तिकत्वमथापिवा ।
चापल्यमनृतालम्बो भवेत्सम्पदिहासुरी ॥१७०॥

भापार्थः—हिंसा करना, दान न करना, अन्याय से धन संचित करना, मद (नशा) मान (अहंकार) में लग्न रहना, काम और मोह में लगा रहना, स्तब्धता (ढीठता) आत्ममानी (अपनी बढ़ाई चाहने वाला) होना, भय तथा क्रोध का अवलम्बन करना, अशांति धारण करना, पिशुनता (चुगली) धारण करनी, आततायी (उपद्रवी) होना, द्रोह का अवलम्बन करना, नास्तिकता धारण करना, चपलता और असत्य का अवलम्बन करना यह आसुरी संपत् कही जाती है ॥१६८-१६९-१७०॥

ज्ञानम्

मनोबुद्धिरहङ्कार-श्चित्चैतन्यनामकम् ।
मनस्त्विह समाख्यातं संकल्पप्रविकल्पकृत् ॥१७१॥
सन्देहस्य स्वरूपश्च बुद्धिर्निश्चयात्मिका ।
अहमित्यस्त्यहंकारः सोभिमानस्य वाचकः ॥१७२॥
याथातथ्येन विज्ञानं ज्ञानमित्येवगीयते ।
चत्वारोऽशा इमेसम्यक् ज्ञानस्यसमुदीरिताः ॥१७३॥

भापार्थः—मन, बुद्धि, अहंकार और चैतन्य नाम वाला चित् (चेतना) है। सन्देह स्वरूप तथा संकल्प विकल्प पैदा करने वाला मन कहा गया है । निश्चय ज्ञान वाली बुद्धि होती है । तथा अहं भाव वाला अहंकार होता है और वह अभिमान का वाचक है। यथार्थ विज्ञान को प्राप्त कर लेना ज्ञान कहा जाता है यही चार ज्ञान के अंश कहे गये हैं ॥१७१-१७२-१७३॥

सुमतिः

शुद्धबुद्धिर्विचारोवा विशुद्धः सुमतिस्त्वियम् ।
अनया जायते लोके सर्वदैवाऽभिमंगलम् ॥१७४॥

भापार्थः—शुद्ध बुद्धि और विशुद्ध विचार ये सुमति कही गई है इस सुमति से संसार में सर्वदा कल्याण होता है ॥१७४॥

तपः

परिश्रमेण कार्याणां तपः सम्पादनं भवेत् ।
तस्य तेजः स्वरूपं हि जायते नच सर्वशः ॥१७५॥

कायेन मनसा वाचा क्षत्रियाणां परंतपः ।
राजविद्यासमभ्यासात् सम्प्राप्य सुखदाम्मतिम् ॥१७६॥

न्यायाचारस्तथाप्यस्त्र-शस्त्राभ्यासाभिसाधनम् ।
शक्तिं संप्राप्य भूलोके रक्षा चरणमुत्तमम् ॥१७७॥

भापार्थः—परिश्रम से कामों का सम्पादन करना तप कहा गया है और उस तप का तेजः स्वरूप है तथा शरीर, मन और वाणी से किया जाता है । राजविद्या के अभ्यास से अच्छी बुद्धि प्राप्त करके न्याय का आचरण करना तथा अस्त्रशस्त्रों के अभ्यास का साधन करने से शक्ति को प्राप्त करके संसार में उत्तम प्रकार से रक्षा करना यह क्षत्रियों का परंतप है ॥१७५-१७६-१७७॥

तेजः

निरालस्यं भवेत्तेजः रूपश्चास्य प्रकाशवत् ।
यस्मिन्भवेन्नशैथिल्यं तेजोलक्षणमुच्यते ॥१७८॥

भाषार्थः—आलस्य के विना जो काम किया जाता है उसे तेज कहते हैं और इस तेज का रूप प्रकाश वान कहा गया है । तथा जिसमें शिथिलता न हो वह तेज का लक्षण कहा गया है ॥१७८॥

भूतिः कीर्तिश्च

राज्यलक्ष्मीश्च सम्पत्तिश्चैश्वर्यम्भूतिरुच्यते ।
जगद्धितार्थकार्यैस्तु यशः कीर्तिरुदीर्यते ॥१७९॥

भाषार्थः—राज्यलक्ष्मी, सम्पत्ति और ऐश्वर्य ये भूति कही जाती है और संसार के हित के कामों के करने से जो यश होता है उसे कीर्ति कहते हैं ॥१७९॥

कान्तिः

सोत्साहं महतां नित्यं कार्याणांसाधनञ्चयत् ।
शौर्येण सहसा वास्यात् कांतिरित्यवगीयते ॥१८०॥

भाषार्थः—एक साथ, पराक्रम से तथा उत्साह के साथ जिस बड़े काम को सिद्ध किया जाय उसे कांति कहते हैं ॥१८०॥

यज्ञम्

विशुद्धभावैः मनसोऽभितृप्तिः
सुभोजनैस्तर्पणमेव वा स्यात् ।
घृतप्रमध्वादिसुगंधितैश्च
धान्योत्तमांशैरभिजुह्यवह्निम् ॥१८१॥
ईश्वरस्य देवतानां सन्तर्पणमितीरितम् ।
मनुष्याणाम्पशूनाम्वा द्रव्यैः पुष्टिविधायकैः ॥१८२॥

पितॄन् पिशाचान् सततं वायुनातर्पयेत्सदा ।
वृक्षादीनान्तर्पणन्तु कुर्याच्चानूपभूमिभिः ॥१८३॥
मदिरास्रग्वसामांसैः युद्धयज्ञैश्चतर्पणम् ।
पिशाचराक्षसादीनां पशूनां, यज्ञमीरितम् ॥१८४॥

भाषार्थः—विशुद्ध भाव से मन की शुद्धि करना तथा अच्छे भोजनों से मन को तृप्त करना। घृत, शहद आदि सुगन्ध द्रव्यों तथा धान्य के उत्तम भाग से अग्नि में हवन करके ईश्वर और देवताओं का सन्तर्पण करना, मनुष्य और पशुओं का पुष्टिकर द्रव्यों से तर्पण करना, पितृ (पितर) और पिशाचों का वायु से तर्पण करना, वृक्षादिकों का जल प्राय भूमि से तर्पण करना, शराब, रुधिर, वसा (चर्वी) मांस तथा युद्धरूपी यज्ञों से पिशाच राक्षसादि तथा पशुओं को तृप्त करना यज्ञकहा गया है ॥१८१-१८२-१८३-१८४॥

आशीर्दुराशीश्च

परोपकारै धर्मैश्च न्यायैः स्यात्सुखमात्मनि ।
आशीरित्येव जायेत सर्वदामङ्गल प्रदा ॥१८५॥

भाषार्थः—परोपकार धर्म तथा न्याय से आत्मा में सुख प्राप्त होने को आशीः कहते हैं तथा यह आशी सदा कल्याण करने वाली है ॥१८५॥

विनिर्दोषात्मनोऽन्याया—चारात्संपीडनस्य यत् ।
दुष्कृतस्य फलं चापि दुराशीरितिकथ्यते ॥१८६॥

भाषार्थः—अन्याय से निर्दोष आत्मा को पीडित करने का तथा बुरे काम का जो फल होता है उसे दुराशीः कहते हैं ॥१८५॥

न्यायान्यायौ

न्यायो भवे न्महीपाय सर्वदैव सुधोपमः ।
नृपाऽऽयुर्वर्द्धनश्चापि राज्यस्थैर्यकरः परः ॥१८७॥

अन्यायस्त्विहविज्ञेयः हालाहलविषोपमः ।
क्षीयतेऽन्यायिनो नित्य-मायूराज्यश्चनश्यति ॥१८८॥

भापार्थः—राजा के लिये न्यायाचरण करना सर्वदा अमृत के समान है तथा राजा की आयु को बढ़ाने वाला और राज्य को स्थिर करने में श्रेष्ठ है। अन्याय का आचरण करना हलाहल विष के समान जानना चाहिये अन्यायी राजा की आयु क्षीण होती है तथा राज्य नाश को प्राप्त होता है ॥१८७-१८८॥

भूमिपतिः ग्रामाधिपश्च

न्यूनाधिकांशेन महीविभागो-
यस्यांतिके भूमिपतिः स एव ।
न्यूनाधिकग्राम पतिश्चयस्यात्
ग्रामाधिपः संप्रतिपाद्यतेऽत्र ॥१८९॥

भापार्थः—न्यूनाधिक (कम ज्यादा) अंश से जो पृथिवी का पति है वह भूमिपति कहलाता है। एवं न्यूनाधिक (कम व ज्यादा) ग्रामों का स्वामी ग्रामाधिपति कहाजाता है ॥१८९॥

मण्डलेशस्तथा राजा

पञ्चाशताग्रामपतिश्चयः स्यात्
निगद्यते सोऽत्र तु मण्डलेशः ।
तथा शताग्रामपतिर्वरेण्यः
संजायते भूमितलेच राजा ॥१९०॥

भापार्थः—अनुमान से पचास ग्रामों का जो अधिपति (स्वामी) है वह मण्डलेश राजा कहलाता है इसी प्रकार सौग्रामों के अधिपति को राजा कहते हैं ॥१९०॥

चक्रवर्ति १२
सम्राट् ११
राजेश्वरमहाराजाधिराजः १०
महाराजाधिराजः ९
महाराजः ८
पार्थिवो वा पार्थिवाऽधिपः ७
राट् वा विराट् ६
सामन्तः ५
राजा ४
माण्डलेशः ३
ग्रामाधिपतिः २
भूमिपतिः १

U. A. P. P. J.
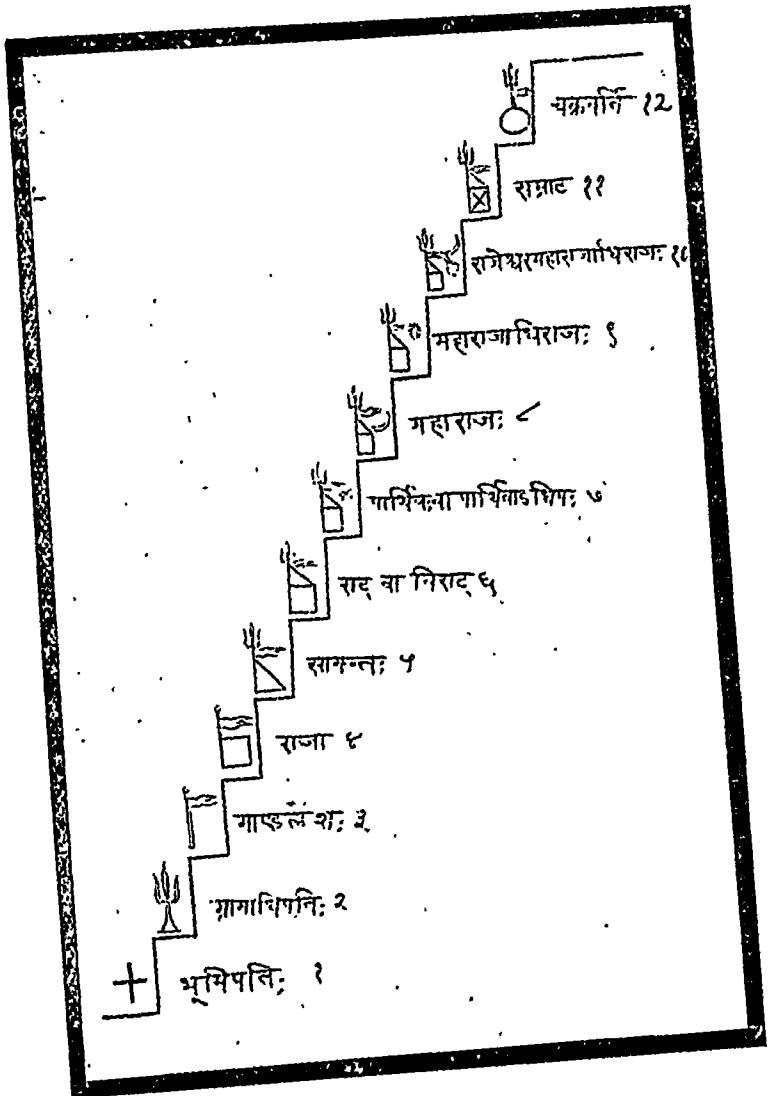
सामन्तस्तथाराट्

दशराजपतिर्यश्च सामन्त इति कथ्यते।
द्विसामन्ताधिपस्तावत् राडित्येवं विजायते ॥१९१॥

भाषार्थः—दश राजाओं का अधिपति (स्वामी) सामन्त कहलाता है। दो सामन्तों का अधिपति राट् कहाजाता है ॥१९१॥

विराट्

राज्यदातुप्रजाबन्धुः प्रीतिसम्पादकोभवेत्।
स विराडिति संप्रोक्तः यशस्वी चप्रतापवान् ॥१९२

भाषार्थः—यदि राट् प्रजा तथा बान्धवों का प्रीति सम्पादक होता है तो वह विराट् कहलाता है तथा वह यश तथा प्रताप से युक्त होना चाहिये ॥१९२॥

पार्थिवः

त्रिसहस्रावधिग्रामान् शास्तिसौख्यसमन्वितः।
कथ्यते राजविद्यायाम् पार्थिवः सक्षितिश्वरः ॥१९३॥

भाषार्थः—तीन हजार पर्यन्त ग्रामों का जो राजा सुख पूर्वक शासन करता है उसकी राजविद्या में पार्थिव संज्ञा कही गई है ॥१९३॥

पार्थिवाधिपः

पार्थिवः स्यात् प्रजाबन्धुः प्रीतिसम्पादको यदि।
पार्थिवाधिपनाम्नैव कथ्यते स नृपोत्तमः ॥१९४॥

भाषार्थः—यदि पार्थिव प्रजा का हितैषी और प्रीति को संपादन (पैदा) करने वाला हो तो वह श्रेष्ठ राजा पार्थिवाधिप इस नाम से कहा जाता है ॥१९४॥

महाराजः, महाराजाधिराजः, राजेश्वर महाराजाधिराजः, सम्राट्, चक्रवर्ती च

दशसामन्तपालस्तु महाराजो निगद्यते ।
तथा दशमहाराजा-नान्नाथोयश्च जायते ॥१९५॥
महाराजाधिराजोऽसौ पृथिव्यां परिकथ्यते ।
महाराजाधिराजानां दशानामधिपास्तथा ॥१९६॥
लक्षादुपरि संख्यातान् ग्रामान्वापालयन्तिये ।
राजेश्वरमहाराजा-धिराजाः प्रभवन्ति ते ॥१९७॥
दशतान् पालयेयस्तु भूतले पृथिवीपतिः ।
सम्राड्निगद्यतेसैव कोटिग्रामपतिश्चयः ॥१९८॥
सार्वभौमः प्रजायेत-सर्व भूमेश्च पालकः ।
चक्रवर्ती परासंज्ञा विज्ञेयास्यतु मानवै ॥१९९॥
पृथक् पृथक् महीपानां सर्वाः संज्ञाः प्रवर्णिताः ।
अथाग्रे राजविद्यायां चिन्ह ज्ञानं भविष्यति ॥२००॥

भाषार्थः—दश सामन्तों का अधिपति महाराजा कहा जाता है। तथा दश महाराजाओं का अधिपति महाराजाधिराज् कहलाता है। एवं दश महाराजाधिराजों का अधिपति अथवा लक्ष से ऊपर ग्रामों का अधिपति, राजेश्वरमहाराजाधिराज कहाता है। तथा दश राजेश्वर महाराजों का अधिपति (स्वामि) तथा कोटि (करोड़)ग्रामों का अधिपति सम्राट् कहलाता है। इसी भांति भूतल पर जिस राजा का शासन होता है उसे सार्वभौम राजा कहते हैं तथा चक्रवर्ती इसका दूसरा नाम जानना चाहिये। उपरि लिखित राजाओं की पृथक् २ संज्ञायें वर्णन करदी गई हैं इससे आगे राज विद्या में चिह्नों का ज्ञान प्राप्त होगा ॥१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००॥

सर्वेषामुक्तभूपानां चिह्नमस्तु पृथक् पृथक् ।
ध्वजास्वपि च मुद्रासु रूपश्चाकृतिरेव वा ॥२०१॥

भाषार्थः—ऊपर वर्णन किये हुये समस्त राजाओं की ध्वजा (झण्डा) मुद्रा (सिक्का) पर चिह्न, रूप और आकार ये भिन्न २ होने चाहियें ॥२०१॥

राजचिन्हानि

सुप्तोर्ध्वरेखासहितं नितान्तम्
ज्ञेयं जनै भूमिपतेस्तु चिन्हम् ।
युक्तं त्रिशूलेन विजायतेऽत्र
चिन्हं तु यद्ग्रामपतेर्मनोज्ञम् ॥२०२॥

भावार्थः—पड़ी हुई और खड़ी हुई रेखा से सहित मनुष्यों को भूमिपति का चिह्न जानना चाहिये तथा त्रिशूल से युक्त मनोहर चिह्न ग्रामपति का होता है ॥२०२॥

मण्डलेशस्य चिन्हं तु ध्वजयास्यात्समन्वितम् ।
चतुष्कोणध्वजायुक्तं चिन्हं राज्ञोऽत्र जायते ॥२०४॥

भावार्थः—मण्डलेश का चिह्न ध्वजा युक्त जानना चाहिये एवं ध्वजा और चतुष्कोण से युक्त राजा का चिह्न कहा गया है ॥२०३॥

अधस्तात्तु त्रिकोणं स्यात् तस्योपरि भवेद् ध्वजा ।
सामन्तस्य तु यच्चिन्हं त्रिशूले नापि संयुतम् ॥२०४॥

भावार्थः—नीचे की ओर त्रिकोणाकार उसके ऊपर ध्वजा और त्रिशूल होने से सामन्त का चिह्न कहा गया है ॥२०४॥

चतुष्कोणत्रिकोणाभ्यां ध्वजयाच समन्वितम् ।
त्रिशूलयुक्तं च तथा राट्चिन्हं परिजायते ॥२०५॥
चतुष्कोणादि संयुक्तं तारकेण समन्वितम् ।
पार्थिवस्य भवेच्चिन्हं जगतो ज्ञान हेतवे ॥२०६॥

भाषार्थः—चतुष्कोण, त्रिकोण, ध्वजा और त्रिशूल से युक्त राट् का चिह्न जानना चाहिये ऊपर वर्णन किये हुए यही चतुष्कोणादि यदि तारक (तारा) से युक्त हों तो पार्थिव का चिह्न संसार के ज्ञान के लिये वर्णन किया गया है ॥ २०५-२०६॥

चतुष्कोणादि युक्तं वा तथार्द्धचन्द्रसंयुतम् ।
महाराजस्य चिन्हं स्यात् लोकानां ज्ञानहेतवे ॥२०७॥

भाषार्थः—इसी प्रकार उक्त चतुष्कोणादि (चतुष्कोण,त्रिकोण, ध्वजा, त्रिशूल) यदि अर्ध चन्द्र से युक्त हों तो उसे महाराज का चिह्न जानना चाहिये ॥२०७॥

एवं सूर्येण संयुक्तं चतुष्कोणादिभिर्युतम् ।
महाराजाधिराजस्य ज्ञेयं चिन्हं सदा नरैः ॥२०८॥

भाषार्थः—इसी प्रकार सूर्य और चतुष्कोणादि से युक्त महाराजाधिराज का चिह्न मनुष्यों को जानना चाहिये ॥२०८॥

सूर्यचन्द्रयुतं चिन्हं चतुष्कोणादिभिस्तथा ।
राजेश्वरमहाराजा-धिराजस्य प्रजायते ॥२०९॥

भाषार्थः—सूर्य, चन्द्र और चतुष्कोणादि से युक्त राजेश्वर महाराजाधिराज का चिह्न जानना चाहिये ॥२०९॥

चतुष्कोणादिसंयुक्तं कोणरेखासमन्वितम् ।
सम्राट् चिन्ह मितिज्ञेयं मनुष्यैस्तु निरंतरम् ॥२१०॥

भाषार्थः—चतुष्कोणादि तथा त्रिकोण रेखा से युक्त मनुष्यों को सम्राट् का चिह्न जानना चाहिये ॥२१०॥

ध्वजात्रिशूलसंयुक्तं वर्तुलाकारसंयुतम् ।
जनैः चिन्हं परिज्ञेयं सर्वथा चक्रवर्त्तिनः ॥२११॥

भाषार्थः—ध्वजा और त्रिशूल तथा गोलाकार से युक्त मनुष्यों को चक्रवर्ती का चिह्न जानना चाहिये ॥२११॥

सार ज्ञानम्

वाह्येन्द्रियाणां विज्ञानं मोहश्च विद्यते सदा ।
सर्वजीवेषु सामान्यं न भेदो जायते क्वचित् ॥२१२॥

भाषार्थः—वाहर की इंद्रियों का ज्ञान तथा मोह यह सम्पूर्ण प्राणियों में समान है इसमें कोई भेद नहीं है ॥२१२॥

तेजोवत्त्वं क्षमावत्वं दयास्यात्प्राणिभिः सह ।
निर्लोभित्वं दानवुद्धिः भयशोकविवर्जनम् ॥२१३॥
प्रीतिः स्यात्सज्जनैः सार्द्धं धैर्यं वुद्ध्यवलम्वनम् ।
द्वेषभावो न केनापि श्रद्धा वा सत्यभाषणम् ॥२१४॥
संशुद्धधारणायाश्च सर्वथैवावलम्वनम् ।
सारज्ञानमितिप्रोक्तं मनुष्येष्वेव जायते ॥२१५॥

भाषार्थः—जितेन्द्रिय होना, क्षमा रखना, प्राणियों के साथ दया रखना, निर्लोभी होना, दान में वुद्धि रखना, भय तथा शोक को छोडना, सज्जनों के साथ प्रीति रखना, श्रद्धा रखना, सत्य वोलना, सर्व प्रकार शुद्ध धारणा का ग्रहण करना इन सव वातों को सारज्ञान कहते हैं तथा यह सारज्ञान मनुष्यों में ही हो सकता है ॥२१३-२१४ २१५॥

लोभः सत्यलोभश्च

सुखलिप्सा पदार्थेषु लोभ इत्येव जायते ।
यशः प्राप्तुं भवेल्लोभः सत्यलोभः स उच्यते ॥२१६॥

भाषार्थः—प्रत्येक पदार्थों में सुख की इच्छा करने को लोभ कहते हैं किन्तु जो लोभ यश के प्राप्त करने के लिये किया जाता है वह सत्य लोभ होता है। अर्थात् सामान्य लोभ समस्त प्राणियों में होता है किन्तु सत्यलोभ का प्राप्त करना सराहनीय है अतः यहां पर सत्य लोभ का उपदेश किया गया है ॥२१६॥

भेदः

सम्मिश्रितस्यारिबल स्ययुक्त्या
द्विधाविधानं कथितः प्रभेदः।
भिन्नान्विशुद्धान् पुरुषान् स्वपक्षे
कुर्यान्नृपोभेदनयप्रवीणः ॥२१७॥

भाषार्थः—सिश्रित (मिले हुये) शत्रु के बल (ताकत) को युक्ति पूर्वक पृथक् २ कर देने को भेद कहते हैं अतएव भिन्न (पृथक्) किये हुये विशुद्ध आत्मा वाले मनुष्यों को भेद नीति में प्रवीण राजा अपने पक्ष में करले ॥२१७॥

बलस्वरूपः पुरुषः

श्रीशंकर उवाच ।

बलस्वरूपस्य नरस्य सम्यक्
पृथक् पृथक् वर्णनमाकरोमि ।
अंगप्रभेदेन जगद्धितार्थं
भविष्यति ज्ञानमितोबलस्य ॥२१८॥

भाषार्थः—अब मैं संसार के हित के लिये बलस्वरूप पुरुष का अंग प्रत्यंगों के भेद से पृथक् २ वर्णन करता हूं इसी से मनुष्यों को बल का ज्ञान प्राप्त होगा कि बल क्या है ? ॥२१८॥

शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु विचारस्य नियोजनम् ।
इष्टमित्येव संजातं शिरस्तत्तुबलस्य वै ॥२१९॥

भाषार्थः—शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव से विचार करना यह इष्ट कहा गया है तथा यही इष्ट बल का शिर जानना चाहिये । अर्थात् अपने इष्ट का ग्रहण करना यह मनुष्य के बल रूप पुरुष का उत्तमांग है और जिसमें इष्ट का अभाव है वह मनुष्य बल के शिरो रूप अङ्ग से हीन है ॥२१९॥

ग्रीवा बलस्य संजाता शरीरेन्द्रियसंयमः ।
शौर्यन्तेजः समाख्यातं हृदयं तस्य निश्चितम् ॥२२०॥

भाषार्थः—शरीर तथा इन्द्रियों का संयम (अपने वश में रखना) यह बल की ग्रीवा कही गई है तथा शौर्य (पराक्रम) और तेज (प्रताप) उसका हृदय है ॥२२०॥

चारैर्वृत्तपरिज्ञानं प्रजासम्मेलनं तथा ।
उदरन्तत्समाख्यातं बलरूपस्य देहिनः ॥२२१॥

बलस्वरूपःपुरुषः।

U A P P. J

भाषार्थः—चारों (गुप्तदूतों) से वृत्तान्त को जान लेना तथा प्रजा के साथ मिलते रहना यह बल स्वरूप पुरुष का उदर कहा गया है ॥२२१॥

धार्मिकस्योपदेशस्य-प्रबन्धः संगतिः शुभा ।
सर्वविद्याप्रचारश्च कटिभागः समीरितः ॥२२२॥

भाषार्थः—सर्वदा धर्म के उपदेश का प्रबन्ध करना,सत्सङ्गति और सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार करना यह कटि भाग (कमर) है ॥२२२॥

धर्मेणैवायसंसिद्धिः करोवामः समीरितः ।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासो नित्यं तु दक्षिणः करः ॥२२३॥

भाषार्थः—धर्म पूर्वक आय (आमदनी) का सिद्ध करना यह वाम (बायां) हस्त कहा गया है तथा नित्य प्रति अस्त्र शस्त्रों का अभ्यास करना यह दक्षिण (दायां) हस्त है ॥२२३॥

मर्यादांसम्यगाश्रित्य न्यायस्याचरणेन वा ।
प्रबन्धकरणश्चेति कथितौ चरणावुभौ ॥२२४॥

भाषार्थः—भली भांति मर्यादा का आश्रयण करके न्याय का आचरण करने से प्रबन्धों का करना यह बल स्वरूप पुरुष के दोनों पैर कहे गये हैं ॥२२४॥

रक्षास्वरूपा देवी

श्रीशंकर उवाच

रक्षास्वरूपदेव्यास्तु वर्णनं जायतेऽधुना ।
अङ्गप्रत्यङ्गभेदेन श्रूयतां पार्वति प्रिये ? ॥२२५॥

भाषार्थः—हे हृदयङ्गमे पार्वति ? अब यहां पर रक्षारूपदेवी का अङ्ग प्रत्यङ्गों के भेद से वर्णन होता है सो उसे तुम सुनो ॥२२५॥

रक्षास्वरूपा या देवी जीवानां परिरक्षणम् ।
संशिक्षयति विघ्नेभ्यः, सततं सा बलाश्रिना ॥२२६॥

भाषार्थः—रक्षा स्वरूपा देवी सांसारिक जीवों की विघ्नों से रक्षा करना सिखाती है और वह बल के आश्रित रहा करती है। अर्थात् जहां बल है वहीं रक्षा हो सकती है ॥२२६॥

प्रजानां स्वस्य धर्मस्य मातृभूमेस्तथाऽनिशम् ।
रक्षणं मातृभाषायाः शिरोदेव्याः समीरितम् ॥२२७॥

भाषार्थः—प्रजा का धर्म और अपना धर्म, मातृभूमि, और मातृ भाषा की रक्षा करना यह रक्षा रूपादेवी का मस्तक कहा गया है ॥२२७॥

स्वप्रजाप्राणसंरक्षा ग्रीवा समभिजायते ।
स्वस्यप्रजानां वपुषः यज्ञानामपिनित्यशः ॥२२८॥
यत्नतो रक्षणञ्चेति रक्षायाः हृदयं स्मृतम् ।
स्थावराणां जङ्गमानां जडचेतनयोस्तथा ॥२२९॥
रक्षणन्तु समाख्यात-मुदरं सुतरामिदम् ।
स्वातन्त्र्याचारसंरक्षा कटिभागः समीरितः ॥२३०॥

रक्षास्वरूपादेवी।

U.AP.P J

भाषार्थः—अपने और प्रजा के प्राणों की रक्षा करना ग्रीवा है। और अपने तथा प्रजा के शरीर की रक्षा करना तथा नित्य यत्न से यज्ञों की रक्षा करना रक्षादेवी का हृदय कहा गया है। स्थावर, जङ्गम जड और चेतन इन सबों की रक्षा करना उदर कहा गया है। स्वतन्त्रता और आचार की रक्षा करना कटिभाग है ॥२२८-२२९-२३०॥

दिव्यान्यस्त्राणि शस्त्राणि द्वावपीहकरौस्मृतौ।
प्रबन्धन्यायमर्यादा-नां रक्षा चरणावुभौ ॥२३१॥

भाषार्थः—दिव्य अस्त्र और शस्त्र ये दोनों हाथ हैं। प्रबन्ध, न्याय और मर्यादा की रक्षा करना यह दोनों रक्षादेवी के पैर हैं ॥२३१॥
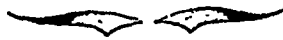
बुद्धिरूपा देवी

श्रीशंकर उवाच

देव्याः बुद्धिस्वरूपायाः वर्णनंसम्प्रजायते ।
अङ्गप्रत्यङ्गभेदेन श्रूयतां पार्वति प्रिये ? ॥२३२॥

भाषार्थः—हे प्रिये ! पार्वति ? अब बुद्धि स्वरूपा देवी का अङ्ग प्रत्यंगों के भेद से वर्णन होता है सो उसे तुम सुनो ॥२३२॥

अत्यावश्यककार्यस्य प्रागुपायः सदा भवेत् ।
इष्टे योगो यथायोग-युक्तया संचालनं प्रजाः ॥२३३॥

पवित्रेऽथशुभे मार्गे शिरोदेव्याः समीरितम् ।
शीतलत्वं कौमलत्वं वामचक्षुरितिस्मृतम् ॥२३४॥

भाषार्थः—अत्यन्त आवश्यकीय जो कार्य हों उसका उपाय सब से पहले करना, इष्ट योग (इष्ट में लगना) तथा यथायोग युक्ति से शुद्ध और पवित्र मार्ग पर प्रजा को चलाना, यह बुद्धिरूपा देवी का शिर कहा गया है । तथा शीतलता और कोमलता ये वाम चक्षु है ॥२३३-२३४॥

तेजोवत्वं समाख्यातं लोचनं दक्षिणं वरम् ।
देव्याबुद्धिस्वरूपायाः कार्यसिद्धिप्रदायकम् ॥२३५॥

भाषार्थः—बुद्धि स्वरूपा देवी का तेज (प्रताप) दक्षिण चक्षु कहा गया है यह सर्व कार्यों की सिद्धि को देने वाला है ॥२३५॥

धार्मिकेषु च कार्येषु हितं प्रीतिः सहायता ।
ऐक्यं स्यात्प्राणपर्यन्तं राज्यसंस्थितिहेतवे ॥२३६॥

बुद्धिस्वरूपादेवी ।

U A P.P.

मर्यादया स्वजात्यां हि पाणिग्रहणमुत्तमम् ।
स्त्रीपुंसोरेकभावश्च ग्रीवा देव्याः समीरिता ॥२३७॥

भाषार्थः—राज्य की स्थिति के लिये प्राण पर्यन्त हित, प्रीति, एकता और सहायता करना तथा मर्यादा (नियम) पूर्वक अपनी जाति में उत्तम विवाह करना, तथा स्त्रीपुरुषों का आपस में एक भाव रहना यह बुद्धि रूपा देवी की ग्रीवा कही गई है ॥२३७॥

शौर्यमुत्साहसत्संगौ सर्वेषामुपगोगिनाम् ।
शोधनमीक्षणं रक्षा देव्या हृदयमीरितम् ॥२३८॥

स्वस्त्यादिनवकानाञ्च प्रजामध्ये प्रचारणम् ।
परमार्थे प्रवृत्तिस्तु—जायतेऽत्रोदरं सदा ॥२३९॥

भाषार्थः—पराक्रम उत्साह और सत्संगति तथा सम्पूर्ण उपयोगी वस्तुओं का देखना तथा उनकी रक्षा करनी और शुद्धि यह बुद्धिरूपा देवी का हृदय कहा गया है। स्वस्त्यादि नौ वातों का प्रजा में प्रचार करना और परमार्थ में प्रवृत्ति रखना यह उदर कहा है ॥२३८-२३९॥

विविधानां हि विद्यानां प्रचारो जनहेतवे ।
धर्मोपदेशस्य सदा प्रबन्धः पौरुषन्तथा ॥२४०॥

कटिभागोयमाख्यातः बुद्धिदेव्यास्तु साम्प्रतम् ।
विनिर्दोषमनुष्याणां रक्षणं दक्षिणः करः ॥२४१॥

सुकृताय सुपात्राय दानेचोत्साहधारणम् ।
वामः करः समाख्यातः बुद्धिदेव्याः निरन्तरम् ॥२४२॥

भाषार्थः—मनुष्यों के हित के लिये विविध विद्याओं का प्रचार करना, धर्मोपदेश का प्रबन्ध करना और पौरुष ये बुद्धि देवी का कटि भाग कहा गया है । निरपराधी मनुष्यों की रक्षा करना यह

दक्षिण हाथ है । अच्छे कार्य के लिये तथा सुपात्र मनुष्य के लिये दान देने में उत्साह धारण करना यह बुद्धि स्वरूपा देवी का वाम कर (हाथ) कहा गया है २४०-२४१-२४२॥

यथार्थनिर्णयं कृत्वा निष्पक्षत्वेन सर्वदा ।
न्यायस्य साधनं नित्यं प्रजामंगलहेतवे ॥२४३॥
स्वदेशे मातृभाषायां प्रीतिश्च शुभचिन्तनम् ।
पादावेतौ समाख्यातौ बुद्धिदेव्याश्च साम्प्रतम् ॥२४४॥

भाषार्थः—निष्पक्षता से, यथार्थ निर्णय करके प्रजा के कल्याण के लिये नित्यप्रति न्याय करना तथा अपने देश और मातृभाषा में प्रीति रखना और शुभ चिन्तन ये बुद्धि रूपा देवी के दोनों पैर कहे गये हैं ॥२४३-२४४॥

न्यायस्वरूपः पुरुषः ।

न्यायस्वरूपः पुरुषः

श्रीशंकर उवाच

अंगप्रत्यंगभेदेन न्यायस्यात्र तु वर्णनम् ।
करोमि जगतो हेतो-रूमे ! तच्चाखिलं शृणु ॥२४५॥

भापार्थः—हे उमे ! अब मैं न्याय स्वरूप पुरुष के अंग प्रत्यंगों के भेद संसार के हित के लिये सम्पूर्ण वर्णन करता हूं सो उसे तुम सुनो ॥२४५॥

शुद्धोच्चैश्वरभावेषु प्रवृत्तिस्तु शिरः स्मृतम् ।
मातृभाषानुरागश्च वीरवेषविधारणम् ॥२४६॥
न्यायस्वरूपदेहस्य मुखमेतत्समीरितम् ।
स्वस्त्यादिनवकाचारः ग्रीवा समभिजायते ॥२४७॥

भापार्थः—शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव में प्रवृत्ति रखना यह न्याय स्वरूप पुरुप का शिर है । मातृभापा में अनुराग (प्रेम) तथा वीरवेप का धारण करना यह उसका मुख कहा गया है । स्वस्ति, शांति, वृद्धि, भूति, (राज्य लक्ष्मी) स्थिति, प्रीति, एकता, शासन और दीर्घायु इन नौ बातों का आचरण करना यह उसकी ग्रीवा कही गई है ॥२४६-२४७॥

सर्वोपयोगिवस्तूनां रक्षा शुद्धि र्विलोकनम् ।
हृदयं चेति विख्यातं न्यायरूपस्य देहिनः ॥२४८॥

भापार्थः—सम्पूर्ण उपयोगिवस्तुओं की रक्षा करना, शुद्धि करना, और देखना यह न्याय रूप पुरुप का हृदय कहा जाता है ॥२४८॥

प्रत्युपकारलग्नत्वं पुरुषार्थो धृतिस्तपः ।
धर्मेणैव प्रजामध्ये समृद्धेः परिवर्द्धनम् ॥२४९॥

उदरन्तु समाख्यातं न्यायरूपशरीरिणः ।
वायो जलस्य संशुद्धिः नैरोग्यसाधनं कटिः ॥२५०॥

भाषार्थः—प्रत्युपकार में लगे रहना, पुरुषार्थ, धैर्य, तप और धर्म पूर्वक प्रजा के मध्य में समृद्धि का बढ़ाना यह उदर है तथा वायु, जल की सुद्धि और नीरोगता का साधन यह कटि भाग है ॥२४९-२५०॥

धर्मेणायस्य संसिद्धिः स्थित्यै वामः करः स्मृतः ।
सुकृताय, सुपात्राय दान उत्साहधारणम् ॥२५१॥
सुकृतस्य च साहाय्यं दण्डस्तु दुष्कृताय च ।
सामान्ये च समोभावः दक्षिणोऽयं करः स्मृतः ॥२५२॥

भाषार्थः—स्थिति के लिये धर्म पूर्वक आमदनी करना यह वाय हस्त कहा गया है । सुकृत और सुपात्र के लिये दान देने में उत्साह धारण करना तथा सुकृत की सहायता करना और दुष्कृत को दण्ड देना, इसी भांति समान्य (उदासीन) में समभाव रखना यह दक्षिण हाथ कहा गया है ॥२५१-२५२॥

यथार्थनिर्णयं कृत्वा यथाकर्म फलन्तथा ।
पक्षपातं परित्यज्य पादाविति समीरितौ ॥२५३॥

भाषार्थः—पक्षपात रहित होकर यथार्थ (जैसा चाहिये वैसा) निर्णय करके जिस जिस का जैसा कर्म हो उसे वैसा ही फल देना यह न्यायस्वरूप पुरुष के दोनों पैर कहे गये हैं ॥२५३॥

मनःस्वरूपःपुरुषः ।

UAPPJ

मनः स्वरूपः पुरुषः

श्रीशंकर उवाच।

मनोरूपनरस्यात्र वर्णनं जायतेऽधुना।
अंग प्रत्यंग भेदेन श्रूयतां पार्वति प्रिये ? ॥२५४॥

भापार्थः—हे प्रिये पार्वति ? अब यहां पर मनोरूप पुरुप का अङ्ग प्रत्यंगों के भेद से वर्णन होता है सो उसे तुम सुनो ॥२५४॥

कर्मभिः पूर्वविहितैः वर्तमानोद्भवैस्तथा।
सद्विद्योपदेशैश्च स्वेष्टोत्पत्तिर्निरन्तरम् ॥२५५॥

शुभकार्ये समुत्साहः मनोरूपस्य देहिनः।
उत्तमांगं समाख्यातं मंगलानां च करणम् ॥२५६॥

भापार्थः—पूर्व जन्म में किये हुये कर्मों से तथा इस जन्म के अच्छी विद्याओं के उपदेशों से सर्वदा अपने इष्ट की उत्पत्ति होना और भले कार्यों में उत्साह, यह मन स्वरूप पुरुप का उत्तमांग (शिर) कहा गया है तथा यही मंगलों का कारण है ॥२५५-२५६॥

विशुद्धधारणायाश्च सर्वदैवावलम्बनम्।
पूर्णास्तिकस्य पुण्यस्य परार्थधर्मयोरपि ॥२५७॥

भावस्य परिलम्बश्च भवेद्ग्रीवातुमानसी।
परिश्रमस्य चाभ्यासः सत्यस्याप्यवलम्बनम् ॥२५८॥

धीरताग्रहणं चाऽपि तपश्चरणमुत्तमम्।
यज्ञश्चेति समाख्यातं हृदयं मनसस्तथा ॥२५९॥

भापार्थः—सर्वदा विशुद्ध धारणा का अवलम्बन करना, तथा पूर्ण आस्तिक, पुण्य, परमार्थ और धर्म के भाव का ग्रहण करना मन

की ग्रीवा कही गई है । परिश्रम का अभ्यास, सत्य का अवलम्बन करना, धीरता और उत्तम रीति से तप करना तथा यज्ञ करना यह उसका हृदय है ॥२५७-२५८-२५९॥

यथेष्टं रमणं प्राप्तिः वायुश्चापि सुगन्धितः ।
हितकारकं भवेद्यच्च दर्शनं श्रवणं प्रियम् ॥२६०॥
उदरञ्चेति सम्प्रोक्तं मनोरूपस्य देहिनः ।
प्रपूर्णबलयुक्तत्वं कटिभागः समीरितः ॥२६१॥
स्वातन्त्र्यमभयन्दानं करौ सम्प्रतिपादितौ ।
रोगदुःखविहीनत्व-मुभौ पादौ समीरितौ ॥२६२॥

भाषार्थः—अपनी इच्छा के अनुसार रमण, और वस्तुओं की प्राप्ति, सुगंधित वायु, हितकर और प्रिय देखना तथा सुनना यह मन स्वरूप पुरुष का उदर कहा गया है । पूर्ण बल से युक्त होना यह कटि भाग है । स्वतन्त्रता, अभय दान ये दोनों हाथ हैं । रोगों और दुःख से रहित होना यह मनोरूपपुरुष के दोनों पैर हैं ॥२६० २६१-२६२॥

विचारशक्तिरूपा देवी

श्रीशंकर उवाच

विचारशक्तिरूपायाः देव्याः संजायतेऽधुना ।
वर्णनंत्वंगभेदेन श्रूयतां तत्प्रियेऽखिलम् ॥२६३॥

भाषार्थः—विचारशक्तिरूपा देवी का इस समय प्रत्येक अंग के भेद से वर्णन होता है वह सब तुम सुनो ॥२६३॥

सत्वादित्रिगुणानां च साम्यावस्थावलम्बनम् ।
शुद्धोच्चैश्वरभावानां धारणं सर्वदैव हि ॥२६४॥

शुद्धस्य सात्विकस्यापि बलिष्ठस्य तु नित्यशः ।
भोजनस्याऽत्र संसेवा शिरः सम्प्रतिपाद्यते ॥२६५॥

भाषार्थः—सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का अवलम्बन करना, सर्वदा शुद्ध उच्च ईश्वरभाव का धारण करना शुद्ध, सात्विक और बलिष्ठ भोजन का नित्यप्रति सेवन करना यह विचार शक्ति रूपादेवी का शिर कहा गया है ॥२६४-२६५॥

वृद्ध्यादिनवकानां च प्रजामङ्गलहेतवे ।
विचारकरणं चैषा ग्रीवा संप्रतिपाद्यते ॥२६६॥

प्राकृतानां हि कार्याणां रचनाया विचारणम् ।
विलोकनं च नित्यं स्यात् देव्याः हृदयमीरितम् ॥२६७॥

भाषार्थः—प्रजा के कल्याण के लिये नीरोगता, सुख, शांति वृद्धि, स्थिति, प्रीति, एकता, सम्पत्ति, शासन और दीर्घायु इन नौ बातों का विचार करना विचारशक्ति रूपादेवी की ग्रीवा कही गई है। प्राकृतिक कार्य और रचना का विचार करना तथा नित्यप्रति उनका देखना यह हृदय कहा गया है ॥२६६-२६७॥

पवित्रराजविद्यायाः मनसा प्रविचारणम् ।
सत्प्राचीनेतिहासानां नित्यशः श्रवणं मुदा ॥२६८॥
पीतत्रिकोणवीजानां सेवनं चोदरं स्मृतम् ।
न्यायतर्कावलंवश्च कटिभागः समीरितः ॥२६९॥
करौ तस्याः समाख्यातौ तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
विशुद्धश्चास्तिको भावः जायेते चरणावुभौ ॥२७०॥

भावार्थः—मन से पवित्र श्रीराजविद्या का विचार करना तथा हर्षपूर्वक अच्छे प्राचीन इतिहासों का नित्यप्रति सुनना, और पीले रंग के त्रिकोण आकार वाले बीजों (मालकागनी) का सेवन करना, यह उदर कहा गया है । न्याय और तर्क का ग्रहण करना यह कटि भाग है तात्विक ज्ञान के सार को देखना यह दोनों हाथ हैं । शुद्ध और आस्तिक भाव यह विचार शक्ति रूपा देवी के दोनों पैर हैं ॥२६८-२६९-२७०॥
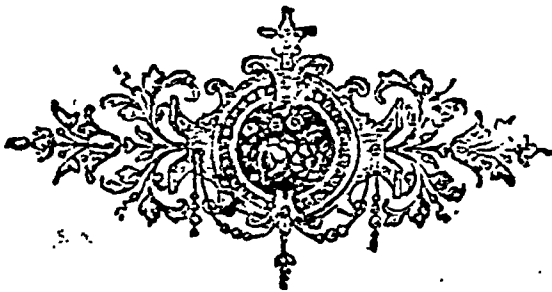
देशः

यस्मिन्कस्मिन्महीभागे स्वतन्त्रभाषणम्भवेत् ।
स्वभावधर्मनियमाः पृथक्स्युर्देश उच्यते ॥२७१॥

भाषार्थः—जिस किसी भूभाग में स्वतन्त्र भाषा हो तथा स्वभाव (प्रकृति रचना) धर्म और नियम ये पृथक् हो उसे देश कहते हैं ॥२७१॥

सन्धिः

यस्मिन्राज्येऽन्यराज्यैःस्युः नियमाः शान्तिकारकाः ।
सन्धिः सा कथ्यते लोके मित्रभावस्तथा द्वयोः ॥२७२॥

भाषार्थः—जिस किसी राज्य में अन्य राज्यों के साथ शांति पैदा करने वाले नियम हों वह संसार में संधि कही जाती है तथा दो आदमियों के मित्रभाव को भी संधि कहते हैं ॥२७२॥

नायकः

न्यायशक्तिविहीनः स्या–दज्ञसेनापति श्च यः ।
नायको राजविद्यायां मनुष्यः स निगद्यते ॥२७३॥

भाषार्थः—अज्ञों का सेनापति तथा न्याय शक्ति से हीन जो मनुष्य होता है उसे राजविद्या में नायक कहते हैं ॥२७३॥

निरीक्षकः

बान्धवानान्तुसेनायाः स्वामी यःक्षत्रियो भवेत् ।
न्यायशक्तियुतोवीरः कथ्यते स निरीक्षकः ॥२७४॥

भाषार्थः—जो क्षत्रिय बांधवों की सेना का स्वामी तथा न्याय शक्ति से युक्त और वीर होता है उसे निरीक्षक कहते हैं ॥२७४॥

शुद्धवीरः

धर्मयुद्धे शरीरस्य मोहो यस्मै न जायते ।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासी स्वदेशवीरबान्धवः ॥२७५ ॥

स्वदेशवासिवीराणां कार्येषु यः क्षमोभवेत् ।
असंगशक्तिसंयुक्तः मानमोहविवर्जितः ॥२७६॥

सहायतां प्रकुरुते वीराणाञ्च निरन्तरम् ।
मातृभूमिप्रियश्चापि दीनानां हितकारकः ॥२७७॥

उपकाराग्रणी वा स्यात् वंशस्य नियमानुगः ।
निःस्वार्थी वा विनिर्लोभी शुद्धवीरः स उच्यते ॥२७८॥

भाषार्थः—जिसके लिये धार्मिक युद्ध में अपने शरीर का मोह नहीं होता तथा जो अस्त्र तथा शस्त्रों का अभ्यास करने वाला है; एवं अपने देश के वीरों का बान्धव और अपने देश में रहने वाले वीरों के कार्यों में जो लगा हुआ है तथा असङ्गशक्ति और मान, मोह से रहित होकर वीरों की सहायता करता है, तथा जो मातृभूमि का प्रेमी और दीन जनों का हितैषी है, जो उपकार करने में अग्रणी है तथा जो वंश के नियमानुसार चलने वाला निस्वार्थी निर्लोभी मनुष्य है वह शुद्ध वीर कहा जाता है ॥२७५-२७६-२७७-२७८॥

धर्मयुद्धं

स्वदेशस्य हितार्थञ्च युद्धं यत्प्रविजायते ।
धर्मयुद्धं समाख्यातं देशकल्याणकारणम् ॥२७९॥

भापार्थः—अपने देश के हित के लिये जो युद्ध किया जाता है उसे धर्म युद्ध कहते हैं यह देशके कल्याण का कारण है ॥२७९॥

अधर्मयुद्धं

अन्यायञ्च समाश्रित्य पारस्परिकविग्रहः।
अधर्मयुद्धमित्येव जायते नाशकारणम् ॥२८०॥

भापार्थः—अन्याय का आश्रयण करके जो आपस में युद्ध होता है उसे अधर्म युद्ध कहते हैं तथा वह नाश का कारण होता है ॥२८०॥

इति श्रीराजविद्यायां
परिभाषा निरूपणो नाम
द्वितीयः संवादः

अथ चतुष्षष्टिशासनकलानिरूपणो नाम

तृतीयः स्कन्धः

श्रीशंकर उवाच

चतुः षष्टिकलानां च वर्णनं क्रियते मया ।
शक्ते ! तत् श्रूयतां प्रेम्णा भूपमङ्गलहेतवे ॥१॥

भावार्थः—श्री महादेवजी कहते हैं कि हे गौरि ! अब मैं राजाओं के हित के लिये शासन (राज्य) करने की चौसठ कलाओं का वर्णन करता हूं जिसको तुम प्रेम पूर्वक सुनो ! ॥१॥

इष्टम्

(१)

शुद्धोच्चैश्वरभावेषु हितप्रीत्येकताष्वपि ।
श्रद्धायां मनसः शक्तौ भक्त्यामुत्साहसम्भवः ॥२॥
इष्टमेतत्समाख्यातं गुप्तसाहाय्यकारणम् ।
मनोदार्ढ्यानुकूलेन सततं सिद्धिदायकम् ॥३॥

भावार्थः—शुद्ध, उच्च, ईश्वर भाव, हित, प्रीति एकता, पूर्ण-श्रद्धा, मानसिक शक्ति और भक्ति इन सबों में उत्साह का होना यह इष्ट कहा गया है । तथा यह इष्ट गुप्त (छिपी) सहायता करने वाला है और अपने २ मन की दृढ़ता के अनुसार सिद्धि को देने वाला है अर्थात् जिसका मन जितना दृढ़ होता है उसे उसी प्रकार शीघ्र वा शनैः २ सिद्धि प्राप्त होती है ॥२-३॥

इष्टाभावे विनाशः

(०१)

इष्टं विना भवेत्सिद्धि र्न च स्थितिपरम्परा ।
निराधारं विनिर्मूलं प्राप्य नश्यति मानवः ॥४॥

भाषार्थः—इष्ट के विना सिद्धि और स्थिति की परम्परा नहीं रहती तब मनुष्य विना आधार के तथा विना मूल के होकर नाश को प्राप्त हो जाता है ॥४॥

संयमः

(२)

शरीरस्येन्द्रियाणाम्वा स्ववशे करणन्तुयत् ।
संयमोऽयं विजायेत कार्यसिद्धिप्रदायकः ॥५॥

भाषार्थः—शरीर तथा इंद्रियों को अपने वश में कर लेना यही संयम कहा गया है तथा संयम से ही सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है ॥५॥

असमर्थता

(०२)

शरीरस्येन्द्रियाणाम्वा स्ववशेन विना सदा ।
असामर्थ्यं विजायेत ह्यसमर्थो मृतोपमः ॥६॥

भाषार्थः—शरीर तथा इन्द्रियों को अपने वश में न रखने से असामर्थ्य (अशक्ति) आ जाती है । और जो मनुष्य असमर्थ है वह मरे हुये के समान है ॥६॥

समृद्धिः

(२)

सर्वोपयोगिवस्तूनां रक्षाशोधविलोकनैः ।
आविर्भवति लोकेऽस्मिन् समृद्धिः सुखदायिनी ॥७॥
समृद्धिप्राप्तये भूपः प्रकुर्यान्मनसा सदा ।
कार्यालयस्थापनञ्च वस्तुनिर्माणहेतवे ॥८॥

भावार्थः—सम्पूर्ण उपयोग (काम) में आने वाली वस्तुओं की रक्षा, शोध (ठीक करना) और देखभाल से समृद्धि (सम्पत्ति) सुखदायिनी उत्पन्न होती है । अतः समृद्धि को प्राप्त करने के लिये राजा सर्वदा अपने मन से सर्व वस्तुओं के बनाने के कार्यालय (कारखानों) की स्थापना करे ॥७-८॥

क्षीणता

(०२)

उपयोगिनाञ्चवस्तूना-मरक्षाशोधवीक्षणैः ।
विना स्यात्क्षीणता तेषां भूपालानाश्चसर्वदा ॥९॥
जनयन्ति तदा हानि-मयोग्यधूर्तवञ्चकाः ।
तस्माद् भूमिपति र्योग्यः स्वयं सर्वान्विलोकयेत् ॥१०॥

भावार्थः—सम्पूर्ण उपयोगी वस्तुओं की रक्षा, शोध और उन्हें न देखने से क्षीणता हो जाती है । तब धूर्त (लम्पट-लफङ्ग) अयोग्य और वंचक (ठग) लोग उन वस्तुओं में बड़ी भारी हानि उत्पन्न कर देते हैं ॥९-१०॥

राज्यसिद्धिः

(४)

धर्मपूर्वककार्येषु हितंप्रीतिस्सहायता ।
ऐक्यं स्यात् प्राणपर्यंतं राज्यसिद्धिरियं मता ॥११॥
राज्यसिद्धियुतं राज्यं नान्यस्तु क्षितिनन्दनः ।
समर्थश्चालनाय स्यात् निश्चलं जायते यतः ॥१२॥

भावार्थः—धर्म पूर्वक कार्यों में हित प्रीति, सहायता और प्राण पर्यन्त एकता करना यह राज्य सिद्धि कही गई है। इस राज्य सिद्धि से युक्त राज्य को अन्य राजा चलायमान नहीं कर सकता इसलिये वह राज्य अचल होता है ॥११-१२॥

दुर्घटना

(०४)

राज्यसिद्धिं विना राज्ये जायन्ते घोरविप्लवाः ।
दुर्घटना प्रयतनं निर्मूलं च विनश्यति ॥१३॥
कुलस्त्रियो ह्यधर्मेण कुलटात्वं प्रयान्त्यथ ।
राज्यमन्यमहीपाना-माश्रियं याति नश्यति ॥१४॥
नर्के घोरे पतन्त्येव परिणामे तु मानवाः ।
आश्रयो नहि तोषां स्यात् लोकयोरुभयोरपि ॥१५॥

भावार्थः—राज्य सिद्धि के विना राज्य में घोर विप्लव (उपद्रव) दुर्घटना और पतन होते हैं तथा राज्य निर्मूल होकर नष्ट हो जाता है। अधर्म से कुलीनस्त्रियां व्यभिचारिणी हो जाती हैं और राज्य दूसरे राजाओं के हाथ में चला जाता हैं अथवा विनाश को प्राप्त होता है। इसके परिणाम में मनुष्य घोर नर्क में पड़ते हैं जिनके

लिये दोनों लोकों में भी सुखाश्रय (सुख का स्थान) प्राप्त नहीं होता ॥१३-१४-१५॥

युक्तिः
(५)

सहायना स्यात्सुकृतौ नराणां
दण्डस्तथोक्तः परिदुष्कृतौ च ।
सामान्यकार्येषु समीरितोऽत्र
भावः समो मानसिको नितान्तम् ॥१६॥
युक्त्या यथायोगसुसाध्यया स्यात्
कार्यस्य संसाधनमेव नित्यम् ।
स्वाधीनता वातिबलस्य सम्यक्
न्यूनेऽधिकारश्च समेन मैत्री ॥१७॥
समीरितायुक्तिरियं नितान्तं
शुद्धेप्रभुत्वेऽथ समुन्नते वा ।
वसत्यहो मानसिके तु भावे
भवेच्च सा लोकहितेन सार्द्धम् ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्यों के शुभ कर्म करने पर उनकी सहायता दुष्कृत (बुरे काम) करने पर उन्हें दण्ड देना तथा सामान्य कार्य अर्थात् जिनके करने पर अपने मन का भाव सर्वदा समान रखना तथा जिन बातों के योग (मेल-जोड़ने) से भली भांति सिद्धि प्राप्त हो सके सदा ऐसी ही युक्ति से कार्य का सिद्ध करना और न्यून बल में अधिकार रखना, समान बल वाले के साथ मित्रता रखना तथा अधिक बलवान् की आधीनता ग्रहण करना इन सब बातों को युक्ति कहा गया है और यह युक्ति मन के शुद्ध, उच्च और ईश्वरभाव में रहा करती है इसलिये यह युक्ति संसार के हित के साथ होनी चाहिये ॥१६-१७-१८॥

अयुक्तिः

(०५)

श्रेष्ठविद्योपदेशाना-मभावेन हि सर्वदा ।
हितप्रीत्येकताः पुंसां विनश्यंति परस्परम् ॥१९॥
अभावप्रतिषेधे तु परेषां शासनं भवेत् ।
तुल्यबलविरोधे वा विनाशः स्यात्परस्परम् ॥२०॥
अयुक्तिरस्याः विज्ञेया संज्ञा च सर्वथा नृपैः ।
शुद्धोच्चैश्वरभावाना-मभावेऽन्याश्रयं गतः ॥२१॥
युक्तिशून्यो महीपालो विनाशमुपगच्छति ।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि युक्तिमाश्रित्य साधयेत् ॥२२॥

भाषार्थः—अच्छी विद्याओं के अभाव से मनुष्यों की आपस में हित, प्रीति और एकता विनाश को प्राप्त हो जाती हैं तथा इसके अभाव को न रोकने से अन्य राजाओं का राज्य हो जाता है। इसी प्रकार समान बल वाले के साथ विरोध करने से आपस में दोनों का विनाश हो जाता है। इसकी संज्ञा राजाओं को अयुक्ति जानना चाहिये। शुद्ध, उच्च और ईश्वरभाव के अभाव (न होने) से दूसरों का आश्रय प्राप्त करके युक्ति शून्य राजा (युक्ति से रहित) नाश को प्राप्त कर लेता है इसलिये राजा युक्ति का आश्रयण करके सम्पूर्ण कार्यों को करे ॥१८-२०-२१-२२॥

शिक्षाप्रबन्धः

(६)

धार्मिकस्योपदेशस्य कलाकौशलयोरपि ।
विविधानां हि विद्यानां स्यात्प्रबन्धो हितेच्छया ॥२३॥

यत्रकुत्रापिनावृथ–स्तत्र धर्मोपदेशकान् ।
प्रेषयेदिति संप्रोक्तः प्रबंधः शिक्षणस्य हि ॥२४॥
धर्माश्चैतेन प्राचीनाः श्रेष्ठराज्यकुलान्यपि ।
सुस्थिराणि रक्षितानि भवन्त्येव न संशयः ॥२५॥

भावार्थः—धार्मिक उपदेश, कला, कौशल (चतुरता) का हित की इच्छा से प्रबन्ध करे । तथा जहां कहीं पर भी मनुष्यों का समुदाय हो उस स्थान पर धर्मोपदेशकों को भेजे । यह शिक्षा प्रबन्ध कहा गया है इस शिक्षा प्रबन्ध के नियम का पालन करने से प्राचीन धर्म तथा उत्तम राजाओं के कुल (वंश) निश्चित् रूप से निश्चल और सुरक्षित होते हैं ॥२३-२४-२५॥

विहीनता

(०६)

शिक्षाप्रबन्धेन विना जनौघः
यथेप्सितं संलभते मतं सः ।
मतिर्यदा स्यादधमासुरी च
तदाह्यधर्मानुगता श्च तेषाम् ॥२६॥
ये नायकास्ते द्रविणप्रजाना–
मुच्चाधिपान्धर्मविमुच्यमानान् ।
स्वकीयधर्मे सततं विधाय–
हरंति राज्यानि विहीनतेयम् ॥२७॥

भावार्थः—शिक्षा प्रबन्ध के विना जनसमूह की अधम आसुरी मति हो जाती है तब वह जनसमूह यथेप्सित् (मन माने) मत (धर्म) का अवलम्बन (ग्रहण) कर लेता है और अधर्म का आचरण करने वाले उस जनसमूह के नायक (नेता) धर्म से गिरे हुये धनाढ्य

प्रजा के स्वामियों को अपने धर्म में मिला कर के उन प्राचीन अधिपों (राजाओं) का राज्य अपहरण (ग्रहण) कर लेते हैं । यही विहीनता (विशेष रूप से हीनता) कही जाती है ॥२६-२७॥

माया

(७)

श्रेष्ठविद्योपदेशस्य धार्मिकायस्य सर्वदा ।
विनयस्य वीरतायाश्चाभ्यासस्यास्त्रशस्त्रयोः ॥२८॥
यथायोगप्रयुक्त्यैव जनयूथेन सर्वदा ।
आत्मीयत्वस्य सततं सद्गुणज्ञानयोरपि ॥२९॥
धर्मपत्न्याश्च बंधूनां दुर्गपत्तनयोस्तथा ।
पशूनां सर्ववस्तूनां भक्तिसत्संगयोरथ ॥३०॥
सुखदुःखेष्टदार्ढ्यानां ग्रहणं त्वाय उच्यते ।
स्थित्यर्थमाय एवात्र माया नाम्ना प्रकथ्यते ॥३१॥

भाषार्थः—सद्विद्याओं का उपदेश, सर्वदा धर्मपूर्वक आमदनी, विनय, वीरता, अस्त्रशस्त्रों का अभ्यास, यथा योग युक्ति से मनुष्यों के समूह के साथ आत्मीयता, (अपना करना) अच्छे गुण, ज्ञान, धर्मपत्नी, बांधव, दुर्ग, (किला) पत्तन, (नगर) सुख, दुःख, और इष्ट में दृढ़ता इन सम्पूर्ण उपरि लिखित बातों के ग्रहण (प्राप्त) करने को आय कहते हैं । तथा स्थिति के लिये यहां पर आय को माया नाम से कहा गया है ॥२८-२९-३०-३१॥

सत्यानाशः

(०७)

विना मायां तु जायेत सत्यानाशो महीतले ।
वीरता विनयो योगः विज्ञेयास्यप्रतिक्रिया ॥३२॥

भावार्थः—संसार में विना माया के सत्यानाश (सर्वनाश) हो जाता है इसकी प्रतिक्रिया (उपाय) यह है कि मनुष्य वीरता विनय और योग का अवलम्बन करे ॥३२॥

योगः

(८)

सुकार्याय सुपात्राय जगतो हेतवे सदा ।
परार्थदान उत्साहः व्ययो वा योग उच्यते ॥३३॥

सम्मेलनं समत्वं च व्ययोनाश स्तथैव च ।
दुष्टानां दुष्कृतानां च विनाशः पापनाशम् ॥३४॥

भावार्थः—संसार के हित के लिये सुकृत और सुपात्र तथा परमार्थ के लिये दान में उत्साह रखना, इसे व्यय अथवा योग कहते हैं । और सम्मेलन, (मिलना) समत्व (समान भाव) व्यय, नाश, दुष्ट और दुष्कृतों का विनाश तथा पापों का नाश होना भी योग कहा गया है ॥३३-३४॥

विलोपः

(०८)

योगं विना तु संसारे मतिं सम्प्राप्य चासुरीम् ।
सम्पदं, पृथिवीपालाः विलोपं यांति सर्वथा ॥३५॥

भावार्थः—योग के विना राजा लोग संसार में आसुरी मति एवं आसुरी सम्पदा (राक्षसी वृत्ति) को प्राप्त करके सब प्रकार से विलुप्त (नष्ट) हो जाते हैं ॥३५॥

U A P P J
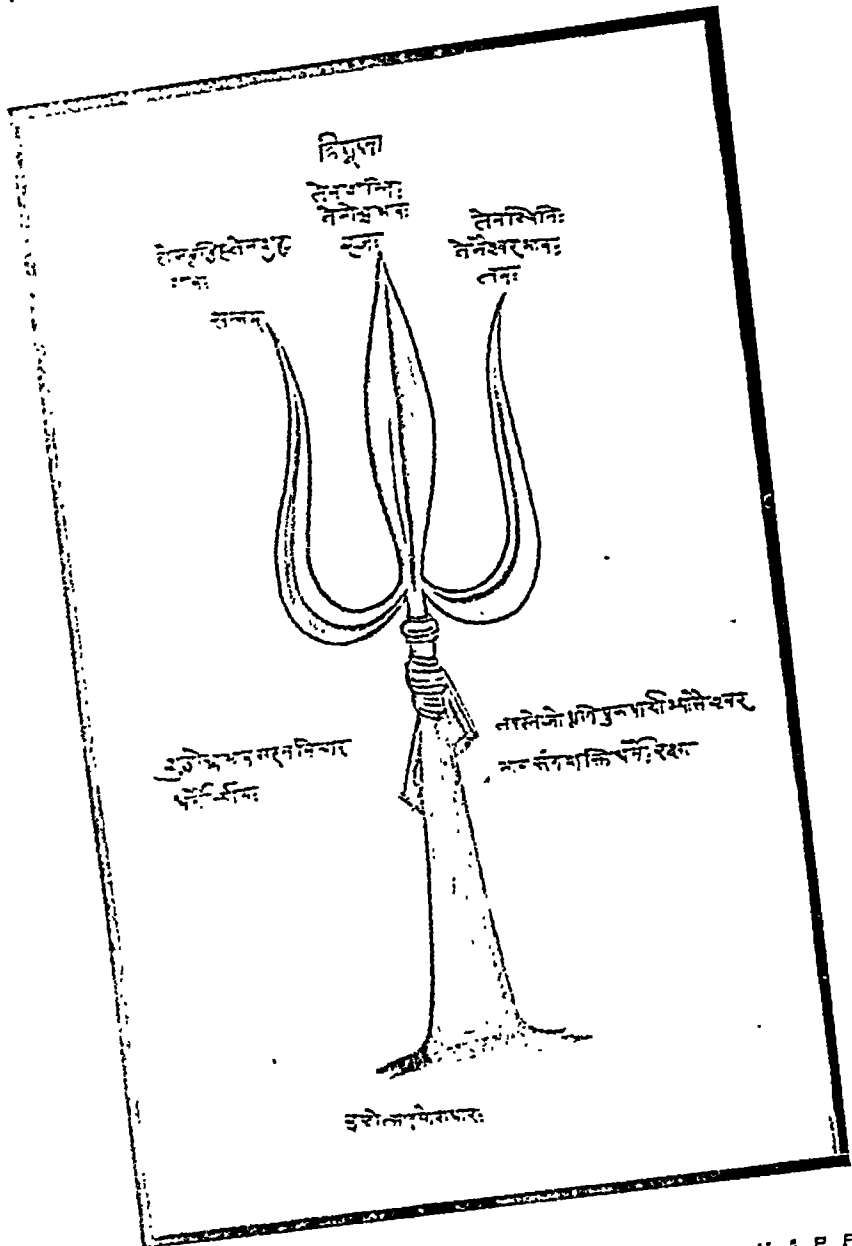
योगमाया

(९)

मायाप्राप्तिस्तथा दानं योगमायाप्रयोजनम् ।
योगयुक्ता तु या माया योगमायाभिजायते ॥३६॥
उत्पत्तिः प्रविनाशश्च जायेते योगमायया ।
पुरुषार्थेन धर्मेण द्रव्यस्य समुपार्जनम् ॥३७॥
औदार्येण च यद्दानं योगमायाभिपूजनम् ।
सत्वादित्रिगुणानां च साम्यावस्थावलम्बनात् ॥३८॥
शुद्धोच्चैश्वरभावानां समुत्पत्तिः प्रजायते ।
शुद्धभावात्तु सत्वस्य वृद्धि स्तत्राभिजायते ॥३९॥

भावार्थः—माया (सम्पत्ति) की प्राप्ति तथा दान करना यही योग माया का प्रयोजन है। और यह माया योग युक्त होने के कारण योग माया कही जाती है। तथा इसी से उत्पत्ति और विनाश होते हैं। पुरुषार्थ और धर्म से धन का संचित करना और उदार भाव से दान देना ही योग माया का पूजन है। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की समान अवस्था का अवलम्बन करने से शुद्ध, उच्च ईश्वरभाव की समुत्पत्ति होती है जिसमें सात्विक भाव से वृद्धि होती है ॥३६-३७-३८-३९॥

रजोगुणस्योचभावात् शांति संजायते सदा ।
प्रभुत्वात्तमसश्चात्र स्थितिः सम्यक् प्रवर्तते ॥ ४० ॥

भावार्थः—रजोगुण के उच्चभाव से निश्चय करके शांति होती है। तमोगुण के प्रभुत्वभाव से स्थिति बनी रहती है ॥४०॥

शुद्धोचभावमालम्ब्य सद्यशक्ति विचारणाम् ।
संप्राप्य जायते न्यायो राज्यक्षेमविधायकः ॥४१॥

प्रभुत्वभावमुत्प्राप्य राज्ये संरक्षणं भवेत्।
न्यायेन रक्षयाऽसङ्ग-शक्तया राज्यस्य संस्थितिः ॥४२॥

भावार्थः—शुद्ध और उच्चभाव को ग्रहण करके तथा सहन-शक्ति और विचार शक्ति को प्राप्त करके जो न्याय किया जाता है वह न्याय राज्य का कल्याण करने वाला होता है। स्वामिभाव को प्राप्त करके राज्य में असंगशक्ति से रक्षा होती है न्याय और रक्षा से राज्य की स्थिति बनी रहती है ॥४१-४२॥

यत्र योगस्तत्रमाया माया यत्र च विद्यते।
योगस्य संस्थितिर्ज्ञेया संसारे संप्रवर्त्तिनी ॥४३॥

यथा नारी नराधीना नरा नार्यास्समाश्रिताः।
बलाश्रितायथा बुद्धिः बुद्धेश्चैवाश्रितं बलम् ॥४४॥

यथाऽऽयस्तु व्ययाधीनो व्ययश्चायाश्रितो यथा।
आश्रितत्वन्तथैवास्ति सुतरां योगमाययोः ॥४५॥

भावार्थः—जहां पर योग है वहीं पर मया है तथा जहां पर माया है वहां पर संसार में प्रवृत्त होने वाली योग की स्थिति जाननी चाहिये। जिस प्रकार स्त्री पुरुष के आधीन और पुरुष स्त्री के आधीन है। बल के आश्रित बुद्धि और बुद्धि के आश्रित जिस प्रकार बल है। व्यय के आधीन आमदनी और आमदनी के आश्रित जिस प्रकार व्यय है उसी प्रकार योग और माया इन दोनों का परस्पर आश्रय है ॥४३-४४-४५॥

समूलनाशः

(०९)

शुद्धोच्चैश्वरभावाना-मभावे न स्थितिर्भवेत्।
न शांतिर्नाभिसंवृद्धि र्जायते न परम्परा ॥४६॥

विनाशो यत्र योगस्य ततोमायापिलुप्यति।
यत्रयोगस्यसंप्राप्तिस्तत्र मायापि गच्छति ॥४७॥

भाषार्थः—शुद्ध,उच्च और ईश्वरभाव इनका अभाव होने पर वृद्धि, शांति और परम्परा ये बातें नहीं रहतीं और जहां पर योग का नाश होता है वहां से माया भी लुप्त हो जाती है। तथा जहां योग की प्राप्ति होती है वहां पर वह माया चली जाती है ॥४६-४७॥

क्षात्रप्रतिज्ञा

(१०)

रक्षान्यायाभिलाषस्तु शक्तिमावाहयेन्नृपः।
स्वजातिं क्षत्रियां स्मृत्वा वीरतान्निजसंभवाम् ॥४८॥
स्वकीयेष्टं च संस्मृत्य रविं कृत्वा च साक्षिणम्।
अस्त्राणामथशस्त्राणां वाहनानां च नित्यशः ॥४९॥
अभ्यासेनाप्नुयात् शक्तिं रक्षार्थं क्षत्रियः सदा।
एषा क्षात्रप्रतिज्ञास्ति राज्यमंगलकारिणी ॥५०॥

भाषार्थः—रक्षा और न्याय की इच्छा करने वाला क्षत्रिय राजा शक्ति (बल) का आवाहन (चिन्तन) करे और अपनी क्षात्र जाति तथा वीरता एवं अपने इष्ट का स्मर्ण कर और सूर्य को साक्षी करके नित्यप्रति अस्त्रशस्त्र और वाहनों के अभ्यास से रक्षा करने के लिये शक्ति (बल) प्राप्त करे। यह उक्त क्षात्र प्रतिज्ञा ही राज्य का कल्याण करने वाली है ॥ ४८-४९-५०॥

साधारणम्

(०१०)

विना क्षात्रप्रतिज्ञां तु जायन्ते क्षत्रियाः क्षितौ।
साधारणप्रजातुल्याः प्रभावशक्तिवंचिताः ॥५१॥

परेषा माश्रयं प्राप्य प्रवांच्छन्ति सुखाश्रयम् ।
दुःखसिन्धौ निपतिताः विनाशं यांति सर्वथा ॥५२॥

भावार्थः—क्षात्र प्रतिज्ञा के विना अर्थात् क्षात्र प्रतिज्ञा का पालन न करने से संसार में क्षत्रिय लोग अपने प्रभाव और शक्ति से विहीन होकर सर्व साधारण प्रजा के समान हो जाते हैं तब वे दूसरों की अथवा शत्रुओं की आधीनता प्राप्त करके सुख का स्थान प्राप्त करने की इच्छा करते हैं अतएव दुःख रूप सागर में गिरे हुवे सर्व प्रकार से विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥५१-५२॥

सुमतिप्राप्तिः

(११)

स्वकीयेष्टं च संस्मृत्य विधुं कृत्वा च साक्षिणम् ।
राजविद्योपदेशेन प्राप्नुयात्सुमतिं सदा ॥५३॥
तया न्यायं तथा धर्मं प्रकुर्यात्क्षत्रियः क्षितौ ।
तदैव जायते तस्य राज्ये नित्यं सुमङ्गलम् ॥५४॥

भावार्थः—क्षत्रिय को चाहिये कि अपने इष्ट का स्मर्णकर तथा चन्द्रमा को साक्षी करके राजविद्या के उपदेश से सर्वदा अच्छी बुद्धि प्राप्त करे । और उस प्राप्त की हुई अच्छी बुद्धि से संसार में न्याय तथा रक्षा करता रहे तब ही उसके राज्य में भली भांति मंगल होता है ॥५३-५४॥

विरोधः

(०११)

विना न्यायेन धर्मेण पारस्परिक विग्रहः ।
जायते च पलायन्ते सर्वा एव समृद्धयः ॥५५॥

ईर्ष्याद्वेषाभिमानाश्च वर्धन्ते राज्यमण्डले ।
विनाशमुपगच्छंति हितप्रीत्येकतास्तथा ॥५६॥

जायन्ते व्याधयो लोके ह्यकालमरणंतथा ।
विघ्नानिदुर्दशाहानिः दारिद्र्यंहीनतास्तथा ॥५७॥

युद्धादयोऽभिजायन्ते राज्यहानिविधायकाः ।
तस्माद्विरोधमूलानि नाशयेत् पृथिवीपतिः ॥५८॥

भाषार्थः—विना न्याय और विना धर्म के राज्य मण्डल में प्रजा का आपस में विग्रह (लड़ाई) होता है तथा सम्पूर्ण समृद्धियां उस राज्य से चली जाती हैं और ईर्ष्या, द्वेप और अभिमान (घमंड) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार हित, प्रीति और एकता ये नष्ट हो जातीं हैं और संसार में व्याधियां (रोग) और अकाल मृत्यु (विना समय की मौत) अनेक प्रकार के विघ्न (वाधाऐं), दुर्दशा, हानि और दरिद्रता हीनता तथा राज्य में हानि को करने वाले युद्धादिक (संग्राम) होते हैं। अतएव राजा विरोध के कारणों को नष्ट करता रहे ॥५५-५६-५७-५८॥

बलप्रयोजनम्

(१२)

प्रभुत्वं तु समाश्रित्य द्वादशैव बलान्यपि ।
असंगशक्तिमाश्रित्य कुर्यात्संरक्षणं नृपः ॥५९॥

भाषार्थः—प्रभुत्व (स्वामिभाव) और वारह वल (जिनका आगे वर्णन किया जायगा) और असंग (केवल, अकेली) शक्ति (वल) का अवलंवन करके राजा रक्षा करता रहे। यही वल का प्रयोजन है ॥५९॥

बलहीनता

(०१२)

बलं विना महीपानां शीघ्रं वाथ शनैः शनैः ।
प्रतिष्ठा स्थितिराधारः सर्वथा च विनश्यति ॥६०॥

भावार्थः—बिना बल के राजाओं की प्रतिष्ठा (मान) स्थिति और उन का आधार शीघ्र अथवा शनैः शनैः सब प्रकार से नष्ट हो जाता है ॥६०॥

बुद्धिप्रयोजनम्

(१३)

शुद्धोच्चेश्वरभावैस्तु बुद्धेरत्रप्रयोजनम् ।
सह्यशक्त्या विचारेण न्यायधर्मावलम्बनम् ॥६१॥
न्यायधर्मविधानेन हितप्रीत्येकनादयः ।
वर्द्धन्ते सिद्धयः सर्वा आगच्छन्ति समृद्धयः ॥६२॥

भावार्थः—शुद्ध उच्च और ईश्वरभाव से बुद्धि का यहां पर प्रयोजन यह है कि सहन शक्ति से और विचार से न्याय और धर्म का अवलम्बन किया जाय क्यों कि न्याय और धर्म का आचरण करने से हित, प्रीति, एकता आदि (सुख, शान्ति, स्थिति) और सम्पूर्ण सिद्धियां बढ़ती हैं तथा समृद्धियां (सम्पत्तियाँ) प्राप्त होती हैं ॥६१-६२॥

बुद्धिनाशः

(०१३)

न्यायधर्मविनाशेन मतिश्चान्यायिनां सदा ।
नश्यति, दुर्मतिस्तेषां जायते नाशहेतवे ॥६३॥

क्षयात्याचारदुःखानि संसारे प्रभवन्ति हि ।
अन्येभूपास्तथा चैवं सेनानामधिनायकाः ॥६४॥
राज्यं हरतुमिच्छन्ति हरन्ति वा कदाचन ।
सेनाधिपा नृपास्ते च संप्राप्तविजयाः यदा ॥६५॥
न्याये धर्मे प्रवर्तन्ते तेषां राज्यं स्थिरं भवेत् ।
हीना दशाभिजायेत चान्यथाताहृशी सदा ॥६६॥

भाषार्थः—न्याय और धर्म के विनाश होने से अन्याय का आचरण करने वालों की बुद्धि नष्ट होजाती है तथा उन का नाश करने के लिये उनकी निकृष्ट (बुरी) बुद्धि हो जाती है तथा ऐसा होने से संसार में निश्चय रूप से क्षय (नाश) अत्याचार और दुःखों की उत्पत्ति होती है तब अन्य राजा तथा सेना के अधिनायक (स्वामि) राज्य को हरने की इच्छा करते हैं और कभी अवसर प्राप्त होने पर राज्य का हरण भी करलेते हैं। यदि वे विजय को प्राप्त किये हुए सेनापति और राजा लोग धर्म और न्याय में प्रवृत्त होते हैं (लग जाते हैं) तब उनका राज्य स्थिरता प्राप्त कर लेता है। यदि यह भी अधर्म और अन्याय का आचरण करते हैं तो इनकी भी पूर्व राजाओं की सी दशा होती है ॥६३-६४-६५-६६॥

संग्रहः

(१४)

स्वदेशोत्पन्नवीराणां क्षत्रियाणां निरन्तरम् ।
प्रकुर्यात् संग्रहं भूपः मानान्नधनसत्कृतैः ॥६७॥
तथैव राज्यविस्तारः यथास्यात्स्य संग्रहः ।
तस्माद्योग्यो महीनाथः कुर्यात्संग्रहमुत्तमम् ॥६८॥

भाषार्थः—सर्वदा अपने देश में उत्पन्न हुए वीरक्षत्रियों का मान (प्रतिष्ठा) अन्न, धन और सत्कारों से राजा संग्रह करले।

क्योंकि जिस राजा का जैसा संग्रह होता है उसी के अनुसार उसके राज्य का विस्तार भी होता है । अतएव योग्य राजा उत्तम रीति से वीर क्षत्रियों का संग्रह करे ॥६७-६८॥

नैर्बल्यम्

(१४)

सुसंग्रहं विना भूपः नैर्बल्यमुपगच्छति ।
कदाचित्समयप्राप्तौ राज्यात्पतति सर्वथा ॥६९॥

भावार्थः—अच्छे संग्रह के विना राजा निर्बलता को प्राप्त हो जाता है तथा कभी समय आ पड़ने पर सर्वथा (हमेशा के लिये) राज्य से च्युत (भ्रष्ट) हो जाता है ॥६९॥

अचलता

(१५)

सैश्वर्यान्क्षत्रियान्वीरान् प्रबध्वाभूमिशासने ।
नैश्चल्यं लभते भूपो राज्यं सुदृढतां तथा ॥७०॥

सामन्तानाञ्च या सेना वर्तते सा सदा स्थिरा ।
तयैव जायते रक्षा विपत्तीनां समागते ॥७१॥

क्षत्रियाणां योग्यताञ्चा-प्यभ्यासमस्त्रशास्त्रयोः ।
पश्येद् भूनायको नित्यं राज्यकल्याणहेतवे ॥७२॥

भावार्थः—राजा ऐश्वर्य से युक्त वीर क्षत्रियों को भूमिशासन (थोड़ी पृथ्वी के अधिकार) में बांधकर अपने राज्य की निश्चलता और दृढ़ता को प्राप्त करता है । सामन्तो (थोड़ी भूमि केअधिकारियों) की जो सेना है वही सर्वदा राज्य रक्षा के लिये स्थिर जाननी चाहिये क्योंकि विपत्तियों के आने पर उसी सेना से रक्षा होती है ।

क्षत्रियों की योग्यता और अस्त्रशस्त्रों के अभ्यास को राजा राज्य कल्याण के लिये नित्य प्रति देखता रहे ॥७०-७१-७२॥

अस्थिरता

(०१५)

ग्रहीतवेतना सेना जायते सर्वदाऽस्थिरा ।
कदाचिच्चतदाधीनं राज्यमन्याश्रयं भवेत् ॥७३॥

भापार्थः—वेतन (तनख़्वाह) पाने वाली सेना हमेशा अस्थिर हुआ करती है और ऐसी सेना के आधीन रहने वाला राज्य कभी न कभी दूसरों के हाथ में चला जाता है ॥७३॥

प्रबलराज्यम्

(१६)

यस्य भूपस्य साम्राज्ये नृणां विप्लवकारिणाम् ।
विधर्मिणां भवेत्संघः तदा स क्षतिनन्दनः ॥७४॥

स्वबन्धुक्षत्रियेष्वेव विभजेद् भूमिशासनम् ।
प्राप्तभूशासनास्तेऽपि विभजन्त्वेवमेवहि ॥७५॥

प्रतिशतं प्रजामध्ये योजयेद्दशरक्षकान् ।
तदातस्य राज्यशक्ति जायते सुदृढासदा ॥७६॥

संयुक्तंबलमेतद्धि महद्बलमुदीर्यते ।
एतेन प्रबलं राज्यम् भूभुजामभिजायते ॥७७॥

भापार्थः—जिस राजा के राज्य में उपद्रव करने वाले और विधर्मी पुरुषों का समूह हो वह राजा अपने बन्धुओं में तथा क्षत्रियों में पृथ्वी का शासन बांट दे। इसी प्रकार भूशासन को प्राप्त किये

हुए क्षत्रि लोग भी अपने बांधव और क्षत्रियों में भूशासन का विभाग करदें प्रत्येक राजा को चाहिये कि सैंकड़ा प्रजा में दश रक्षकों को लगावे तब ही उसकी राज्य शक्ति दृढ़ हो सकती है यही परस्पर मिला हुआ बल बड़ा भारी बल कहा गया है तथा इसी बल से राजाओं का प्रबल राज्य होता है ॥७४-७५-७६-७७॥

न्यूनबलम्

(०१६)

कदाचित्समयप्राप्तौ ते तु न्यूनबलाधिपाः ।
बलवद्भिर्महाराजै-रुन्मूल्यंते सुनिश्चितम् ॥७८॥

भावार्थः—कभी दैव योग से समय आजाने पर कम बल (सेनादि) वाले राजा बलवान महाराजाओं से निश्चित रूप से नष्ट कर दिये जाते हैं ॥७८॥

दार्ढ्यम्

(१७)

न्यायरक्षणकार्याणि भवन्तु क्षत्रियाश्रये ।
न्यायदण्डविधानं च क्षत्रियेभ्यः पृथक् भवेत् ॥७९॥
साधारणप्रजातुल्यं न भवेत्तत् कदाचन ।
अयोग्यपुरुषस्थाने सुयोग्यान्विनियोजयेत् ॥८०॥
भूमिभागाधिपत्यन्तु न्यूनम्वाप्यधिकं भवेत् ।
क्षत्रियाणान्तदासम्यक् राज्यदार्ढ्यं प्रजायते ॥८१॥

भावार्थः—न्याय और रक्षा के काम सर्वदा क्षत्रियों के आश्रय में ही होने चाहियें क्षत्रियों के लिये न्याय और दण्ड का विधान पृथक् होना चाहिये। साधारण प्रजा के समान कभी भी न हो।

अयोग्य मनुष्य के स्थान पर अर्थात् जिस स्थान पर अयोग्य मनुष्य नियुक्त हों वहां सुयोग्य मनुष्यों को लगाना चाहिये। जिस राज्य में न्यून अथवा अधिकता से क्षत्रियों का भूमि में अधिकार होता है वही राज्य दृढ़ता को प्राप्त करता है ॥७९-८०-८१॥

विचालनम्

(०१७)

क्षत्रियादृढताभावे साधारणप्रजा इव ।
जात्यभिमानशौर्ये च स्थितिस्तेषां विनश्यति ॥८२॥

अतो राज्यविनाशोऽपि जायते नाऽत्र संशयः
उपायोऽस्यतु विज्ञेयो राज्यदार्ढ्यावलम्बनम् ॥८३॥

भाषार्थः—दृढ़ता के अभाव होने पर क्षत्रिय लोग साधारण प्रजा के समान होजाते हैं तब उनकी जातिका अभिमान, शौर्य, पराक्रम और स्थिति नष्ट होजाती है। अतएव निश्चय रूप से राज्य का भी विनाश होजाता है इस का उपाय यह है कि राज्य दृढ़ता (राज्य की दृढ़ता के लिये कही हुई बातों) का अवलम्बन किया जाय ॥८२-८३॥

आज्ञा

(१८)

धर्मशान्तिप्रबन्धैश्च युक्तामाज्ञाम्प्रभोःसदा ।
पालयेत्क्षत्रियोवीरो धर्मोऽयं परमोभवेत् ॥८४॥

भार्षाथः—धर्म शान्ति और प्रबन्धों से संयुक्त (मिली हुई) स्वामि की आज्ञा का वीर क्षत्रिय पालन करे यही उसका श्रेष्ठ धर्म है ॥८४॥

अधर्मवचनम्

(०१८)

उद्वेगाधर्मयुक्तस्य वाक्यस्यपरिपालनम् ।
महत्पापमितिप्रोक्तं दुःखमूलञ्चजायते ॥८५॥
यद्यज्ञानंसमाश्रित्य पालयत्येव योनरः ।
संसारे निन्दितो भूत्वा घोरे नर्केऽभिगच्छति ॥८६॥

भाषार्थः—उद्वेग (मन की अशान्ति, उत्तेजना) और अधर्म युक्त वाक्य का पालन करना यह वड़ा भारी पाप कहा गया है तथा यही दुःखों का कारण है यदि अज्ञान का आश्रय करके ऐसे वाक्य का जो मनुष्य पालन करता है वह संसार में निन्दित होकर घोर नर्क में पड़ता है ॥८५-८६॥

ज्ञाननेत्रम्

(१९)

समाधिभिर्दिव्यदृष्ट्या बुद्ध्याचारैर्निरन्तरम् ।
विचारशक्तिभिर्युक्त्या सर्ववृत्तावलोकनात् ॥८७॥
हानेर्दुःखस्यसर्वस्य विघ्नस्य च भविष्यतः ।
अत्याचारस्यसंसारे विज्ञानंपरिजायते ॥८८॥

भाषार्थः—समाधि (चित्तवृत्ति निरोध) ध्यान पूर्वक दिव्य दृष्टि (विना दीखने वाली वात का जिससे ज्ञान होता है ऐसी देवताओं की सी दृष्टि) वुद्धि, चार (गुप्तदूत) विचार शक्ति तथा निरन्तर युक्ति पूर्वक सम्पूर्ण वातों के जान ने से हानि, दुःख, विपत्तियाँ, विघ्न और अत्याचार इन सव वातों का संसार में परिज्ञान होता है॥८७-८८॥

अन्धः

(०१९)

प्रजावृत्तपरिज्ञानं विनान्याये च रक्षणे ।
अशक्तो जायते भूपः निन्द्यते च महीतले ॥८९॥

रक्षकाणां प्रबन्धश्च कार्याण्यपि विलोकयेत् ।
अन्यथा रक्षकास्तेतु प्रजाः संपीडयन्ति हि॥९०॥

कर्याणि योग्यतां चापि राज्यस्य कर्मचारिणाम् ।
प्रपश्येदन्यथा ते तु भवन्त्यन्यायगामिनः ॥९१॥

भाषार्थः—प्रजा वृतांत जाने विना राजा रक्षा और न्याय करने में असमर्थ होता है तथा प्रजा के वृत्तान्त को न जानने से निन्दा भी प्राप्त करता है। राजा को चाहिये कि राज्य के रक्षकों का प्रबन्ध तथा उनके कार्यों को देखता रहे। नहीं तो वे रक्षक लोग प्रजा को दुखी करते हैं। अतएव राज्य के कर्मचारियों के कार्य तथा उनकी योग्यता को देखता रहे अन्यथा (उनकी योग्यता और कार्यों को न देखने से) वे कर्मचारी अन्याय करने लगते हैं ॥८९-९०-९१॥

विचारशक्तिः

(२०)

विचाराधिक्यसहिताः मनुष्या निर्मिताः समे ।
तेषु स्वाधीनतायाश्च बलं संविद्यतेऽधिकम् ॥९२॥

अनेक जन्मभूतानि कर्माणि तानि मानवः ।
शंशोधितुंविकर्तुं वा जायते सततं क्षमः ॥९३॥

लोपचिन्हम्

(०२१)

मोहे स्वार्थे सुखे भोगे चैश्वर्ये प्रविलिप्सया ।
निन्दां संप्राप्य नश्यंति लोपचिह्नमुदीरितम् ॥१०२॥

भाषार्थः—मोह, स्वार्थ, सुख भोग और ऐश्वर्य में अधिकता रखने से मनुष्य निन्दा को प्राप्त करके नष्ट होजाते हैं यह लोपचिन्ह कहा गया है ॥१०२॥

बलबुद्धी

(२२)

प्रजासन्मार्गवृत्यर्थं रक्षान्यायौ समाचरेत् ।
सर्वदा बलबुद्धिभ्यां राज्यं संजायतेऽचलम् ॥१०३॥

भाषार्थः—बल और बुद्धि के द्वारा प्रजा को अच्छे मार्ग में चलाने के लिये रक्षा और न्याय का आचरण करना चाहिये। इसी से राज्य निश्चल होता है ॥१०३॥

सर्वनाशः

(०२२)

रक्षान्यायौ विना लोके शुद्धमार्गे प्रजाः क्वचित् ।
न चलंति तदा ताश्च कुमार्गमाश्रयंति हि ॥१०४॥
दुःखानि च तदा प्राप्य कुपिताश्च दुराशिषं ।
निस्सारयंति जायंते राज्ये दुर्घटनादयः ॥१०५॥

भाषार्थः—रक्षा और न्याय के बिना संसार में प्रजा कदापि सन्मार्ग में नहीं चलती प्रत्युत वह कुमार्ग (बुरे मार्ग) का ही आश्रयण

करती है। तब वह दुःखों को प्राप्त करके कुपित होकर दुराशीर्वाद (अमंगल करने वाले वचन) निकालती है। तब राज्य में दुर्घटना पतनआदि होते रहते हैं ॥१०४-१०५॥

अष्टतेजांसि

(२३)

वायोर्जलस्य भूमेश्च तेजसः सोमसूर्ययोः ।
यमस्येन्द्रस्य च गुणान् संप्राप्य भूपतिः कृतिः ॥१०६॥
विनयं वीरतां प्राप्य प्रजामंगलहेतवे ।
शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु रक्षां न्यायं समाचरेत् ॥१०७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि वायु, जल, भूमि, तेज चन्द्र, सूर्य, यम, इन्द्र इन आठों के गुणों को ग्रहण करके तथा विनय और वीरता प्राप्त करके प्रजा के हित के लिये शुद्ध उच्च और ईश्वर भाव से रक्षा तथा न्याय करे ॥१०६-१०७॥

नीचभावः

(०२३)

विनास्यादष्टतेजोभि नृपानन्यायिनोऽपराः ।
राजानो नायका वापि नाशयंति सुनिश्चितम् ॥१०८॥
अन्यायाचरणेनैव परेषां हृदये सदा ।
शत्रुतोत्पद्यते तस्मात् दण्डं संप्राप्नुवंति ते ॥१०९॥
बांधवोऽन्यायिनः सर्वे त्यजंति प्रीतिमेकतां ।
शत्रुतांचापगच्छंति प्रकृत्याः नियमोऽस्त्ययम् ॥११०॥

भावार्थः—उपरिलिखित अष्ट तेजों के विना अन्यायी राजाओं को दूसरे राजा तथा सेनानायक निश्चय ही नष्ट कर देते हैं। अन्याय

का आचरण करने से ही सर्वदा दूसरों के हृदय में शत्रुता उत्पन्न हो जाती है । अतएव उन अन्यायियों को दण्ड प्राप्त होता है और अन्यायी के सम्पूर्ण बांन्धव, संबन्धी प्रीति और एकता को छोड़ देते हैं तथा शत्रुता प्राप्त कर लेते हैं । यह स्वाभाविक नियम है ॥१०८-१०९-११०॥

न्यायः

(२४)

न्यायेन विद्यते लोके स्वस्त्यादिनवकं सदा ।
तस्मान्न्यायपरोभूपो भवेद्राज्याभिवृद्धये ॥१११॥
परस्परं प्रजाः भूपाः समीपे निवसन्त्वथ ।
सम्मेलनं प्रकुर्वन्तु चान्योन्यक्षेमहेतवे ॥११२॥
धर्मयुक्तो महीपालः प्रजाप्रीतिविधायकः ।
न तं विचालनार्थं हि कश्चिद्रूपः क्षमो भवेत् ॥११३॥

भावार्थः—न्याय से संसार में स्वस्ति, वृद्धि, शांति, स्थिति, प्रीति, एकता, सम्पत्ति, शासन और दीर्घायु ये नौ बातें रहा करती हैं अतः राज्य की वृद्धि के लिये राजा न्याय परायण होवे । परस्पर राजा और प्रजा को समीप में ही निवास करना चाहिये तथा एक दूसरे के कल्याण के लिये राजा और प्रजा आपस में मिलते रहें । धर्मयुक्त जो राजा हैं वही प्रजा को प्रसन्न करने वाला है तथा ऐसे राजा को चालायमान करने को कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥१११-११२-११३॥

दुराशीः

(०२५)

न्यायं विना तु साम्राज्ये नाशो दुर्घटनास्तथा ।
अल्पान्यायूषि जायंते, मानवानां निरन्तरम् ॥११४॥

पंचम्यां वा च सप्तम्यां संतत्यां जायते क्षयः ।
प्राप्ताधिकारभृत्याश्च ह्यन्यायमाचरंति ये ॥११५॥
समहीपालभृत्यास्ते समक्षे परमात्मनः ।
उत्तरदायिनः सन्ति सर्वदैतद्विचार्यताम् ॥११६॥

भावार्थः—न्याय के विना राज्य में विनाश, दुर्घटना तथा मनुष्यों की थोड़ी अवस्था होती है और पांचमी अथवा सातवीं संतति (पीडी) के होने पर उनका नाश हो जाता है । तथा अधिकार प्राप्त किये हुये जो कर्मचारी अन्याय का आचरण करते हैं वे राजा के साथ २ परमात्मा के सामने उत्तर देने वाले हैं इस बात का सर्वदा विचार करना चाहिये ॥११४-११५-११६॥

रक्षा

(२५)

रक्षा संजायते राज्ये प्रजाप्राणशरीरयोः ।
धनानाश्चापि सर्वेषां स्वस्य भूमिपतेस्तथा ॥११७॥
अधिकारः स्वरक्षायाः सर्वेभ्य एव विद्यते ।
नास्मिन्संरक्षणे दोषः कस्मैश्चिदभिजायते॥ ११८॥

भावार्थः—प्रजा के प्राण, शरीर, स्वातंत्रता और संपूर्ण धनों की तथा राजा की भी राज्य में रक्षा होती है । तथा राज्य में भी अपनी रक्षा का अधिकार सबों के लिये है । अर्थात् अपनी २ रक्षा करने में किसी के लिये कोई दोष नहीं है ॥११७-११८॥

अरक्षा

(०२५)

क्षत्रियो दुर्बलानेव संरक्षति तदा नृपः ।
तेजः प्रशंसारहितः प्रजादृष्ट्यः पतत्यधः ॥११९॥

विनाशं याति नर्कं च घोरे समभिगच्छति ।
तस्माद्रक्षापरो भूयात् भूपतिर्भूतले सदा ॥१२०॥

भावार्थः—क्षत्रिय राजा जब दुर्बलों की रक्षा नहीं करता तब वह तेज और प्रशंसा से रहित होकर प्रजा की दृष्टि से नीचे गिर जाता है । तथा विनाश को प्राप्त होता है और घोर नर्कगामी हो जाता है अतएव राजा संसार में रक्षा करता रहे ॥११९-१२०॥

चेष्टा

(२६)

नातिकृपणतां कुर्यात् नातिव्ययमुपाचरेत् ।
औदार्यमवलम्ब्यैव प्रबन्धेन तु सर्वदा ॥१२१॥

यथास्यादागमो यस्य व्ययः स्यात्तादृशः सदा ।
यथाशक्ति कर्मचेष्टा तृष्णास्याद्दुःखदायिनी ॥१२२॥

भावार्थः—राजा को न तो अति कृपण (लोभी) होना चाहिये और न अतिव्यय (खर्च) करना चाहिये । किन्तु प्रबन्ध के साथ उदारता को प्राप्त करके जिसकी जितनी आमदनी हो उसी के अनुसार खर्च करे । शक्ति के अनुसार प्रत्येक कार्य में चेष्टा करनी चाहिये । तृष्णा कभी न करे क्योंकि वह दुःख देने वाली होती है ॥१२१-१२२॥

ऋणम्

(०२६)

त्यागादाहरणाद्वापि, प्रमादाद्धिधनस्य च ।
ऋणस्य हीनतायाश्च समुत्पत्तिः प्रजायते ॥१२३॥

भापार्थः—प्रमाद में पड़ कर धन का त्याग करने से तथा हरण हो जाने से वा प्रमाद से ऋण (कर्ज) हो जाता है और हीनता की उत्पत्ति होती है ॥१२३॥

सम्मतिः

(२७)

विशेषेषु च कार्येषु ग्रहीयात्सम्मतिं सदा ।
सामन्तानां प्रजासभ्य–जनानां पृथिवीपतिः ॥१२४॥

प्रस्तावः सैवमान्यः स्यात् यत्रस्यादतिसम्मतिः ।
एतेन जायते भूपो निर्दोषः सत्प्रबन्धकः ॥१२५॥

सहायतां नैव कुर्यादन्य राज्यापराधिनः ।
एतेन विग्रहाशंका ह्यन्यै भूपतिभिः सह ॥१२६॥

भापार्थः—विशेष कार्यों में राजा अपने सामन्त (जागीरदार) तथा प्रजा के सभ्य मनुष्यों की सम्मति प्राप्त करे । तथा वही प्रस्ताव माननीय होना चाहिये जिसमें अधिक सम्मति हो । क्योंकि ऐसा करने से राजा निर्दोष हो जाता है तथा अच्छा प्रबन्धक कहा जाता है । राजा को चाहिये कि दूसरे राज्य के अपराधियों की सहायता न करे क्योंकि ऐसा करने पर अन्य राजाओं के साथ युद्ध प्रारम्भ (छिड़जाने) होने की सम्भावना है ॥१२४-१२५-१२६॥

मन्त्रहीनता

(०२७)

सम्मतिं तु विना लोके प्रीतिरैक्यं बलान्यपि ।
हीयन्ते चापि वर्द्धन्ते संततं राज्यविप्लवाः ॥१२७॥

भाषार्थः—सभ्यादिकों (सभासदों) की सम्मति के विना प्रीति, एकता, बल (सेना आदि) कम हो जाते हैं तथा राज्य में उपद्रव बढ़ जाते हैं ॥१२७॥

साक्षी

(२८)

सुकृतं दुष्कृतं दुःखमाशिषश्चदुराशिषम् ।
साक्षी रूपेण विश्वेशः सर्वदैवाभिपश्यति ॥१२८॥

एतत्तत्वं विजानन्ति ये जना पृथिवीतले ।
महत्व मक्षयं सौख्यं लोकयोः प्राप्नुवन्ति ते ॥१२९॥

भाषार्थः—सुकृत (अच्छा काम) दुष्कृत (बुरा काम) दुःख, आशीर्वाद तथा दुराशीर्वाद इन सबों को साक्षी (मध्यस्त) रूप से परमात्मा सर्वदा देखता रहता है। जो मनुष्य संसार में इसके तत्व को जानते हैं वही महत्व (बढ़ाई) और कभी नष्ट न होने वाले सुख को इस लोक तथा परलोक में प्राप्त करते हैं और उसकी दीर्घायु हो जाती है ॥१२८-१२९॥

नास्तिकः

(०२८)

नास्तिको लभते नैव प्रशंसां दीर्घजीवितम् ।
अविश्वस्तोऽपि संल्लोके विनाशमुपगच्छति ॥१३०॥

भाषार्थः—नास्तिक (जिसकी परलोक में श्रद्धापूर्वक बुद्धि नहीं है) ऐसा मनुष्य प्रशंसा और दीर्घायु को प्राप्त नहीं करता है तथा अविश्वासी होकर संसार में नाश को प्राप्त करता है ॥१३०॥

ज्ञानम्

(२९)

सर्वेषाञ्च सुखं दुःख-मात्मवत्योऽभिपश्यति ।
ज्ञानी स एव जायेत ज्ञानमेवमहद्बलम् ॥१३१॥

न्याये संरक्षणे धर्मे प्रवृत्ति र्यस्य विद्यते ।
अखण्डिता सदावृद्धा तस्य स्यात्सन्ततिः क्षितौ ॥१३२॥

भावार्थः—सम्पूर्ण प्राणियों के सुख तथा दुःखों को जो मनुष्य अपनी आत्मा के सुख दुःख के समान मानता है वही ज्ञानी कहा गया है तथा यह ज्ञान बड़ाभारी बल है। न्याय, रक्षा और धर्म में जिसकी प्रवृत्ति होती है उसकी सन्तति, अखंडित तथा संसार में वृद्धि को प्राप्त करती है ॥१३१-१३२॥

अज्ञानम्

(०२९)

आत्मवद्यो न जानाति सुखं दुःखं परस्य च ।
विनिर्दोषमनुष्यान्यः दण्डयतीति सः सदा ॥१३३॥

संसारे निन्दितो भूत्वा सन्ततिंनाशयत्यपि ।
तस्मात् ज्ञानस्य सम्प्राप्तौ प्रयतेत महीपतिः ॥१३४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने सुख तथा दुःख को पर मनुष्य या प्राणी के सुख दुःख के समान नही जानता तथा विना अपराध किये हुए मनुष्यों को दण्ड देता है वह सर्वदा संसार में निन्दित होकर अपनी संतति को नष्ट कर लेता है अतएव ज्ञान को प्राप्त करने के लिये राजा प्रयत्न करता रहे १३३-१३४॥

राजा

(३०)

पूर्वकर्मानुसारेण तीव्रबुद्धिर्महीपतेः ।
साधारणप्रजाभ्यस्स्या त्सुप्रसंगैर्यदाच सः ॥१३५॥

संप्राप्नुयात्सूपदेशं प्रजा क्षेम करस्तदा ।
जायते, चिरकालंच करोति राज्यमक्षयम् ॥१३६॥

भाषार्थः—पूर्व कृत शुभ कर्मानुसार साधारणतया प्रजा से राज़ा की बुद्धि तीव्र होती है। यदि वह शुभ प्रसंग से अच्छे उपदेश को प्राप्त करले तब ही वह राजा प्रजा को सुख देने वाला होता है और चिरकाल तक अखण्डित राज्य करता है ॥१३५-१३७॥

हानिः

(०३०)

असत्संगवतां राज्ञां हीना बुद्धिर्विजायते ।
तस्माद्राज्येऽपिजायन्ते विघ्नानिहानयस्तथा ॥१३७॥

भाषार्थः—संसार में असत् संगति को प्राप्त किये हुये राजा लोगों की बुद्धि हीनता को प्राप्त हो जाती है तथा हीन बुद्धि के कारण से ही राज्य में अनेकों विघ्न तथा हानियां होती हैं ॥१४७॥

प्रजाः

(३१)

नृपतुष्टाः प्रजा नित्यं सर्वस्वं भूपतेरिमाः ।
बलं मित्राण्यपि तथा ह्याचारैर्धर्मपूर्वकैः ॥१३८॥

भापार्थः—धार्मिक आचरण करने से नित्यप्रति राजा से सन्तोष प्राप्त की हुई प्रजा ही राजा का बल तथा मित्र है । प्रजा ही राजा का धन और सर्वस्व है जबकि धर्मयुक्त परस्पर बर्ताव हो ! ॥१३८॥

दुर्भावः

(०३१)

असन्तुष्टप्रजाभ्यस्तु प्रजाभूपालयोरपि ।
परिणामे तु राज्यस्य विनाशः सततं भवेत् ॥१३९॥
अन्यायेनाप्यधर्मेण चाल्पायुः संप्रजायते ।
त्यक्तप्रीतिप्रजाः भूपः बुद्ध्या वापि बलेन च ॥१४०॥
न्यायेन स्ववशे कुर्यात् नान्यथा तु कथंचन ।
अन्यायपीडितात्मानः घृणां कुर्वंति सर्वथा ॥१४१॥
देशभाषाऽववेषेभ्यः मर्यादाभ्यश्च संततम् ।
शापंददति भूपाय राज्यं वा नाशयन्त्यपि ॥१४२॥
अन्यायपीडितात्मानः सबलास्युः परे भवे ।
परिणामो विनाशोस्ति हिंसा शापदुराशिषाम् ॥१४३॥

भाषार्थः—प्रजा के असंतुष्ट होने के परिणाम (नतीजा, फल) में प्रजा, राजा तथा राज्य का भी निरन्तर विनाश होता है । अन्याय तथा अधर्म का आचरण करने से अल्प अवस्था होती है । जिस राज्य की प्रजा ने राज्य प्रीति को छोड़ दिया है वहां के राजा को चाहिये कि बुद्धि, बल और न्याय से उसे अपने वश में करले अन्य किसी प्रकार से नहीं । अन्याय से पीडित आत्माएं अन्यायिओं की देशभाषा और उनके वेश तथा मर्यादा से घृणा (नफरत) करने लग जाते हैं । तथा राजा को शाप देते हैं और एवं राज्य को नष्ट करते हैं । अन्याय से पीड़ित आत्मा अन्याय का बदला लेने को

पूर्वजन्म की अपेक्षा अधिक प्रबल होते हैं तथा हिंसा, शाप दुराशीर्वाद इनके परिणाम में विनाश होता है अर्थात् इनका परिणाम विनाश ही है ॥१३९-१४०-१४१-१४२-१४३॥

विवाहः

(३२)

मर्यादया स्वजातौ स्यात् सर्वदा पाणिपीडनम् ।
स्यात्स्त्रीपुरुषयोरेक–भावस्त्वत्रपरस्परम् ॥१४४॥

पुष्टे वपुषि तारुण्ये स्त्रियो वा पुरुषस्य च ।
वियोगः स्यात्तदा योग्य उभाभ्यां च यथेप्सितम् ॥१४५॥

नियोगस्याऽधिकारश्च व्यभिचारो न युज्यते ।
दत्तकस्याधिकारोऽस्ति न योग्यं वंशनाशनम् ॥१४६॥

भाषार्थः—मर्यादा (नियम) पूर्वक अपनी जाति में ही सर्वदा विवाह संस्कार करना चाहिये तथा स्त्री और पुरुष दोनों के आपस का भाव एक होना चाहिये । स्त्री अथवा पुरुष का शरीर पुष्ट होने पर या तरुण अवस्था में वियोग हो जाय तो उन दोनों को योग्य है कि अपनी इच्छा के अनुसार नियोग (पुनर्विवाह) करलें किन्तु व्यभिचार योग्य नहीं है दत्तक संतति के ग्रहण करने का भी अधिकार है किन्तु वंश विध्वंस (नाश) सर्वथा अयोग्य है ॥१४३-१४४-१४५॥

निर्मूलम्

(०३२)

जातेर्नियमबद्धेन विवाहेन विना सदा ।
जातिर्हीनाऽभिजायेत मूलेनापि विनश्यति ॥१४७॥

वियोगः स्त्रीपुरुषयो वंशवृद्धिविघातकः ।
वंशविच्छेददोषाश्च पितरः प्रपतन्त्यधः ॥१४८॥

भाषार्थः—जाति के नियम से बर्ते हुए अर्थात् जाति नियमानुसार विवाह संस्कार न करने से जाति हीन दशा को प्राप्त हो जाती है । अथवा समूल नाश हो जाती है । स्त्री और पुरुष इन दोनों में से एक किसी का वियोग हो जाना वंश की वृद्धि का विघात (नाश) करने वाला है और वंश के नष्ट हो जाने से सम्पूर्ण पितर (मृतपूर्वज) अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥१४७-१४८॥

कटिबद्धता

(३३)

जनसंख्यां साधुवीक्ष्य ग्रामपत्तनयोरपि ।
प्रजानाञ्च प्रतिशतं रक्षार्थं दशरक्षकान् ॥१४९॥
रक्षकाणां प्रतिशत–मेक एवाभि रक्षकः ।
प्रासादपरिरक्षार्थं स्वरक्षार्थमथापि वा ॥१५०॥
सन्निधौ रक्षका संतु बलमेतत्तु भूपतेः ।
भूपतिपाकशालायाः रक्षकेभ्योशनं मिलेत् ॥१५१॥
एतेन रक्षकाणांतु जायते कटिबद्धता ।
तदा राज्यस्य दार्ढ्यं स्यात् प्रबंधो वापिसर्वशः ॥१५२॥

भाषार्थः—ग्राम तथा पत्तन (शहर) की जन संख्या को भली भांति देखकर प्रति सैकड़े प्रजा में दश रक्षकों (सिपाही) को रक्षार्थ राजा लगावें । प्रति सैकड़े सिपाहियों के मध्य में एक प्रासाद–रक्षक नियुक्त करे प्रासाद (किले) किले की रक्षा के लिये तथा अपनी रक्षा के लिये रक्षक लोग समीप में रहने चाहिये यही राजा का बल है । अतः राजा के भोजनालय (पाकशाला-रसोईघर)

से इन रक्षकों को भोजन मिलना चाहिये। ऐसा करने से रक्षक लोग कटिवद्ध (कमर बांधे हुये) तैयार रहते हैं। इसी से राज्य की दृढ़ता है एवं ठीक तरह प्रवन्ध हो सकता है ॥१४९-१५०-१५१-१५२॥

शैथिल्यम्

(०३३)

रक्षकैः क्षत्रियैः वीरैः विना भूमिपतिः क्षितौ ।
निष्प्रभावो कुकालाप्तौ सराज्यं प्रविनश्यति ॥१५३॥

भाषार्थः—क्षत्रिय वीर रक्षकों के विना अर्थात् रक्षक (सिपाही) क्षत्रिय और वीरों के विना संसार में राजा प्रभाव हीन होकर कुसमय आने पर राज्य के सहित अवश्य नष्ट हो जाता है ॥१५३॥

प्रत्युपकारः

(३४)

औदार्येणप्रतिफलं प्रदद्याद्दापयेत्तथा ।
महत्वं भूतले प्राप्य लभते स्वर्गजं सुखम् ॥१५४॥
सुकृतस्य वीरतायाः न मिलेदेकजन्मनि ।
सहस्रगुण संवृद्धं फलमन्येषु जन्मसु ॥१५५॥
जगद्धेतोः परार्थंवा जन्मवांछित जातिसु ।
धर्मार्थंम्मृतवीराणां जायते च परेभवे ॥१५६॥
तत्र ते तु महावीराः लक्ष्मीकाः सपराक्रमाः ।
सप्रतापाः ससन्ताना लभंते दीर्घमायुषम् ॥१५७॥
अधर्ममथवाऽन्यायं यावन्नैवाचरंति ते ।
तावत्तस्यापि धर्मस्य क्षीणता न प्रजायते ॥१५८॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि प्रतिफल (किये हुए काम का फल-परिणाम, मूल्य) स्वयं दे तथा दूसरों से दिलावे। तब वह संसार में बड़ाई को प्राप्त करके स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है। यदि सुकृत (अच्छे काम) और वीरता का फल एक जन्म में प्राप्त न हो सके तो अन्य जन्मों में हजार गुना बढ़कर मिलता है। संसार के हित के लिये अथवा परमार्थ के निमित्त या धर्म के लिये मरे हुए वीरों का जन्म इच्छा की हुई जाति में दूसरे जन्म में होता है और उस जन्म में वे महावीर बड़े लक्ष्मीवान् और पराक्रमी प्रताप वाले संतान से युक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त करते हैं तथा जब तक वे अधर्म और अन्याय का आचरण नहीं करते तब तक उस पूर्व जन्म में किये हुये धर्म की क्षीणता नहीं होती। शुभाशुभ कर्मानुसार वार वार शरीर पाते रहते हैं ॥१५४-१५५-१५६-१५७-१५८॥

प्रलयः

(०३४)

उपकारं विना लोके हानौ कार्ये च निन्दिते ।
प्रवृत्ति जायते तस्मात् न्यायधर्मौ विनश्यतः ॥१५९॥
प्रसिद्धराजवंशाश्च विनाशं यांति सर्वथा ।
महाप्रलयपर्यंतं घोरे नर्के वसन्त्यपि ॥१६०॥

भाषार्थः—संसार में विना उपकार के हानि तथा निन्दित कार्य में प्रवृत्ति हो जाती है। अतः न्याय और धर्म का भी नाश हो जाता है। तब प्रसिद्ध राजवंश सब तरह से विनाश को प्राप्त हो जाते हैं और वे महाप्रलय पर्यन्त घोर नर्क में निश्चित रूप से निवास करते हैं ॥१५९-१६०॥

प्रजाकार्याणि

(३५)

शिल्पौषधिचिकित्साना-मनाथानां च नित्यशः ।
शरीरच्छेदनस्यापि ह्यालयानप्रविलोकयेत्॥१६१॥

वायोर्जलस्य संशुद्धिं पुरस्यापि विशोधनम् ।
विलोकयेन्महीपालः सर्वकल्याणहेतवे ॥१६२॥

पङ्ग्वंधविधवादीना–मशक्तानां स्वपोषणे ।
कुर्यात्प्रपोषणं भूपः धर्मदृष्ट्या निरंतरम् ॥१६३॥

संपूर्णराज्यभारं तु स्वयमेव न धारयेत् ।
न्यायसत्यानुरक्तेषु विभजेदेव भूमिपः ॥१६४॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि नित्य प्रति शिल्प, औषधि चिकित्सा, अनाथ, शरीरच्छेदन (शफाखाना–ऑपरेशन रूम) इन सबों के आलय (स्थानों) का निरीक्षण करता रहे। वायु जल की शुद्धि तथा नगर की स्वच्छता को संपूर्ण प्रजा के कल्याणार्थ देखता रहे । एवं पंगु (लंगड़े), अन्धे और विधवा स्त्री तथा अपने पोषण में अशक्त प्राणियों का निरंतर धर्म की दृष्टि से भलीभाँति पोषण करता रहे । सम्पूर्ण राज्य के भार को राजा स्वयं (अकेला) ही धारण न करे किन्तु न्याय और सत्य के प्रेमी मनुष्यों में उस राज्य भार को बांट दे ॥१६१-१६२-१६३-१६४॥

मानहानयः

(०३५)

प्रजाकार्याणि विनैव विना स्यादाशिषा तथा ।
तेजः प्रभावहानिश्च भूपतेः, राज्यहानयः ॥१६५॥

भाषार्थः—प्रजा कार्य तथा आशीर्वादों के विना, राजा के प्रभाव ,और तेज की हानि होती है । एवं समस्त राज्य की भी हानियां होती हैं ॥१६५॥

षट्त्रिंशल्लक्षणानि

(३६)

षट्त्रिंशल्लक्षणैर्युक्ताः राज्यार्हा क्षत्रियाः सदा ।
ते च राज्याभिषेकार्हाः राज्य प्राप्त्यधिकारिणः ॥१६६॥

भाषार्थः—राजाओं के जो छत्तीस लक्षण हैं उन लक्षणों से युक्त क्षत्रिय लोग ही राज्य करने के योग्य हैं तथा उन्हीं का राज्याभिषेक होना चाहिये और वेही राज्य प्राप्त करने के अधिकारी हैं ॥१६६॥

हीनदशा

(०३६)

षष्ट्त्रिंशल्लक्षणैर्हीनाः क्षत्रियाः ह्यधमांदशाम् ।
प्राप्नुवन्ति सदा लोके, विघ्नानि हानयस्तथा ॥१६७॥
निरर्थकत्वं चापल्यं स्तब्धता शोक एव वा ।
क्रोधात्याचारकलहाः नीचताचात्ममानिता ॥१६८॥
दम्भोदर्पोलोलुपत्वं सततमर्थदुष्टयः ।
दिवातिस्वापपारुष्ये चालस्यं मद्यसेवनं ॥१६९॥
तौर्यत्रिकं समाधिक्यात् व्यभिचारास्तथैव च ।
वृथाटनं कृतघ्नत्वं विश्वासघातएव च ॥१७०॥
क्रियायामतिहीनत्वं कुलध्वंसः सदूषणं ।
मृगयायां द्यूतमध्ये प्रवृत्ति हिंसनं तथा ॥१७१॥
अधर्मान्यायविरतिः वंशरीतिविवर्जनम् ।
अधैर्यं सुखवाञ्छा स्या त्पराधीनेऽपि सर्वदा ॥१७२॥

वाग्दण्डत्वं निर्दयित्वं कामेभोगेऽभिसंरतिः ।
अतिमानित्व मेवंवा दुर्मतिग्रहणन्तथा ॥१७३॥
अत्युग्रता च शैथिल्यं दुर्गुणाश्च इमे समे ।
आगच्छन्ति च तैरेव पारस्परिक विग्रहः ॥१७४॥

भावार्थः—छत्तीस लक्षणों से जो क्षत्रिय हीन हैं (जिनमें क्षत्रियों के लिये कहे हुए ३६ लक्षण नहीं हैं) वे संसार में सर्वदा अधम (नीच) दशा को प्राप्त करते हैं तथा उनमें विघ्न, हानि निरर्थकता, चपलता, (चंचलता) स्तब्धता (सुस्ती), शोक, क्रोध अत्याचार, कलह (लड़ाई), नीचता, अपने को वड़ा समझना (अभिमान), दंभ (ठगना), दर्प, लोलुपता (लोभ) सम्पत्ति के दूपण, दिन में अधिक सोना, कठोरता, आलस्य, मद्य पीना, तौर्यत्रिक (गाना, नाचना वजाना), अधिकता से व्यभिचार, व्यर्थभ्रमण करना, कृतघ्नता (किये हुये को नष्ट करना या न मानना), विश्वासघात धार्मिक क्रिया में अधिक हीनता, कुल को नष्ट करने का दूपण, मृगया (शिकार) द्यूत (जूआ) इनमें प्रवृत्ति होना, हिंसा अधर्म और अन्याय में प्रेम, वंश की रीति को छोड़ना, अधीरता, दूसरे के आधीन में होकर भी सुख की इच्छा करना, वाणी का दण्ड (जवान से बुरा कहना गाली आदि),निर्दयी होना काम भोगों में लगा रहना और उल्टी समज होना, अत्यन्त उग्रता (कठिनता) और शिथिलता यह सम्पूर्ण दुर्गुण आजाते हैं ,और आपस में विग्रह लड़ाई होती रहती है ॥१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४॥

स्वाधीनराज्यम्

(३७)

राज्यस्यात्रध्वजायाश्च रूपं चिन्हं पृथक्पृथक् ।
मुद्रामानश्चशपथः समाचारालयास्तथा ॥१७५॥

शुल्कालयाश्चसततं नियमेनभवन्तु हि ।
वाणिज्यानां च द्रव्याणां खाद्यानां प्रनिरीक्षणम् ॥१७६॥

मानाना मौषधीनां च प्रतिमासे परीक्षणम् ।
यत्र संजायते सम्यक् स्वाधीनं राज्यमुच्यते ॥१७७॥

भावार्थः—अपने राज्य की ध्वजा का रूप और चिह्न पृथक् २ होने चाहियें तथा मुद्रा (सिक्का) मान (तोल) शपथ, समाचारालयं (किसी स्थान से समाचार आने कि जगह) शुल्कालय (चुंगीघर) ये सर्वदा उसी राज्य के नियम से हों । वाणिज्य (व्यापार) के पदार्थ (वस्तु) और खाद्यद्रव्यों का देखना तथा मान (तोल) और औषधियों का प्रत्येक मास में जहां पर निरीक्षण किया जाय । उसको भली भाति स्वाधीन राज्य जानना चाहिये ॥१७५-१७६-१७७॥

पराधीनराज्यम्

(०३७)

स्वाधीनराज्य चिन्हानि न संतुतत्प्रजायते ।
राज्यं परेषामाधीनं—मन्यराज्यविमिश्रितम् ॥१७८॥

वाणिज्यादीनि कर्याणि न पश्येद्भूपतिस्तदा ।
राज्ये संजायते हानिः तस्मादेतद्विचार्यताम् ॥१७९॥

भावार्थः—उक्त स्वाधीन राज्य के चिन्ह (लक्षण) जिस राज्य में नहीं है वह राज्य दूसरों के आधीन है तथा उसे अन्य राज्यों से मिश्रित समझना चाहिये । जब राजा वाणिज्य (व्यापार) आदिकों के कार्य को नहीं देखता है तो राज्य के अन्दर हानि होती है । इसलिये राजा इस बात का विचार करे ॥१७८-१७९॥

मुद्राशाला

(३८)

माण्डलेशमहीपेभ्यः पर्यंतचक्रवर्तिनः ।
मुद्राशालाः पृथक् संतु तस्यामेव तु सर्वदा ॥१८०॥
ताम्ररौप्यसुवर्णानां मुद्रा स्युः सममानिकाः ।
प्रजाहिताय सौख्येन व्यवहारचलनाय च ॥१८१॥
शासकस्य नामरूपे समयो राज्यनाम च ।
मुद्राया एक पार्श्वे स्युः परपार्श्वे ध्वजा भवेत् ॥१८२॥
शतधान्यैस्तु मुद्रायाः मानं स्यान्निश्चितं सदा ।
अर्द्धांगुष्टविस्तीर्णा पादार्द्धपूर्णभागिका ॥१८३॥

भाषार्थः—माण्डलिक राजाओं से लेकर चक्रवर्ती राजा तक अपने२ राज्य में मुद्राशाला (टंकशाल) अलग२ होनी चाहिये उस में सर्वदा तांवा चांदी और सोने की मुद्रा (सिक्का) प्रजा के हितार्थ तथा सुख पूर्वक व्यवहार चलने के लिये समान परिणाम वाली होनी चाहिये । याने मुद्राओंका तोल और भाव सबदेशों में एक ही होना चाहिये । मुद्रा (सिक्का) के एक तरफ राजा का नाम तथा उसका रूप तथा राजधानी का नाम और समय (संवत्) होना चाहिये और दूसरी तरफ उस राज्य की ध्वजा का चिह्न होना चाहिये । मुद्रा का मान (तोल) सौधान्य (चावल) से होना चाहिये तथा आधे अगूठे के सामन विस्तीर्ण एवं पाव, आधी और पूरी इन भेदोसे तीन प्रकार की होनी चाहिये ॥१८०-८१-१८२ १८३॥

अशांतिः

(०३८)

मुद्राशालाव्यभावेन सौकर्यं न हि जायते ।
अशांतिर्हानयश्चापि प्रजानां स्वस्य भूपतेः ॥१८४॥

भावार्थः—इस प्रकार मुद्राशाला के न होने से राज्य के व्यवहारमें सुगमता नहीं होती तथा प्रजा और राजा की अशांति तथा हानियें होती हैं ॥१८४॥

बालराज्यप्रबन्धः

(३९)

बालराज्यप्रबन्ध न्तु कारयेदुच्चभूपतिः ।
तद्राज्यवर्तिभिर्योग्यैः क्षत्रियै बांधवैस्तथा ॥१८५॥

यावन्नो बालको राजा योग्यतां प्राप्नुयात्स्वयम् ।
तावद्राज्यं समाधीन-मेतेषामेव संभवेत् ॥१८६॥

भावार्थः—बालक राजाके राज्य का प्रबन्ध उस के राज्य में रहने वाले योग्य क्षत्रिय और उसके बान्धवों से ऊपर का राजा करावे। जब तक स्वयम् बालक राजा योग्यता प्राप्त न करलेवे तबतक इनहीं लोगों के आधीन राज्य होना चाहिये ॥१८५-१८६॥

हरणम्

(०३९)

बालराज्यबंप्रधं ये कुर्वंति दूरवर्तिनः ।
हरन्ति राज्यं सर्वस्वं न च ते पार्श्ववर्तिनः ॥१८७॥

भावार्थः—बालक राजा के राज्य का प्रबन्ध यदि दूर रहने वाले राजा करते हैं तो उसका सब राज्य हरण करलेते हैं किंतु वे पास मेंरहने वाले ऐसा नहीं कर सकते ॥१८७॥

स्थितिपरम्परा

(४०)

शिक्षापयेद्बालनृप मधिकारे ह्यनिरंतरम् ।
स्वजातिवृद्धबंधूनां न्यायं धर्मं प्रथामपि ॥१८८॥

मर्यादाश्च च तथानित्य–मभ्यासमस्त्रशस्त्रयोः ।
विधर्मिणां विजातीना मधिकारे न कर्हिचित् ॥१८९॥

भाषार्थः—बालक राजा को अपनी जाति के वृद्ध मनुष्य, बान्धवा और सम्बन्धीयों के अधिकार में न्याय, धर्म, रिति मर्यादा (नियम) और अस्त्र शास्त्रों का अभ्यास यह सब बातें सिखायी जावें विजाति और विधार्मियों के अधिकार में नहीं ॥१८८-१८९॥

स्थितिनाशः

(०४०)

विधर्मिणां विजातीनां बालो भूपो निरीक्षणे ।
स्यात्तदा तस्य राज्यस्य स्थिति नंश्यति संततम् ॥१९०॥

तस्योपरिष्टराज्याना–माश्रितानां महीभुजाम् ।
स्थितिः नाशं प्रयात्येव बालभूमिपतेरिव ॥१९१॥

भाषार्थः—बालक राजा यदि विधर्मी अर्थात् धर्म से पतित और विजाति अर्थात् विकृत् जाति वा पतित जाति के निरीक्षण (देख भाल) में रहे तो उस के ऊपर के और आधीन राज्यों की स्थिति नष्ट हो जाती है।

अर्थात् नाबालगी की अवस्था में विधर्मी और विजातियों के आश्रय में रह कर उनकी जाति और धर्म के प्रभाव के अनुसार

शिक्षा प्राप्त करने के कारण राजा के भाव बदल जाते हैं और बालिग होने पर उन्हीं भावों के अनुसार जब वह प्रजा पर शासन करता है तब उससे प्रजा की श्रद्धा घट जाती है तथा उसके व्यवहार (बर्ताव) में परिवर्तन होने के कारण ऐसे राजा से प्रजा विरुद्ध हो जाती है अत एव उसका राज्य भ्रष्ट होना संभव है ॥१९०-१९१॥

कार्यम्

(४१)

परप्रजान्यभूपाभ्यां सार्द्धं कार्याणि भूपतिः ।
न्यायेन प्रीत्या धर्मेण प्रकुर्या न्मङ्गलेप्सया ॥१९२॥

न्यायावलंबिकार्येषु परराष्ट्रेऽपि सर्वशः ।
स्वप्रजाणान्तु साहाय्यं प्रकुर्याद्धार्मिको नृपः ॥१९३॥

भापार्थः—दूसरों की प्रजा तथा अन्य राजाओं के साथ राजा न्याय, प्रीति और धर्म पूर्वक कार्यों को हित की इच्छा से करे, जिन कार्यों के करने में न्याय है अर्थात् न्याययुक्त कार्यों के करने पर अपनी प्रजा की दूसरे राज्यों में धार्मिक राजा सहायता करे ॥१९२-१९३॥

अकार्यम्

(०४१)

अन्यभूपतिभिः सार्द्धं न्यायधर्मावलम्बनम् ।
न स्यात्तदा तु संसारे निन्दा हानिश्चजायते ॥१९४॥

भापार्थः—अन्य राजाओं के साथ यदि न्याय और धर्म का अवलम्बन न हो अर्थात् न्याय तथा धार्मिक आचरण न हो तो उस राजा की संसार में हानि तथा निन्दा होती है ॥१९४॥

सत्कारः

(४२)

बुभुक्षितजनान्भूपः सत्कार्येषु नियोजयेत् ।
एवं कृतेन राज्यस्य कल्याणमुन्नतिस्तथा ॥१९५॥

वीराणां पण्डितानाञ्च योगिना मथ भूपतिः ।
गुणिनां परहितेप्सूनां सत्कारं समुपाचरेत् ॥१९६॥

यथा साध्यप्रयुक्त्यैव प्रजोत्साहं प्रवर्द्धयेत् ।
येन प्रजाः सुखैः पूर्णाः निवसन्तु स्वमण्डले ॥१९७॥

भाषार्थः—भूखे मनुष्यों को राजा अच्छे कार्य में लगावे क्योंकि ऐसा करने से राज्य का कल्याण तथा उन्नति होती है। वीर, पंडित, योगी, गुणी और परमार्थ में लगे हुए मनुष्यों का राजा सत्कार करे। यथा साध्ययुक्ति से प्रजा के उत्साह को बढ़ावे जिससे प्रजा सुखों से परिपूर्ण होकर अपने राज्य मण्डल में निवास करे ॥ १९५-१९६-१९७॥

असत्कारः

(०४२)

सत्कारेण विना राज्ये जायन्ते ते बुभुक्षिताः ।
पापकर्मविलग्नाश्च संतत माततायिनः ॥१९८॥

वीराणां पण्डितादीनां सत्कारेण विना क्षितौ ।
हीनां दशामाप्नुवंति निन्दिता अपि भूभृतः ॥१९९॥

भाषार्थः—सत्कार के विना भूखे लोग निरंतर पाप कर्म में लग जाते हैं तथा उपद्रवी हो जाते हैं। वीर और पंडित आदिकों के सत्कार के विना संसार में राजा लोग हीन दशा तथा निन्दा को प्राप्त होते हैं ॥१९८-१९९॥

एकता

(४३)

विचारासंगसह्याश्च शक्तीः सम्प्राप्य सर्वथा ।
न्याय रक्षणधर्मेभ्यः दानेभ्यश्च निरंतरम् ॥२००॥
जनौघात्मीयकरणात् जायते राज्यसंस्थितिः ।
यद्येकस्यतुराज्यस्य प्रजाभिरन्य भूभुजः ॥२०१॥
अन्यायेनाभिवर्तन्ते तदा संमिलिता नृपाः ।
संयुक्तबलमाश्रित्य शिक्षयन्त्वेव सर्वदा ॥२०२॥

भाषार्थः—विचार शक्ति, असंगशक्ति और सह्यशक्ति को प्राप्त करके सर्वदा न्याय रक्षा, धर्म और दान से मनुष्यों के समूह को अपना बना लेने से राज्य की स्थिति होती है। यदि एक किसी राज्य की प्रजा को दूसरा राजा अन्याय पूर्वक बर्ताव करे तब सम्पूर्ण राजा मिलकर संयुक्त शक्ति को प्राप्त करके सर्वदा उस राजा को शिक्षा करें ॥२००-२०१-२०२॥

अनैक्यम्

(०४३)

विनैक्यं तु पृथक् भूत्वा नश्यति राजसंस्थितिः ।
अन्यायेनाभिसंयुक्तं बलं च परिहीयते ॥२०३॥
हीनतामति दुःखश्च प्राप्नुवंति समे जनाः ।
तस्मादनैक्यमूलानि महीनाथो निवारयेत् ॥२०४॥

भाषार्थः—एकता के विना पृथक् २ होकर के राज्य की स्थिति नष्ट हो जाती है । अन्याय से युक्त बल (सेना) भी हीन दशा को प्राप्त हो जाता है। अतएव सम्पूर्ण मनुष्य भी हीनता और अत्यन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं इसलिये अनैक्य (पृथक्ता) के कारणों का राजा निवारण करता रहे ॥२०३-२०४॥

उपकारः

(४४)

अत्युपकारो यदि भवेत् न्यूनदोषंन चिन्तयेत् ।
उपेक्षां शुद्धभावेन कुर्यात्तत्र महीपतिः ॥२०५॥

न कस्यापि श्रमफलं निहन्याज्जगनन्दनः ।
औदार्यभावमेत्यैव प्रदद्याद्दापयेदपि ॥२०६॥

भाषार्थः—अत्यन्त उपकार होने पर कमदोष को राजा न देखे वहां पर राजा को योग्य है कि शुद्ध भाव से उस वात की उपेक्षा (त्याग) करदे । किसी के परिश्रम के फल को राजा नष्ट न करे किन्तु उदारता का भाव प्राप्त करके प्रतिफल को दे तथा दूसरों से दिलावे ॥२०५-२०६॥

अपकारः

(०४४)

प्रकृत्याः नियमेनैव मनुष्याद् भ्रमसम्भवः ।
उपकारम पश्यंतोऽपकारमेव केवलम् ॥२०७॥

क्षमान्नौदार्यभावेन कुर्वंति ये महाजनाः ।
निन्दां हानिश्च सम्प्राप्य विनश्यंति परस्परम् ॥२०८॥

भाषार्थः—प्रकृति (स्वभाव) के नियम से ही मनुष्य से भ्रम (भूल) होना सम्भव है । अतएव उपकार को न देख कर जो केवल अपकार को ही देखते हैं तथा जो वड़े आदमी उदारता के भाव से क्षमा नहीं करते वे निन्दा और हानि को प्राप्त कर परस्पर नष्ट हो जाते हैं ॥२०७-२०८॥

सुमतिः

(४५)

तपस्तेजो धृतिं बुद्धिं वृद्धिं वा दीर्घजीवितम् ।
प्राप्तुमाराधनं नित्यं पुण्यं धर्मन्तथाऽऽचरेत् ॥२०९॥

भाषार्थः—तप, तेज, धैर्य, अच्छी बुद्धि, वृद्धि और दीर्घायु प्राप्त करने के लिये नित्य प्रति ईश्वर की आराधना पूण्य और धर्म का आचारण करे ॥२०९॥

दुर्मतिः

(०४५)

महीलोके महीपालो विनश्यति मतिं विना ।
तस्मान्मतिं साधुरीत्या प्राप्नुयाद्धितवाञ्छया ॥२१०॥

भाषार्थः—बुद्धि के विना संसार में राजा विनाश को प्राप्त हो जाता है । अतः भलीभांति हित की इच्छा से बुद्धि प्राप्त करे ॥२१०॥

सौख्यम्

(४६)

द्यूतक्रियांच मृगयां विश्वासघातमेव वा ।
कृतघ्नत्वमतिदिवाः स्वप्नञ्चैव समाचरेत् ॥२११॥
नवातिपालयेद्भूपो दुर्वाक्यमर्थदूषणम् ।
पशून् रमणसंलग्नान् बालान् वा योषितो न च ॥२१२॥
निहन्याच्चाण्डकोषौ च पीडयेन्न कदाचन ।
न वहेदधिकम्भारं लोकमान्यस्तु भूपतिः ॥२१३॥

सुखेन कार्यसंसिद्धिं विदध्यान्नाति ताडयेत् ।
एतेन सौख्यवृद्धिः स्यात्-कुशलं लभते नृपः ॥२१४॥

भावार्थः—राजा द्यूत क्रिया (जूआ) मृगया (शिकार), मद्यपान, स्त्रीसम्भोग अत्यन्त दिन में सोना इन सब बातों का आचरण न करे । कुवाक्य (बुरे वचन) और धन के दूषण (शराब जुआ वेश्यागमन, देने योग्य को न देना और न देने योग्य को देना) और पालन न करे । रमण में लगे हुए (भोग करते हुए) बालक और स्त्रीजाति के पशुओं को न मारे, तथा उनके अण्डकोषों को न तो पीड़न करे न निकाले और न अधिक भार (बोझा) वहन करे किन्तु सुखपूर्वक अपने कार्य की सिद्धि करे तथा अधिक ताड़ना (मारना) भी न करे । इससे सुख की वृद्धि होती है और राजा भी उन्नति और साफल्य को प्राप्त होता है ॥२११-२१२-२१३-२१४॥

दुःखम्

(७४६)

याभ्यां भावप्रकाराभ्यां सुखंदुःखं ददाति यान् ।
ते तथैव तु तं सम्यक् फलं ददति लोकयोः ॥२१५॥

स्त्रीभ्यः परिजनेभ्यश्च सन्ततिभ्योऽविलम्बितः ।
वियोगो जायते तस्य हानिश्चापि विनाशनम् ॥२१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य जिस भाव से तथा जिस प्रकार से जिन प्राणियों को सुख अथवा दुःख देता है तो वे भी इस लोक तथा परलोक में (पर जन्म में) भलीभांति उसका फल देते हैं । दुःख देने से स्त्री और बान्धवों से तथा संतान से शीघ्र ही वियोग हो जाता है और उस दुःख देने वाले की हानि तथा विनाश हो जाता है ॥२१५-२१६॥

प्रवृत्तिः

(४७)

प्रीतिःस्यान्मातृभाषायां स्वदेशभोजने तथा ।
भवेताम्निजदेशीये विवाहवेषधारणे ॥२१७॥

स्वदेशे पौरूषे वापि प्रीतिस्यान्नृपतेः यदा ।
तदा प्रवृत्तिर्जायेत प्राचीनानुभवे सदा ॥२१८॥

एतेनाखिलमूलानि राज्यरूपस्य शाखिनः ।
वृद्धिंवा दृढतां यान्ति भूपतिः लभते सुखम् ॥२१९॥

विज्ञानं विद्यते यस्मै प्राचीनस्योपयोगिनः ।
सन्ततं निवसत्येव भूतिस्तस्य निकेतने ॥२२०॥

भाषार्थः—अपने देश की भाषा में तथा अपने देश के ही भोजन में प्रीति होनी चाहिये । तथा विवाह और पहनाव भी अपने देश के ही होने चाहिये और इसी तरह पुरुषार्थ और देश भूमि से भी प्रीति हो तब प्राचीन अनुभव में प्रवृत्ति होती है ऐसा करने से राज्यरूप वृक्ष की मूल (जड़) वृद्धि तथा दृढ़ता को प्राप्त होते हैं और राजा सुख का भोग करता है । जिसको प्राचीन उपयोगी (काम में आने वाली) वस्तु का ज्ञान होता है और प्राचीन अनुभव होता है उस राजा के घर में राज्य लक्ष्मी का निवास रहता है ॥२१७-२१८-२१९-२२०॥

निवृत्तिः

(०४७)

विना प्रवृत्तिं भूपस्य जायन्ते मानहानयः ।
मूलानि प्रविनश्यन्ति राज्यरूपस्य शाखिनः ॥२२१॥

भाषार्थः—प्रवृत्ति के विना राजा के मान की हानियां होतीं हैं तथा राज्य रूप वृक्ष के मूल (जड़) नष्ट हो जाते हैं ॥२२१॥

निश्चलम्

(४८)

स्वातन्त्र्येण प्रजासार्द्धं हितं सम्मेलनं भवेत् ।
प्रजाभूपालयोरैक्यात् राज्यदार्ढ्यं सुजायते ॥२२२॥

प्रजाप्रियस्तु भूपालो भुनक्ति मेदिनीं चिरम् ।
नान्यः कश्चिन्महीपालः तं विचालयितुं क्षमः ॥२२३॥

भाषार्थः—स्वतन्त्रता पूर्वक प्रजा के साथ मिलना कल्याणकारी होता है। प्रजा और राजा की पारस्परिक हित,प्रीति एकता होने से राज्य की दृढ़ता होती है। प्रजाप्रिय राजा पृथिवी का चिरकाल तक भोग करता है तथा दूसरा कोई राजा उसको चलायमान करने में समर्थ नहीं होता ॥२२२-२२३॥

चलायमानम्

(०४८)

प्रजासम्मेलनाभावे विनावृद्धाऽभिसंगतिम् ।
सद्विद्यांच विना वापि लब्ध्वाज्ञानं क्षितीश्वरः ॥२२४॥

अधर्मेण प्रजानां च धनं हरति मूढधिः ।
निस्सन्तानः स सञ्जातः प्रविनाशाय गच्छति ॥२२५॥

असंतुष्टाः प्रजा नैव विनोदमुपयान्त्यपि ।
प्रजा हार्दिकदुःखानि यः शृणोति न भूपतिः ॥२२६॥

तास्तदा त्वन्यराजान-मभिवांछन्ति सर्वदा ।
परिणामे तु भूपस्य विनाश एव जायते ॥२२७॥

भावार्थः—प्रजा के साथ सम्मेलन न करने से तथा वृद्ध मनुष्यों की संगति के अभाव से तथा उत्तम विद्या के विना अज्ञान रहकर अधर्म के साथ प्रजा के धन को ग्रहण करता है वह नृपति शनैः २ अथवा शीघ्र विनाश को प्राप्त हो जाता है सम्मेलन विना राजा से असन्तुष्ट (अप्रसन्न) हुई प्रजा हर्ष प्राप्त नहीं कर सकती। अतः जो राजा प्रजा के हार्दिक दुःखों को नहीं सुनता तब वह उस समय अन्य राजा के राज्य की इच्छा करती है अर्थात् अधर्म से धन हरण करने वाले राजा को प्रजा नहीं चाहती अतएव धार्मिक राजा के राज्य की इच्छा करती है तब इसके परिणाम में अन्यायी राजा का निःसन्देह विनाश ही होता है ॥२२४-२२५-२२६-२२७॥

बलवान्भावः

(४९)

कर्मभिः संचितैरेव मध्योच्चनीचयोनिषु ।
जीवानां जायते जन्म तैः सौख्यं दुःखमेव वा ॥२२८॥
सद्विद्योपदेशाद्याः जायन्ते बलवत्तराः ।
एतैः शुभाशुभं कर्म कर्तुं स्यान्मानवः क्षमः ॥२२९॥

भावार्थः—संचित कर्मों ही के अनुसार नीच (पतित) उच्च (ऊंची) मध्य (विचली) योनी में मनुष्यों का जन्म होता है तथा उन कर्मों के कनुसार ही सुख दुःख तथा आयुस् की उत्पत्ति होती है किन्तु उन पूर्व संचित कर्मों से सत्असत् संगति विद्याओं का उपदेश ये विशेप बलवान् होते हैं इनसे मनुष्य शुभ तथा अशुभ कर्म कर सकता है। अर्थात् सत्असत् संगति और विद्योपदेश पूर्व कर्मों से विशेप बलवान् होते हैं इन्हीं के अनुसार मनुष्य सत्असत् मार्ग पर चल सकता है ॥२२८-२२९॥

दौर्बल्यम्

(०४९)

भूपतीनामप्रबन्धैः संसारे दुःखसम्भवः ।
तैरल्पायुर्हीनता च जायन्ते व्याधयस्तथा ॥२३०॥

दुर्भिक्षाणां समुत्पत्तिः युद्धादीना न्तु सम्भवः ।
अकालमृत्यु र्भूकंपो ह्यकस्माद्धानयस्तथा ॥२३१॥

ईश्वरीयप्रकोपाश्च प्रकृते रपिविक्रियाः ।
भवन्ति सर्वसंसारे सर्वथैवतु हानयः ॥२३२॥

भावार्थः—राजाओं के अप्रबन्धों से दुखों की उत्पत्ति होती है उन्हीं अप्रबन्धों से कम अवस्था, हीनता और रोग होते हैं तथा वियोग, अनेक प्रकार के दुःख दुर्भिक्ष (अकाल), युद्धादि का होना, अकाल मृत्यु (कूप, तडागादि में गिर कर मर जाने से होनें वाली मृत्यु) भूकम्प (भूचाल) और सहसा हानियें और ईश्वरीय प्रकोप (अति वृष्टि आदि) तथा स्वभाव का विगड़ जाना, ये सब हानियें संसार में होती है ॥२३०-२३१-२३२॥

सार्थकता

(५०)

पृथक्धर्माश्चराज्यानि मतानि सम्प्रदास्तथा ।
स्वभावाश्च स्वरूपाणि मर्यादा भाषणं पृथक् ॥२३३॥

रीतयो निर्मिताः सर्वाः ताश्चसंमिश्रणाय नो ।
समर्थो जायते तस्मात् हस्ताक्षेपो न युज्यते ॥२३४॥

संसारहितकार्याणि न रोद्धव्यानि सर्वथा।
कुपथे तु जनान्नैव कदाचिदपि चालयेत् ॥२३५॥

भाषार्थः—धर्म, राज्य, मत, (सम्प्रदाय) स्वभाव, स्वरूप, मर्यादा, (रिवाज) और भाषण (बोलचाल) तथा रीति (लोक-प्रथा) परमात्मा ने सब पृथक् २ बनाई हैं इसलिये इनको मिलाने के लिये कोई मनुष्य समर्थ नहीं हो सकता। अतएव इनके मिलाने में हस्ताक्षेप करना अर्थात् इनको मिलाने का प्रयत्न करना सर्वथा अयोग्य है परंतु संसार के हित करने वाले कामों को न रोकने चाहिये तथा मनुष्यों को निंदित मार्ग पर राजा कभी न चलावे अर्थात् अपने बल उपाय से जनसमूह को विपरीत मार्ग पर न चलावे ॥२३३-२३४-२३५॥

निरर्थकता

(७'५०)

सार्थकताभिमध्ये तु हस्ताक्षेपो निरर्थकः।
सामर्थ्याभिलोपं सः करोति निश्चितं जनः ॥२३६॥
स्वबलेन महाराजः विपरीताः प्रजा यदा।
सञ्चालयति च तदा जायन्ते ताः पराङ्मुखाः ॥२३७॥
बलं प्राप्य तदान्येषां भूपतीनां च ताः प्रजाः।
विनाशयन्ति साम्राज्यं युद्धादिभिरुपद्रवैः ॥२३८॥

भाषार्थः—सार्थकता में अर्थात् प्रयोजन वाली बात में हस्ताक्षेप करना अर्थात् उसको रोकना निरर्थक है। यदि राजा ऐसा करता है तो वह अपनी शक्ति को नष्ट करता है। जो राजा अपने बल (सेनादि) से प्रजा को विपरीत (विरुद्ध) चलाता है तब वह प्रजा उस राजा से विमुख हो जाती है तथा वह प्रजा अन्य राजाओं का बल प्राप्त करके युद्ध आदि उपद्रवों से साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर देती है अर्थात् पृथक्पृथक् धर्म, मत, (सम्प्रदाय) राज्य, स्वरूप,

स्वभाव, भाषा (बोलीयां) रीति और मर्यादा में जो हस्ताक्षेप करता है तो वह अपनी सामर्थ को विगाड़ता है और वह जन समूह राजा के वल उपाय से विपरीत चलाया हुआ समय पाकर वल को प्राप्त करके उस राज्य को नष्ट कर देता है ॥२३६-२३७-२३८॥

विशालता

(५१)

सत्ये युगे च त्रेतायां राज्यं सचक्रवर्त्तिनाम् ।
जायते सर्वभूलोके सर्वथैदं तु निश्चितम् ॥२३९॥

नक्षत्राणि च तत्त्वानि जायन्ते निर्मलान्यपि ।
मनुष्याणां मनोबुद्धी जायेते परिशुद्धिते ॥२४०॥

स्थावराणां जङ्गमानां शरीराणि च सर्वथा ।
दीर्घाणि प्रविशालानि बलवन्ति भवन्त्यथ ॥२४१॥

दीर्घमायु र्लभन्ते ते मानवास्तत्र सम्भवाः ।
त्रेताहस्तिसमं पुसां वपुः सत्ययुगे भवेत् ॥२४२॥

तादृशश्च बलं तेषां शक्ति र्वा मानसी तथा ।
खर्जूरबीजतुल्यास्तु गोधूमाः शालयस्तथा ॥२४३॥

युगे युगे क्रमादस्मात् लघुतामाप्नुवंति हि ।
एतस्य तु परिज्ञानं कुर्वन्तु मानवाः समे ॥२४४॥

भाषार्थः—त्रेतायुग अथवा सत्ययुग में समस्त भूमण्डल पर चक्रवर्ती राजाओं का राज्य होता है यह वात सब प्रकार से निश्चित है। नक्षत्र तथा सम्पूर्ण तत्व निर्विकार निर्मल होते हैं। मनुष्यों का मन और बुद्धि विशुद्ध होते हैं। स्थावर और जंगम सम्पूर्ण

प्राणियों के शरीर दीर्घ, विशाल और बलवान् होते हैं। वे हमेशा संसार में दीर्घायु प्राप्त करते हैं। त्रेतायुग के हाथी के समान सत्य-युग में मनुष्यों का शरीर और उसी के समान उनका बल तथा मन की शक्ति भी प्रबल होती है। खजूर के बीज के समान गेहूं और चावल उस समय होते हैं इसी क्रम से प्रत्येक युग में लघुता (न्यूनता) प्राप्त करते जाते हैं इस बात का विशुद्धज्ञान सम्पूर्ण मनुष्यों को होना चाहिये ॥२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४॥

लघुता

(०५१)

द्वापरे वा कलियुगे नो राज्यं चक्रवर्त्तिनाम् ।
साम्राज्यावधिभूपानां राज्यं संमतिभिस्तथा ॥२४५॥

रसः सत्वं न तत्वेषु न जनेषु बलादयः ।
ग्रहणे ग्रहणे पुंसा-मायुर्याति विहीनताम् ॥२४६॥

भावार्थः—द्वापर वा कलियुग में चक्रवर्ती राजाओं का राज्य नहीं होता किन्तु साम्राज्य पर्यन्त राजाओं का तथा जनता की सम्मतियों से राज्य हुआ करता है। उस समय पांचों तत्वों में रस और सत्व अर्थात् उनके काम करने की शक्ति और मनुष्यों के बलादि कम होते हैं और प्रत्येक ग्रहण में मनुष्यों की आयु भी घटती जाती है ॥२४५-२४६॥

जयः

(५२)

वायु प्रवाहं प्रविधाय पृष्ठे
रिपौ तु सर्वाभिरहो दिशाभिः ।

जयेप्सुभिश्चाक्रमणं विधेयं
तदास्त्ववश्यंविजयोपलब्धिः ॥२४७॥

न्यायावधौ वा परिरक्षणे च
विचारशक्तिं त्वथ सह्यशक्तिम् ।

असंगशक्तिं प्रविधारयन्ति
नृपा श्च ये ते विजयं लभन्ते ॥२४८॥

राज्यं च कुर्वन्त इहान्यलोके
स्वर्गस्य सौख्यामृतमाप्नुवंति ।

रविप्रचण्डानलकांतियुक्ताः
समाक्रमन्ते क्षितिपाः त्रिलोकीम् ॥२४९॥

युद्धस्थगितसेनायाः साहाय्याय पृथक् भवेत् ।
सेना सुशिक्षिता चान्या युद्धविद्याविशारदा ॥२५०॥

भाषार्थः—रण में विजय प्राप्त करने की इच्छा करने वाला राजा वायु (पवन) के प्रवाह (गति) को पीठ पीछे करके सम्पूर्ण दिशाओं से शत्रु पर आक्रमण करे । तब उसे निश्चित रूप से विजय प्राप्त होती है । तथा जो राजा लोग न्याय, रक्षा, विचारशक्ति, सहनशक्ति और असंगशक्ति को धारण करते हैं वे संग्राम क्षेत्र में विजय प्राप्त करते हैं और वे ही इस लोक तथा परलोक में राज्य करते हैं एवं स्वर्ग के सुख रूप अमृत (सुधा) का उपभोग करते हैं एवं सूर्य के प्रचण्ड (प्रखर-तीव्र) अनल (अग्नि) के समान तेज को प्राप्त किये हुये राजा तीनों लोकों पर अपना आधिपत्य कर लेते हैं युद्ध (संग्राम) करने से थकी हुई सेना की सहायता के लिये युद्ध करने की विद्या में पण्डित तथा पूर्ण रूप से शिक्षा प्राप्त की हुई दूसरी सेना पृथक् तैयार रहनी चाहिये ॥२४७-२४८-२४९-२५०॥

पराजयः

(०५२)

वायुप्रवाहाभिमुखः समित्यां
　　जेतुं न शक्नोति पुरंदरोऽपि ।
भूनन्दनोऽस्मादनिलप्रवाहं
　　पृष्ठे विधायैव करोतु युद्धम् ॥२५१॥
असंगशक्तिं प्रविचारशक्तिं
　　विना तथैवं किलसह्यशक्तिम् ।
न्यायो न वा स्यात्परिरक्षण ञ्च
　　स्वर्गस्य सौख्यं विजयो न राज्यम् ॥२५२॥

भापार्थः—वायु के प्रवाह को सन्मुख करके संग्राम में विजय प्राप्त करने को देवताओं का राजा इन्द्र भी समर्थ नहीं है इस लिये वायु के प्रवाह को पीठ पीछे कर के ही राजा युद्ध करे। असंगशक्ति विचारशक्ति, और सहनशक्ति के विना न्याय, रक्षा, स्वर्ग का सुख विजय तथा राज्य ये सब प्राप्त नहीं होते ॥२५१-२५२॥

नैरोग्यम्

(५३)

प्रत्येकवर्षे शिशिरे पुरस्य
　　क्षेत्रेषु सर्वाणि रजांसि कुर्यात् ।
क्षेत्रस्य चाच्छानि रजांसि भूपः
　　निधापयेत्पत्तनभूमिभागे ॥२५३॥

वहेत्प्रवाहस्तु यतो जलस्य
प्ररोहयेत्तत्र लताश्च वृक्षान् ।
पुरप्रदेशे किल वाटिकाश्च
जलाशयान्संपरिशोधये च ॥२७४॥

यतो जलं समागच्छेत् कुल्पास्ताश्च विशोधयेत् ।
पुरस्य मुख्यभागेषु प्रपाः संस्थापयेत्तथा ॥२७५॥
पत्तनेषु यतोवायु-रागच्छेत्तत्र नो शवान् ।
विनिक्षिपेद्दहेद्वापि स्वास्थ्यरक्षणहेतवे ॥२७६॥
सजलेषु च देशेषु वारयेत् वारिणा सदा ।
दुर्गंधं च समं देशं रजोभिः परिशोधयेत् ॥२७७॥
यथा साध्यमुष्णदेशं शोधयेदपि सर्वदा ।
तदा प्राप्नोति नैरोग्यं सप्रजापृथिवीपतिः ॥२७८॥
पुरमध्ये वाहनैस्तु न गच्छेत् सजवैःक्वचित् ।
पाचयेद्भोजनञ्चाति लघु वा नैव कर्हिचित् ॥२७९॥

भाषार्थः—हरेक वर्ष में शिशिर (शीतकाल) ऋतु के आने पर नगर की सम्पूर्ण धूली को खेतों में डाल देनी चाहिये तथा खेतों की स्वच्छ धूली को राजा शहर की भूमि के विभागों में डलवादे तथा जिस ओर से जल का प्रवाह आता हो ऐसे स्थान पर लता और वृक्षों की स्थापना करे (लगादे) नगर के उचित स्थान पर वाटिका (बगीचे) जलाशयों (जल रहने के स्थान तालाव आदि) को बनावे और उनको समय २ पर शुद्ध कराता रहे जिस ओर से जल आता हो वहां की नालियों तथा स्थानों का संशोधन करावे। नगर के मुख्य २ भागों पर प्याऊ की स्थापना करे। नगरों में जिस ओर से वायु आता हो वहां पर शवों (मुर्दों) को नहीं डालना तथा न जलाना चाहिये। यह बात स्वास्थ्य के निमित्त है। जो देश जल से पूर्ण हैं ऐसे देशों

में दुर्गन्धि का निवारण सर्वदा जल से करना चाहिये । तथा सम देशों (जहां जल की न तो अधिकता है न न्यूनता है ऐसे देशों) में धूली से शुद्ध करना चाहिये तथा उष्ण देश में जिस प्रकार शुद्धि हो सके उसी तरह शुद्धि करे । ऐसा करने से प्रजा के साथ २ राजा सर्वदा नीरोगता को प्राप्त करता है । शहर में किसी स्थान पर भी वेग वाली सवारी से गमन न करे । खाद्य द्रव्यों को न अधिक न कम पकावे अर्थात् साधुपाक करे ॥२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९॥

नानारोगाः

(७३)

विना स्वस्ति तु साम्राज्ये नानारोगसमुद्भवः ।
पुरेषु वेगगत्यैव दुष्टवायु निषेवणम् ॥२६०॥
जायंते फौण्फुसा रोगाः श्वासकासक्षयादयः ।
तैश्चसंभाव्यते तत्र ह्यकालमरणं ध्रुवम् ॥२६१॥

भावार्थः—स्वस्ति (नीरोगता) के न होने से साम्राज्य में नाना रोगों की उत्पत्ति होती है और नगरों में वेग के साथ जाने से ही दुष्ट (खराब) वायु का सेवन होता है । अर्थात् दुर्गन्ध युक्त वायु श्वास के साथ प्रविष्ट हो जाता है तथा श्वास, कास, क्षयादि फुण्फुस (फेफड़ा सम्बन्धी) रोग होते हैं और उन रोगों से ही मनुष्यों की अकाल (अकस्मात्) मृत्यु हो जाती है ॥२६०-२६१॥

स्वदेशीयाः

(७४)

दूतामात्यबलाध्यक्षान् कोषाध्यक्षान् सुपाचकान् ।
याज्ञिकान् धार्मिकांश्चाऽपि स्वप्रजा सुनियोजयेत् ॥२६२॥

अतः सपृथिवीपालः जायतेपरिरक्षितः ।
राज्यं च दृढतां याति नान्यश्चालयितुं क्षमः ॥२६३॥

भाषार्थः—मंत्रि, सेनापति, कोषाध्यक्ष (खजांची), राजदूत पाचक (रसोइया) याज्ञिक (यज्ञ करने वाले), धर्मोपदेशक इन सबों को अपनी प्रजा में से नियुक्त करे। इसी से वह राजा सुरक्षित होता है तथा राज्य भी दृढ़ता को प्राप्त होता है एवं उसे चलायमान करने के लिये कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥२६२-२६३॥

विदेशीयाः

(५४)

स्वदेशीयान् विना भृत्यान् हितं राज्यस्य न स्थितिः ।
भेदे बले च हानिः स्यात् प्रजासु दुष्टभावना ॥२६४॥
कदाचिद्भूमिपालोऽपि राज्यात्संभ्रश्यतेऽपटुः ।
तस्मात्स्वदेशजान्भृत्या-नधिकारे नियोजयेत् ॥२६५॥

भाषार्थः—अपने देश के भृत्यों (मन्त्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष, राजदूत, रसोइया, यज्ञकर्त्ता और धर्मोपदेशक आदि) के विना राज्य का हित तथा स्थिति नहीं रहती तथा राज्य के भेद और बल में हानि हो जाती है एवं प्रजा में दुष्ट भाव उत्पन्न होते हैं और ऐसा होने से अकुशल राजा राज्य से च्युत (पतित) हो जाता है इस लिये अपने देश के रहने वाले भृत्यों को राजा स्वाधिकार में नियुक्त करे २६४-२६५॥

आयः

(५५)

प्रजाश्रमाप्तद्रव्यन्तु प्रजाहेतोः नियोजयेत् ।
रक्षायामथधर्मार्थं न्यायार्थमपि भूपतिः ॥२६६॥

वीराणां सुभटानां च पंडितानां निरन्तरम् ।
परोपकारलग्नानां गुणिनां योगिनां तथा ॥२६७॥
सत्कारार्थं सदा प्रेम्णा तद्धनं विनियोजयेत् ।
स्वपोषणासमर्थानां गवां संपालनाय च ॥२६८॥
तत्ररजत मुद्राणां प्रतिशतं महीपतिः ।
विभागमेवं कुर्वीत यन्मया कथ्यतेऽधुना ॥२६९॥
दद्यात्सेनाभिरक्षार्थं तासांतेषु विंशतिम् ।
उच्चभूपाय दातव्यं पंचमुद्रा च सर्वशः ॥२७०॥
शिल्पादिकप्रजा कार्ये दशमुद्रा नियोजयेत् ।
सद्विद्यानां प्रचारार्थं प्रबन्धार्थश्च सर्वथा ॥२७१॥
धार्मिकस्योपदेशार्थं मुद्रादश नियोजयेत् ।
आय संसाधनार्थश्च पञ्चमुद्रा प्रकल्पयेत् ॥२७२॥
चारादिभ्यश्च भूपालः पञ्चमुद्रा प्रदापयेत् ।
स्वपोषणाय कुर्वीत पञ्चमुद्रा क्षितीश्वरः ॥२७३॥
आवश्यकीयकार्यार्थं दशमुद्रानिधापयेत् ।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासे दशमुद्राः निरन्तरम् ॥२७४॥
तद्देशवासिवीरेभ्यः क्षत्रियेभ्यो नियोजयेत् ।
मर्यादायाश्च न्यायस्य प्रबन्धार्थंदशैव तु ॥२७५॥
पुण्ये धर्मे चैश्वरस्य भक्त्यां दश नियोजयेत् ।
एवंकृतेन भूपस्य प्रजानामपि मंगलम् ॥२७६॥

भाषार्थः—प्रजा के परिश्रम से प्राप्त किये हुए द्रव्य को राजा प्रजा के हित के लिये ही अर्थात् रक्षा, धर्म, न्याय में लगावे । राजा का धन और मान वीर, सुभट और पंडित परोपकारी, गुणी और

योगि इन सबों के प्रेम से सत्कार करने के लिये इस द्रव्य को लगाना चाहिये । तथा अपने पोषण (पालना) करने में असमर्थ हो एवं गौओं की पालना के निमित्त भी नियुक्त (लगाना) चाहिये । वहां पर चांदी की मुद्राओं के (रुपयो, सिक्कों) प्रति सैकड़े में से इस प्रकार से विभक्त करदे जिसका कि (बजट) वर्णन किया जाता है। उन रजत मुद्राओं कें प्रति सैकड़े में से वीस मुद्रा अपने राज्य की सेना की पालना के लिये । अपने से ऊपर के राजा को उस प्रति सैकड़े में से पांच मुद्रा देवे । शिल्पादि (कारीगरी) इन प्रजा के कार्यों में दश मुद्रा लगावे। उसी प्रकार अच्छी (विविध) विद्या के प्रचार के लिये तथा प्रबंधार्थ और धार्मिक उपदेशों के लिये दश मुद्रा देवे । आमदनी की स्थिति के लिये (पैदावार के उपाय के लिये) पांच मुद्रा लगावे। चारादिकों (दूतों) में पांच मुद्रा दे । तथा अपने पोषण के लिये पांच मुद्रा राजा नियत करे। आवश्यकीय कार्यों के लिये दश मुद्रा संचित करे (कोष में रखदे) अर्थात् रजत मुद्राओं के प्रति सैकड़ा में से दस २ मुद्रा संचित कर खज़ाने में रक्खे । दस अस्त्र शस्त्रों के अभ्यास के लिये उस देश में रहने वाले क्षत्रियों को दे और दस न्याय मर्यादा के प्रबन्ध के लिये और पुण्य धर्म ईश्वर की आराधना में दस मुद्रा लगावे ऐसा करने से राजा प्रजा दोनों का कल्याण होता है ॥२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६॥

व्ययः

(७५)

भूपतेरप्रबन्धेन नैव संवीक्षणेन वा ।
प्रजाश्रमात्तद्रव्यं ते दुर्जनाः कर्मचारिणः ॥२७७॥

सम्बन्धिनश्च मित्राणि तासामपहरन्ति हि ।
आसुरीञ्चमतिं प्राप्य दुष्कार्ये योजयन्तिनम् ॥२७८॥

एतादृशान्यायदग्धाः प्रजाः ददति दुर्वचः ।
येन नृपः स्वपुण्यानां विनाशेन विनश्यति ॥२७९॥

भावार्थः—राजा के अप्रबन्ध (प्रबन्ध ठीक न होने से) तथा भली भांति न देखने से ये दुर्जन राज्य कर्मचारी तथा उनके बांधव संबंधय मित्रादि प्रजा के श्रम से प्राप्त किये हुए द्रव्य को अपहरण कर लेते हैं और वे आसुरी बुद्धि को प्राप्त कर उस धन को खोटे कामों में लगा देते हैं । इस प्रकार के अन्याय से दग्ध (दुःखित) हुई दीन प्रजा उस राजा को दुराशीष देती है जिससे वह राजा अपने पुण्यों के विनष्ट हो जाने से स्वयं नष्ट हो जाता है और घोर नर्क में पड़ता है ॥२७७-२७८ २७९॥

मर्यादा

(५६)

नियमेन जनान्कार्ये भूपतिर्विनियोजयेत् ।
मर्यादायाः प्रबन्धस्य प्रजानामभिवांछया ॥२८०॥
परिवर्तनं तु कर्तव्यं नक्वचिन्न्यायधर्मयोः ।
भूपतिश्चान्यभूपानां विना सम्मतिसहायते ॥२८१॥
नैवाक्रमेदन्यराज्यं जायन्ते हानयोऽन्यथा ।
राजानो विमुखाःभूत्वा सराज्यं नाशयंति तम् ॥२८२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि नियम पूर्वक मनुष्यों को कार्य में नियुक्त करे । मर्यादा प्रबन्ध प्रजा की इच्छानुसार परिवर्तन करना चाहिये किन्तु न्याय और धर्म के कार्य को परिवर्तन नहीं करे, कोई भी एक राजा दूसरे राजाओं की विना सम्मति तथा विना सहायता के अन्य राजा पर आक्रमण नहीं करे क्योंकि इससे अनेक हानियां होती हैं और राजा लोग विमुख होकर के ऐसा करने वाले को राज्य के सहित नष्ट कर देते हैं ॥२८०-२८ २८२॥

परिवर्तनम्

(०५६)

स्वस्त्यादीनांच वैकल्प्यात् प्रबन्धानान्निरन्तरम् ।
मर्यादानां प्रकुर्वीत भूपतिः परिवर्तनम् ॥२८३॥

अन्यायिनं महीपालं सर्वे संमिश्रिता नृपाः ।
संयुक्तं बलमाश्रित्य शिक्षयन्तु हितेच्छया ॥२८४॥

अन्यथा तु समे भूपाः जायंते पापभागिनः ।
विनाशं चापगच्छंति लोकयोरुभयोरपि ॥२८५॥

भावार्थः—स्वस्ति आदि पूर्वोक्त नौ बातों की विकल्पता होने से राजा प्रबन्ध और मर्यादा का परिवर्तन करदे । अन्यायी राजा को सम्पूर्ण राजा आपस में मिलकर संयुक्त शक्ति को प्राप्त करके हित की इच्छा से शिक्षा दें । यदि ऐसा वे आचरण न करें तो सम्पूर्ण राजा पाप के भागी होते हैं तथा वे इस लोक तथा परलोक में विनाश को प्राप्त होते हैं ॥२८३-२८४-२८५॥

परिपालनम्

(५७)

सज्जनानांच रक्षार्थं दुष्टानां दण्डनाय च ।
प्रजाः संपालनार्थं वा भूपतीनां समुद्भवः ॥२८६॥

यदि ते समेऽप्यधर्मे मतिं कुर्वन्तिसन्ततम् ।
दुर्बुद्धिर्जायते तेषां प्रजानांचदुराशिषा ॥२८७॥

अतः परस्परं युद्ध्वा विनाशं यांति सर्वथा ।
तथाशिक्षाप्रबन्धस्य न्यूनतायां विधर्मिणः ॥२८८॥

अधर्मान्यायसंलग्नाः विधर्मनायका जनाः ।
धनाढ्यानां प्रजानांच भूपालेषु निरन्तरम् ॥२८९॥
न्यायधर्माभिशैथिल्यात् ते सर्वे च विधर्मिणः ।
स्वमतस्यानुसारेण प्राचीनानधिनायकान् ॥२९०॥
प्रजाः सर्व प्रकारेण हरन्ति नाशयन्त्यपि ।
अतस्तत्वं परिज्ञाय कुर्वन्तु परिपालनम् ॥२९१॥

भाषार्थः—सदा सज्जनों की रक्षा (पालना) और दुर्जनों को दण्ड देने के लिये तथा प्रजा का पालन करने के लिये संसार में राजाओं की उत्पत्ति होती है परन्तु यदि वे राजा लोग भी अधर्म में अनुरक्त हो जाते हैं तब प्रजा के दुराशीर्वादों से उनकी दुर्बुद्धि हो जाती है अतएव परस्पर युद्ध करके नाश को प्राप्त हो जाते हैं तथा शिक्षा प्रवन्ध की न्यूनता से विधर्मी (धर्म के तत्व से अज्ञ) अधर्म और अन्याय में प्रवृत्त होने वाले जो विधर्मियों के नायक वे धनाढ्य प्रजा के अधिपतियों में न्याय और धर्म में शिथिलता पाकर वे विधर्मी अपने मत के अनुसार प्राचीन राजा और प्रजा को सब प्रकार से हरण कर नाश कर देते हैं। इसलिये तत्व का ज्ञान करके परिपालन का आचरण करना चाहिये ॥२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१॥

दण्डः

(०५७)

स्वार्थे सुखे विमोहे च भोगे स्वाम्ये प्रलिप्सया ।
न्यायं धर्मं परित्यज्य कार्येषु निंदितेष्वपि ॥२९२॥
प्रवर्तंते महीनाथा स्तेनाशं प्रवियान्त्यपि ।
अतश्चैतेषु कार्येषु न लग्नः स्यात्कदाचन ॥२९३॥

भाषार्थः—स्वार्थ, सुख, भोग, मोह और ऐश्वर्य में अधिक लिप्त होने से न्याय और धर्म को छोड़ कर राजा निंदित कार्यों में

प्रवृत्त हो जाते हैं वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। अतः इन कार्यों में राजा कभी प्रवृत्त न हो ॥२९२-२९३॥

स्वाधिकारः

(५८)

कर्मणां फलसंप्राप्तौ पराधीनोस्ति मानवः ।
शुद्धोच्चैश्वरभावैश्च सह्यशक्त्या निरन्तरम् ॥२९४॥
विचारासंगशक्तिभ्या-मिष्टप्रेम्णा च जायते ।
उत्साहपौरूषाभ्यां च तथैक्येन शुभं फलम् ॥२९५॥
मनसस्तीव्रशक्त्यां वा श्रद्धायामपि सर्वथा ।
साहाय्यमीश्वरोहृष्टः करोत्येव न संशयः ॥२९६॥

भाषार्थः—कर्मों की फल की प्राप्ति में मनुष्य परतन्त्र है किंतु शुद्ध, उच्च, ईश्वर भाव, सहन शक्ति, विचार शक्ति, असंग शक्ति, इष्ट में प्रेम उत्साह, पौरुष और एकता रखने से शुभ फल की प्राप्ति हो सकती है अर्थात् मनुष्य के आधीन है। तथा मन की तीव्र शक्ति और पूर्णभक्ति अर्थात् समस्त शुभ कार्यों में भक्ति रखने से परमात्मा प्रसन्न होकर सहायता करता है ॥२९४-२९५-२९६॥

अस्वाधिकारः

(०५८)

अधिकारं विना पुंसां जायंते हानयः सदा ।
स्वाधिकार मतः सर्वे पालयंतु हितेच्छया ॥२९७॥

भाषार्थः—स्वाधिकार अर्थात् स्वाधिकारोक्त उपदेश के बिना मनुष्य की अनेक हानियां होती हैं अतएव मनुष्य अपने हित की इच्छा से स्वाधिकार का पालन करता रहे ॥२९७॥

शक्तिः

(५९)

सुशक्ते र्योग्यतायाश्च क्षत्रियाणां महीपतिः।
उपायं साधयेत्नित्यं राज्यकल्याणहेतवे ॥२९८॥
प्रक्षेन्न्यायधर्माभ्या-मन्यराज्ये प्रजाः नृपः।
प्रसंशामेति वृद्धिश्च शक्तिश्चमहतीं तथा ॥२९९॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि राज्य के कल्याण के लिये क्षत्रियों की शक्ति, एकता और योग्यता का उपाय करता रहे तथा न्याय और धर्म पूर्वक अन्य राज्य में भी अपनी प्रजा की रक्षा करे ऐसा करने से राजा प्रसंशा, वृद्धि और अतुलशक्ति को प्राप्त करता है ॥२९८-२९९॥

अशक्तिः

(०५९)

शक्तियोग्यतयोर्हानौ निंद्यते क्षितिनायकः।
कदाचिद्दैवयोगेन विनाशं चापि गच्छति ॥३००॥

भाषार्थः—शक्ति और योग्यता के विना राजा संसार में निंदित हो जाता है तथा उसकी शक्ति और प्रसंशा नष्ट हो जाती है ॥३००॥

स्वतन्त्रः

(६०)

शुभंवाप्यशुभं कर्म कर्तुंस्यान्मानवः क्षमः।
परन्तु फलसंप्राप्तौ पराधीनोऽभिजायते ॥३०१॥

शुद्धोच्चेश्वरभावैस्तु नियमं धर्ममेव वा ।
कुर्यात्स्वतन्त्रं भूपालः सौख्यसंप्राप्तिहेतवे ॥२०२॥

भाषार्थः—मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों के करने में स्वतन्त्र है किंतु फल की प्राप्ति में परतन्त्र है। अर्थात् मनुष्य शुभ और अशुभ इन दोनों प्रकार के कर्मों को कर सकता है तिस पर भी उनका फल भोगना मनुष्य के अधिकार में नहीं है। इसलिये अपने धर्म, रीति और मर्यादा को शुद्ध, उच्च और मालकी भाव से स्वतन्त्र रक्खे क्योंकि स्वतन्त्रता के प्रेमी सदा बड़पन को प्राप्त करते हैं और पृथ्वी पर्यन्त राज्य करते हैं ॥२०१-२०२॥

परतन्त्रः

(०६०)

शुद्धोच्चैश्वरभावैश्च मर्यादां धर्ममेव वा ।
स्वाधीनं न करोत्येव लघुतामेति नश्यति ॥२०३॥

भाषार्थः—जो मनुष्य अपने धर्म, रीति (मर्यादा) को शुद्ध, उच्च और ईश्वर भावों से अपने अधिकार में नहीं रखता वह लघुता (छोटापन) और नाश को प्राप्त करता है ॥२०३॥

दायादविभागः

(६१)

दायादप्रविभाग एष निखिलः संवर्ण्यतेऽत्राधुना
भूमेर्वाऽचलसम्पदश्च सततं पूर्वो विभागः स्मृतः ।
सम्पत्तेस्तुचलस्य चात्र कथितो भागो द्वितीयो मया
भूमेः संप्रविलोक्यदीयत इतः सद्योग्यतां मानवीम् ॥२०४॥

दायादेषु समुत्पन्ने विवादे, परिदीयते ।
षोडषवृद्धसम्मत्या भागो न्यूनोऽधिकस्तथा ॥३०५॥
एतेन सर्वभूपानां जायते राज्यसंस्थितिः ।
मङ्गलानि प्रवर्द्धन्ते लोकयोरूभयोरपि ॥३०६॥

भाषार्थः—कुटुम्ब में धन सम्पत्ति का विभाग किस रीति से होना चाहिये वह यहां पर वर्णन किया जाता है जिसमें एक भूमिका विभाग दूसरा चल संपत्ति (धनादि) का किंतु यहां पर मनुष्य की अच्छी योग्यता (छत्तीस लक्षण और बारह बल) को देखकर भूमि का विभाग देना चाहिये । बान्धवों में विवाद उत्पन्न हो जाने पर सोलह वृद्धों (जोकि क्षत्रिय हों) की सम्मति से न्यून अथवा अधिक जैसा उचित हो वैसा भाग दिला देना चाहिये ऐसा करने से राजा की स्थिति तथा मंगल रहता है ॥३०४-३०५-३०६॥

अयोग्यविभागः

(०६१)

न योग्यतामीक्ष्य विधीयते वै
भागः पृथिव्यास्तु तदा कथञ्चित् ।
न जायते क्षात्रकुलप्रवृद्धिः
स्थितिर्नृपाणां प्रविनाशमेति ॥३०७॥

क्रूरकर्माभिलग्नेभ्योऽप्यधर्मपालकाय च ।
प्रजारक्षाऽसमर्थाय तथा न्यायरताय वा ॥३०८॥

दुर्व्यसनेषुलग्नेभ्यः क्षत्रियेभ्यः कथंचन ।
राजविद्यापण्डितानां क्षत्रियाणां निरन्तरम् ॥३०९॥

भूविभागापहर्तृभ्योऽप्यदातृभ्यो तु कर्हिचित् ।
न दीयते भूविभागो भूपैरित्यवधार्यताम् ॥३१०॥

भाषार्थः—यदि योग्यता के अनुसार भूमिका आधिपत्य (मालकी) नहीं दिया जाय तब क्षत्रिय राजाओं की वृद्धि नहीं होती तथा उनकी स्थिति भी विनष्ट हो जाती है। इसलिये खोटे काम में लगे हुए, अधर्म का पालन करने वाले, प्रजा की रक्षा में असमर्थ अन्याय में लगे हुए क्षत्रिय तथा राजविद्या के पंडित (जानने वाले) क्षत्रियों की भूमि को हरने वाले तथा ऐसों को न देने वालों को भूमि का विभाग नहीं देना चाहिये ॥३०७-३०८-३०९-३१०॥

सभा

(६२)

अपारसंयुक्तबलाप्तिहेतोः
प्रत्येकवर्षे प्रभवेत् द्विवारम् ।
ऋतौ शुभे वा परिशुद्धभूमौ
सत्क्षत्रियाणां तु सभा मनोज्ञा ॥३११॥

श्रीराजविद्या नृपकामधेनुः
भूमेस्तु सच्छासनशक्तिरेव ।
अस्याश्चसम्यक् प्रविचारणेन
भूपात्स्वदेशोन्नतिरेवराज्यम् ॥३१२॥

प्रत्येकजातिपुरुषः जात्युन्नतिसमीहया ।
स्थापयंतु सभाःसम्यक् चालनाय च सुप्रथाः ॥३१३॥

याश्च स्युः कुप्रथास्तत्र ताः सभ्याः वारयंतु ते ।
राज्यादेषोऽधिकारः स्यात् वाधा वा न भवेत्क्वचित् ॥३१४॥

भाषार्थः—अनन्त (अपार) संयुक्त, (मिले हुए) वल (शक्ति) को प्राप्त करने के लिये क्षत्रियों की प्रत्येक वर्ष में अच्छी ऋतु में और शुद्ध भूमि में मनोहर रीति से दो वार सभा होनी

चाहिये । श्री राजविद्या रूप राजाओं की काम धेनु तथा भूमि का भलीभांति शासन कराने का एक प्रकार का बल है। इसका विचार करने से अपने देश की उन्नति होती है इसी से राज्य है। प्रत्येक जाति के मनुष्य अपनी जाति की उन्नति की इच्छा से सुरीतियों को चलाने के लिये सभाएँ स्थापित करें। उनमें जो कुप्रथाएँ (कुरीतियां) होवें उनको वे सभ्य लोग हटा दें इस बात का राज्य से अधिकार होना चाहिये तथा कोई प्रकार का हस्ताक्षेप नहीं होना चाहिये ॥३११-३१२-३१३-३१४॥

असम्मतिः

(०६२)

सुमतिन्नविना महीपतिः सुबलं युक्तमवैनिभूतले ।
स्थिरतामुपयातियोग्यतां शुभविधान्नविना कथंचन ३१५

भाषार्थः—सद्विद्या (अच्छी विद्या) और सदुपदेश एवं सुमति के विना राजा बल, स्थिरता और योग्यता को प्राप्त नहीं करता ॥३१५॥

श्रीः

(६३)

इष्टेन पुरुषार्थेन वरेणाऽऽहिंसयाऽऽशिषा ।
सामिप्याथ विचारेण कर्त्रा स्याच्छुद्धसंततिः ॥३१६॥
विचाराधिक्यसंयुक्तो मनुष्यो निर्मितःक्षितौ ।
सर्वभूतोपकारार्थं भावनास्यादतः सदा ॥३१७॥
मनुष्याणां हितार्थं तु राजविद्या प्रकाशिता ।
तस्मादेनामाचरन्तु श्रद्धाभक्तियुता नराः ॥३१८॥

भावार्थः—इष्ट, पुरुषार्थ, वर, अहिंसा और आशीर्वाद सामिग्री, शुद्धविचारशक्ति और कर्ता (करने वाले) से शुद्ध संतति की उत्पत्ति होती है । तथा अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है और आयु बढ़ती है संसार में विचार की अधिकता से युक्त अर्थात् अधिक विचार सहित संपूर्ण प्राणियों के हित के लिये मनुष्य बनाया गया है । अतः मनुष्य की भावना संपूर्ण प्राणियों के हित के लिये होनी चाहिये। मनुष्यों के हित के लिये ही राजविद्या प्रकाशित की गई है । अतएव इसका श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मनुष्य आचरण करें । (क्योंकि राजविद्या का अनुगामी तीनों लोकों में उच्चपद तथा अविनाशी सुख प्राप्त करता है) ३१६-३१७-३१८॥

दरिद्रता

(०६३)

विचारन्न यदा भूपः संसारार्थं नियोजयेत् ।
राजविद्योपदेशं च परित्यजति सर्वथा ॥३१९॥
घोरदुःखानि सम्प्राप्य नर्कगामीभवेत्सदा ।
तस्माच्छुभाशुभं कार्यं विचार्यविनियोजयेत् ॥३२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी विचारशक्ति को संसार के हित में नहीं लगाता तथा राजविद्या के उपदेश को जो सर्वथा परित्याग कर देता है वह घोर दुःखों को प्राप्त करके नर्क का गामी होता है । इसलिये शुभ और अशुभ काम को विचार कर करे ॥३१९-३२०॥

धर्मः

(६४)

पूर्वोक्ताभिश्चजायेत धारणाभिश्चतसृभिः ।
धर्मः श्रीराजविद्यायां सर्वसंसारहेतवे ॥३२१॥

एतद्धर्मानुसारेण राज्यं संजायते ध्रुवम् ।
अखंडितं सुखञ्चापि मानवो लभते कृतिः ॥३२२॥

भावार्थः—पहिले परिभाषा निरूपण में कहे हुए चार प्रकार की धारणाओं से युक्त संपूर्ण संसार के हित के लिये श्रीराजविद्या में धर्म कहा गया है तथा इसी धर्म के अनुसार आचरण करने से राज्य सर्वदा निश्चलता प्राप्त करता है तथा अखंडित सुख को कुशल मनुष्य प्राप्त करता है । अर्थात् प्राचीन धर्म ही राज्य है ॥३२१-३२२॥

अधर्मः

(०६४)

धर्मेण प्रविरुद्धा स्या–द्धारणा यस्य देहिनः ।
तस्य संजायतेऽल्पायुः विनाशश्चापि जायते ॥३२३॥
परेषामाश्रयं प्राप्य प्रतापकीर्तिवंचितः ।
अनेकयोनिमध्ये सः दुःखितो नर्कमश्नुते ॥३२४॥

भावार्थः—धर्म के विरुद्ध जिस मनुष्य की धारणा होती है उसकी आयु कम होती है तथा विनाश हो जाता है एवं दूसरों का आसरा प्राप्त कर पराक्रम, यश और तेज से वंचित होकर अनेक योनियों में दुःख प्रात करता हुआ नर्क को प्राप्त करता है ॥३२३-३२४॥

इति श्रीराजविद्यायां शासनकला निरूपणम् ।

शासनकलाचिन्हानि

शंकर उवाच ।

शाशनस्य कलानां च चिन्हैः सांकेतिकैरिह ।
जायते वर्णनं ज्ञेयं प्रिये ! कैलाशनन्दनि ! ॥१॥

भाषार्थः—हे कैलाशनंदनि प्रिये ! पार्वति यहां पर उक्त चौसठ कलाओं का सांकेतिक चिन्हों द्वारा वर्णन होता है सो उसे तुम सुनो ॥१॥

सांकेतिकानां चिन्हानां संख्यानां च पुरा यदा ।
भवेद्बिन्दुस्तदाज्ञेयं तत्तचिन्हविपर्ययम् ॥२॥

भाषार्थः—सांकेतिक चिह्न और संख्याओं के पहले जब विंदु (शून्य) हो तो उस २ संकेत का विपरीत भाव जानना चाहिये। अर्थात् जिन सांकेतिक चिन्हों के प्रथम विन्दु तथा इसी भांति संख्या के पूर्व विन्दु का चिन्ह होने से उस संख्या का अभाव जाना जाता है जैसें इष्ट संज्ञा का सांकेतिक चिन्ह ऊर्ध्व रेखा हैं इसके अभाव की संज्ञा विनाश है इस विनाश संज्ञा की संख्या और चिन्ह तो वही हैं जोकि इष्ट के किन्तु विन्दु उसके केवल विपरीत भाव का वोधक है ॥२॥

वलप्रबोधिका प्रोक्ता चोर्ध्वरेखा निरन्तरम् ।
सुप्तरेखात्र सर्वत्र सदावुद्धिप्रबोधिका ॥३॥

वक्ररेखा लोपचिन्हं विज्ञापयति सर्वदा ।
चिन्हानां वैपरीत्यन्तु विपरीतार्थकारणम् ॥४॥

भाषार्थः—ऊर्ध्वरेखा वल का वोध कराने वाली है, तथा पड़ी हुई रेखा सदा वुद्धि का वोध कराने वाली है। एवं वक्र (टेढी) रेखा

शासनकलाचिन्हानि ।

U. A. P. P J.

लोप को बताने वाली है, तथा विपरीत चिन्ह सदा विपरीत भावों को बताने वाले हैं ॥३-४॥

(१-२)

ऊर्ध्वया रेखयेष्टस्य चिन्हं सांकेतिकं भवेत् ।
द्वाभ्यां चैवोर्ध्वरेखाभ्यां संयमस्य प्रजायते ॥५॥

भाषार्थः—ऊर्ध्व (खड़ी हुई) रेखा (लकीर) से इष्ट संज्ञा का सांकेतिक चिन्ह जानना चाहिये तथा दो ऊर्ध्व रेखाओं से संयम का चिह्न जाना जाता है ॥५॥

(३-४)

रेखाभिस्त्रिभिरूर्ध्वाभिः समृद्धेश्चिन्हमादिशेत् ।
चतस्त्रिभिः प्रजायेत राज्यसिद्धे र्निरन्तरम् ॥६॥

भाषार्थः—तीन ऊर्ध्व रेखाओं से युक्त समृद्धि का चिन्ह जानना चाहिये तथा चार ऊर्ध्व रेखाओं से राज्य सिद्धि का चिन्ह कहा गया है ॥६॥

(५-६)

सुप्तया रेखया त्वत्र युक्ते श्चिन्हं प्रजायते ।
द्वाभ्यां शिक्षाप्रबन्धस्य विज्ञेयं मानवैरिह ॥७॥

भाषार्थः—सुप्त (पड़ी हुई) एक रेखा से युक्ति का चिन्ह होता है तथा दो पड़ी हुई रेखाओं से मनुष्यों को शिक्षा प्रबन्ध का चिन्ह जानना चाहिये ॥७॥

(७-८)

छायायाः ध्वजया चिन्हं न्यायस्यापि प्रजायते ।
त्रिशूलेनात्र योगस्य रक्षायाश्च भवत्यपि ॥८॥

भाषार्थः—माया तथा न्याय का चिन्ह ध्वजा से जानना चाहिये, तथा त्रिशूल से योग और रक्षा का चिन्ह कहा जाता है ॥८॥

(९)

ध्वजात्रिशूलसंयुक्तं सुप्तरेखासमन्वितम् ।
चिन्हं स्याद्योगमायायाः संसारज्ञानहेतवे ॥९॥

भाषार्थः—ध्वजा त्रिशूल और सुप्तरेखा से युक्त योगमाया का चिन्ह संसार के ज्ञान के निमित्त कहा गया है ॥९॥

(१०-११)

क्षात्रप्रतिज्ञाचिन्हं तु सूर्येणैवाभिजायते ।
विज्ञेयं सुमतिप्राप्तेः चिन्हं चन्द्रमसा नरैः ॥१०॥

भाषार्थः—क्षात्र प्रतिज्ञा का चिन्ह सूर्य के आकार से जानना चाहिये, तथा चन्द्र के आकार से सुमति प्राप्ति का चिन्ह जाना जाता है ॥१०॥

(१२-१३)

त्रिकोणन्तु वलस्योक्तं चतुष्कोणं मतेरिह ।
चिन्हं संजायते सम्यक् सर्वेषां ज्ञानहेतवे ॥११॥

भाषार्थः—त्रिकोण आकार का चिन्ह वल का तथा चौकोण चिन्ह बुद्धि का सवों के ज्ञान के लिये कहा गया है ॥११॥

(१४)

द्वे स्यातां सुप्तरेखे च त्रिशूलश्च ध्वजा भवेत् ।
संग्रहस्य परिज्ञेयं चिन्हं सांकेतिकं जनैः ॥१२॥

भावार्थः—दो सुतरेखा त्रिशूल और ध्वजा यह संग्रह का सांकेतिक चिन्ह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥१२॥

(१५)

तारकेण तु संयुक्तं यच्चिन्हं परिजायते ।
तत्स्यादचलतायाश्च जनानां ज्ञानहेतवे ॥१३॥

भावार्थः—तारक (तारा से) जो सांकेतिक चिन्ह होता है वह सांसारिक मनुष्यों के ज्ञान के लिये अचलता का चिन्ह कहा गया है ॥१३॥

(०१५)

चतुष्कोणत्रिकोणाभ्यां रेखाशून्यसमन्वितम् ।
चिन्हमस्थिरतायाश्च विज्ञेयं सर्वदा जनैः ॥१४॥

भावार्थः—चतुष्कोण, त्रिकोण, सुतरेखा और शून्य से युक्त अस्थिरता का चिन्ह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥१४॥

(१६)

गर्भत्रिकोण संयुक्तं दण्डविन्दुसमंवितम् ।
तत्स्यात् प्रबलराज्यस्य जानन्तु मानवाः समे ॥१५॥

भावार्थः—दो गर्भ त्रिकोण तथा दण्ड और दो विन्दु से जो चिन्ह संयुक्त होता है वह प्रवल राज्य का चिह्न कहा गया है । यह सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥१५॥

(०१६-१७-१८)

चिन्हं न्यूनबलस्योक्तं धेनुकासहितं च यत् ।
चतुष्कोणं त्रिकोणं च तस्योपरिध्वजा यदा ॥१६॥

सुप्तरेखा त्रिशूलश्च चिन्हं दार्ढ्यस्य जायते ।
नरस्य मस्तकं यत्र तत्राऽज्ञायाः प्रजायते ॥१७॥

भाषार्थः—धेनुका (कटारी) से युक्त न्यून बल का चिन्ह जानना चाहिये । तथा चतुष्कोण, त्रिकोण और उसके ऊपर ध्वजा नीचे दो सुप्तरेखा तथा त्रिशूल यह दार्ढ्य का चिन्ह कहा गया है, एवं जहां पर मनुष्य का मस्तक हो वहां आज्ञा का चिन्ह जानना चाहिये ॥ १६-१७॥

(०१८-१९)

अधर्मवचनस्यात्र चिन्हं स्याद्रारभं शिरः ।
चक्षुर्भ्यां श्च परिज्ञेयं ज्ञाननेत्रस्य सर्वथा ॥१८॥

भाषार्थः—अधर्म वचन का चिन्ह यहां पर रान्भ (गधा) का मस्तक कहा गया है, तथा दो चक्षुओं से ज्ञान नेत्र का चिन्ह जाना जाता है ॥१८॥

(२०-०२०)

चिन्हं विचारशक्तेश्च स्यादष्टकोणसंयुतम् ।
तथा विचारहीनस्य चिन्हं शून्यं प्रजायते ॥१९॥
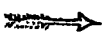
भाषार्थः—अष्ट कोण से युक्त विचारशक्ति का चिन्ह होता है तथा शून्य (बिन्दी) विचार हीन का चिन्ह जानना चाहिये ॥१९॥

(२१-२२)

अधिकारस्य चिन्हं स्या-दंकुशेन विभूषितम् ।
बलबुद्ध्योस्तु यच्चिन्हं चतुष्कोणं त्रिकोणकम् ॥२०॥

भाषार्थः—अंकुश से अधिकार का चिन्ह जाना जाता है, एवं चतुष्कोण और त्रिकोण यह बल बुद्धि का चिन्ह कहा गया है ॥२०॥

शासनकलाचिन्हानि ।

U.A P P. J

(२३-२४)

चामेरण भवेच्चिन्ह–मष्टानान्तेजसामपि ।
चतुष्कोणध्वजायुक्तं चिन्हं न्यायस्य जायते ॥२१॥

भापार्थः—चामर (चौर से) अष्ट तेज का चिन्ह कहा गया है, तथा चतुष्कोण और ध्वजा से युक्त न्याय का चिन्ह जानना चाहिये ॥२१॥

(२५-२६)

सत्रिशूलात्रिकोणन्तु रक्षयाः लक्ष्म जायते ।
शरचापयुतञ्चात्र चेष्टायाः परिकथ्यते ॥२२॥

भापार्थः—त्रिशूल और त्रिकोण यह रक्षा का चिन्ह कहा गया है, तथा शर (वाण) और चाप (धनुष) से युक्त चेष्टा का चिन्ह कहा गया है ॥२२॥

(२७)

चतुष्कोणं त्रिकोणश्च त्र्यूर्ध्वरेखासमन्वितम् ।
सम्मतेस्तु परिज्ञेयं चिन्हं सांकेतिकं जनैः ॥२३॥

भापार्थः—चतुष्कोण, त्रिकोण और तीन ऊर्ध्वरेखा यह मनुष्यों को सम्मति का चिन्ह जानना चाहिये ॥२३॥

(२८-०२८)

साक्षिण स्त्विह जायेत स्वस्तिकेनसमन्वितम् ।
वक्ररेखाशून्ययुक्तं नास्तिकस्यात्रजायते ॥२४॥

भापार्थः—स्वस्तिक (सांखिया) से युक्त साक्षी का चिन्ह तथा वक्र (टेडी) रेखा और शून्य (विन्दु) से युक्त नास्तिक का चिन्ह जाना जाता है ॥२४॥

(२९)

त्रिसुप्तरेखासंयुक्तं पताका चत्रिशूलकम् ।
ज्ञानस्यैतत्परिज्ञेयं चिन्हं तुमावैरिह ॥२५॥

भाषार्थः—तीन पड़ी हुई रेखा से युक्त तथा पताका और त्रिशूल से ज्ञान का चिन्ह कहा गया है ॥२५॥

(३०-३१)

नृपस्य चिन्हं विज्ञेयं वाणेन सर्वदा जनैः ।
प्रजानां धनुषा चिन्हं जायते नात्र संशयः ॥२६॥

भाषार्थः—राजा का चिन्ह वाण से जानना चाहिये तथा प्रजा का धनुष से जाना जाता है ॥२६॥

(०३१)
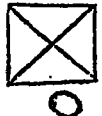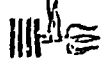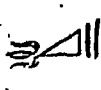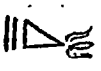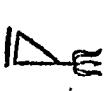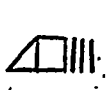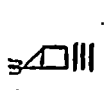
चतुष्कोणं त्रिकोणं स्या-दूर्ध्वरेखासमन्वितम् ।
दुर्भावस्यात्रचिंहं तु विपरीतं विनिर्दिशेत् ॥२७॥

भाषार्थः—चतुष्कोण त्रिकोण ऊर्ध्वरेखा से युक्त विपरीत (उलटा) चिन्ह दुर्भाव का जानना चाहिये ॥२७॥

(३२-३३)

लतया वापि वृक्षेण विवाहस्य प्रजायते ।
खड्गेनपरिसंयुक्तं कटिवद्धस्य जायते ॥२८॥

भाषार्थः—लता (वेल) और वृक्ष के आकार से विवाह का चिन्ह कहा गया है एवं खड्ग (तलवार) से कटिवद्ध का चिन्ह जाना जाता है ॥२८॥

शासनकलाचिन्हानि ।

UAPPJ

(३४)

चिन्हं प्रत्युपकारस्य गोभिः सम्यक् प्रजायते।
विज्ञानमस्य कर्तव्यं चिन्हानां ज्ञानहेतवे ॥२९॥

भाषार्थः—प्रत्युपकार का चिन्ह गो से कहा गया है चिन्हों को पहचान ने के लिये इसको जानना चाहिये ॥२९॥

(०३४)

रेखाभिर्द्वाभिरूर्ध्वाभिः चतुष्कोणं त्रिकोणकम्।
चिन्हन्तुप्रलयस्यात्र विपरीतं प्रजायते ॥३०॥

भाषार्थः—दो ऊर्ध्वरेखा, चतुष्कोण और त्रिकोण यह विपरीत प्रलय का चिह्न मनुष्यों को जानना चाहिये ॥३०॥

(३५-३६)

प्रजाकार्यस्य चिन्हं स्यात् सदा देवालयेन हि।
षट्त्रिंशल्लक्षणानां च राज्यसिंहासनं स्मृतम् ॥३१॥

भाषार्थः—देवालय से प्रजा कार्य का चिह्न तथा छत्तीस लक्षण का चिह्न राज्य सिंहासन कहा गया है ॥३१॥

(३७)

चत्वार्येव त्रिकोणानि चतुष्कोणस्य चान्तरे।
चिन्हं स्वाधीनराज्यस्य विज्ञेयंमानवैरिह ॥३२॥

भाषार्थः—यदि चतुष्कोण के अन्दर चार त्रिकोण हों तो वह स्वाधीनराज्य का चिह्न मनुष्यों को जानना चाहिये ॥३२॥

(३८-३९)

मुद्राशालस्य चक्रेण बालराज्यस्य कथ्यते ।
चतुष्कोणध्वजायुक्तं सुप्तरेखासमंवितम् ॥३३॥

भाषार्थः—मुद्राशाला का चिह्न चक्र से जाना जाता है। तथा चतुष्कोण, ध्वजा और सुप्तरेखा से समंवित (युक्त) वाल राज्य का चिह्न कहा गया है ॥३३॥

(४०)

चतस्रः सुप्तरेखाः स्युः त्रिशूलश्च ध्वजा तथा ।
स्थितिपरम्परायाश्च चिन्हं सम्यक् प्रजायते ॥३४॥

भाषार्थः—चार पड़ी हुई रेखा तथा त्रिशूल और ध्वजा से स्थिति परंपरा का चिह्न जानना चाहिये ॥३४॥

(४१-०४१)

चिन्हं कार्यस्य विज्ञेयं हस्त्याकारेण यद्भवेत् ।
विपरीतध्वजारेखे ह्यकार्यस्य प्रजायते ॥३५॥

भाषार्थः—हस्ति के आकार से कार्य का चिह्न कहा गया है। तथा विपरीत ध्वजा और रेखा यह अकार्य का चिह्न है ॥३५॥

(४२)

द्विसुप्तरेखासंयुक्तं त्रिशूलश्चत्रिकोणकम् ।
चिन्हमत्रतु जायेत सत्कारस्य निरन्तरम् ॥३६॥

भाषार्थः—दो सुप्तरेखा तथा त्रिशूल और त्रिकोण यह सत्कार का चिह्न कहा गया है ॥३६॥

(४२-०४२)

एकतायास्तु चिन्हं स्या-दश्वेन परिभूषितम् ।
त्रिकोणेन त्रिशूलेन तथैव सुप्तरेखया ॥३७॥

विपरीतं भवेच्चिन्ह-अनैक्यस्य निरंतरम् ।
एतेनात्रतु जायेत ज्ञानं सांकेतिकं सदा ॥३८॥

भाषार्थः—अश्व से एकता का चिह्न जानना चाहिये तथा त्रिकोण और त्रिशूल और सुप्तरेखा से विपरीत चिह्न अनेकता का जानना चाहिये ॥३७-३८॥

(४४)

द्विसुप्तरेखासंयुक्तं चतुष्कोणध्वजायुतम् ।
उपकारस्य चिन्हं स्यात् सर्वेषां ज्ञानहेतवे ॥३९॥

भाषार्थः—दो सुप्तरेखा तथा चतुष्कोण और ध्वजा से युक्त उपकार का चिह्न सबों के ज्ञान के लिये वर्णन किया गया है ॥३९॥

(४५)

तिस्रश्च सुप्तरेखाः स्युः त्रिकोणञ्च त्रिशूलकम् ।
चिन्हमत्रपरिज्ञेयं सुमतेर्नात्र संशयः ॥४०॥

भाषार्थः—तीन सुप्तरेखा त्रिकोण और त्रिशूल यह सुमति का चिह्न कहा गया है ॥४०॥

(४६-०४६)

त्रिसुप्तरेखासंयुक्तं चतुष्कोणं त्रिकोणकम् ।
चिन्हं सौख्यस्य विज्ञेयं दुःखस्य जायतेऽहिना ॥४१

भापार्थः—तीन सुतरेखा तथा चतुष्कोण और त्रिकोण यह सौख्य का चिन्ह जाना जाता है एवं दुःख का सर्प से चिन्ह जाना जाता है ॥४१॥

(४७)

चतुष्कोणत्रिकोणाभ्यां रेखाभिस्त्रिभिरंवितम् ।
ध्वजया च त्रिशूलेन प्रवृत्तेश्चिन्हमादिशेत् ॥४२॥

भापार्थः—चतुष्कोण त्रिकोण और तीन सुतरेखाओं से युक्त एवं ध्वजा तथा त्रिशूल यह प्रवृत्ति का चिन्ह जानना चाहिये ॥४२॥

(४८)

नैश्चल्यस्यपरिज्ञेयं घटेन लक्ष्म सर्वथा ।
सांकेतिकानां चिन्हानां सन्ततं ज्ञानहेतवे ॥४३॥

भाषार्थः—सांकेतिक चिन्हों के ज्ञान के लिये निश्चलता का चिन्ह घट से जानना चाहिये ॥४३॥

(०४८)

द्विसुप्तरेखासयुक्तं विपरीतध्वजायुतम् ।
चिन्हं चलायमानस्य विज्ञेयं मानवैरिह ॥४४॥

भाषार्थः—दो सुतरेखा और विपरीत ध्वजा से युक्त चलायमान का चिन्ह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥४४॥

(४९-५०)

चलवङ्कावस्य तथा त्रिशूलेन पताकया ।
ऊर्ध्वरेखा चतुष्कोणं सार्थकस्य प्रजायते ॥४५॥

भाषार्थः—बलवान् भाव का चिन्ह त्रिशूल और पताका से युक्त जानना चाहिये तथा ऊर्ध्वरेखा और चतुष्कोण यह सार्थक का चिन्ह है ॥४५॥

(५१-५२)

चतुष्कोणमूर्ध्वरेखे विशालस्य प्रजायते ।
ध्वजा त्रिसुप्तरेखाश्च जयस्य लक्ष्म जायते ॥४६॥

भाषार्थः—चतुष्कोण और दो ऊर्ध्वरेखा यह विशाल का चिन्ह है तथा ध्वजा और तीन सुप्तरेखा यह जय का चिन्ह है ॥४६॥

(५३)

रेखाभिस्त्रिभिरूर्ध्वाभिः चतुष्कोणेन वा युतम् ।
नैरोग्यस्य परिज्ञेयं चिन्हं तु मानवैरिह ॥४७॥

भाषार्थः—तीन ऊर्ध्वरेखा और चतुष्कोण से युक्त नैरोग्य का चिन्ह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥४७॥

(५४-५५)

स्वदेशीयस्य चिन्हन्तु छत्रेणैवाभिजायते ।
त्रिकोणं सुप्तरेखे च चिन्हमायस्य जायते ॥४८॥

भाषार्थः—स्वदेशीय का चिन्ह छत्र तथा त्रिकोण और दो सुप्तरेखा यह आय का चिन्ह है ॥४८॥

(५६-५७)

त्रिकोणमूर्द्धरेखेच मर्यादायाः प्रजायते ।
त्रिकोणमूर्ध्वरेखा च पालनस्य तु लक्ष्म स्यात् ॥४९॥

भाषार्थः—त्रिकोण और दो ऊर्ध्वरेखा यह मर्यादा का चिन्ह है तथा त्रिकोण और एक ऊर्ध्वरेखा यह परिपालन का चिन्ह कहा गया है ॥४९॥

(०५७-५८)

गदया स्यात्तु दण्डस्य चतुष्कोणं यदा भवेत् ।
सुप्तरेखे च तच्चिन्हं स्वाधिकारस्य विद्यते ॥५०॥

भाषार्थः—गदा से दण्ड का चिन्ह तथा चतुष्कोण और दो सुप्तरेखा जहां हों वह स्वाधिकार का चिन्ह कहा गया है ॥५०॥

(५९-६०)

शक्तेश्चिह्नं परशुना त्रिचतुष्कोणसंयुतम् ।
ध्वजात्रिशूलसंयुक्तं स्वातन्त्र्यस्य प्रजायते ॥५१॥

भाषार्थः—शक्ति का चिन्ह परशु (फरसा) है तथा त्रिकोण और चतुष्कोण एवं ध्वजा और त्रिशूल से युक्त स्वतंत्रता का चिन्ह जानना चाहिये ॥५१॥

(६१)

चतुष्कोणं त्रिकोणञ्च सुप्तरेखासमन्वितम् ।
दायादप्रविभागस्य ध्वजात्रिशूलसंयुतम् ॥५२॥

भाषार्थः—चतुष्कोण, त्रिकोण और सुप्तरेखा से युक्त एवं ध्वजा और त्रिशूल संयुक्त दायाद विभाग का चिन्ह है ॥५२॥

(६२-६३)

गोलाकारदण्डयुक्तं सभायाश्चिन्हमेव हि ।
त्रिसुप्तरेखासंयुक्तं श्रियश्चिन्हं प्रजायते ॥५३॥

भावार्थः—गोलाकार और दण्ड से युक्त सभा का चिन्ह जाना जाता है तथा तीन सुतरेखा से युक्त श्री का चिन्ह है ॥५३॥

(६४)

चतस्रः सुप्तरेखाः स्युः सूर्यचन्द्रयुतन्तथा ।
चिन्हं धर्मस्यविज्ञेयं जनैः सांसारिकैरिह ॥५४॥

भावार्थः—चार सुप्तरेखा तथा सूर्य और चन्द्र से युक्त धर्म का चिन्ह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥५४॥

इति श्रीराजविद्यायां
चतुःपष्ठिशासनकला चिन्हनिरूपणोनाम
तृतीयः संवादः ।

अथ श्रीराजविद्यायां पञ्चोपदेश निरूपणोनाम चतुर्थः संवादः
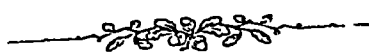
प्रथमोपदेशः

शंकर उवाच ।

प्रकृत्या नियमोऽवनेश्च स्वभावः कोऽत्र विद्यते ।
केयंविद्या प्रभावोस्याः विद्यते कश्च कथ्यते ॥१॥

भाषार्थः—प्रकृति (कुदरत) और पृथ्वी का नियम तथा स्वभाव क्या है एवं यह विद्या (राजविद्या) क्या है तथा इस का प्रभाव क्या है ? यह सब मैं कहता हूं सो हे प्रिये पार्वति ! सुनो ॥१॥

मन्वन्तराणान्तु चतुर्दशानां
अस्यास्तिसृष्ट्याः ह्यवधिश्चतस्मिन् ।
प्रत्येकमन्वन्तरमध्यभागे
स्वार्थादिकाऽधिक्य समागतेवै ॥२॥

बलेषु बुद्धिष्वपि कर्ममध्ये
आयुः सु गात्रेषु यदा नराणाम् ।
भेदः समुत्पद्यत एव नूनं
तदा नरा यान्त्यधमां गतिश्च ॥३॥

भाषार्थः—इस संसार की अवधि चौदह मन्वन्तरों की होती हैं जिसमें प्रत्येक मन्वंतर के बीच में स्वार्थादिकों की अधिकता

में पड़ने से मनुष्यों का बल, बुद्धि, कर्म, शरीर और अवस्था में भेद (फर्क) उत्पन्न हो जाता है तब मनुष्य नीच गति को प्राप्त करलेता है ॥२-३॥

यथा भानुर्जलंभूमेः समाकर्षति भानुभिः ।
ऊर्ध्वं ज्ञानेन शास्त्राणि तथा कर्षंति मानवम् ॥४॥

भाषार्थः—जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा भूमि का जल ऊपर खींच लेता है उसी प्रकार शास्त्र अपने ज्ञान के द्वारा मनुष्य को नीच गति से ऊर्ध्व गति में आकर्षित कर लेते हैं। अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान के द्वारा नीच गति में पड़े हुए मनुष्य उन्नत स्थान प्राप्त कर सकते हैं ॥४॥

राजविद्या मनुष्याणां कर्माणि परिशोध्य च ।
बलमायुस्तथा बुद्धिं संततिश्चापि सम्पदम् ॥५॥
सम्वर्द्धयति, लोकेषु प्रापयत्युन्नतं पदम् ।
तस्माच्छ्रीराजविद्यायाः नराः सन्त्वनुगामिनः ॥६॥

भाषार्थः—राजविद्या मनुष्यों के कर्मों को शुद्ध करके बल, आयु, बुद्धि, संतति तथा सम्पत्ति को बढ़ाती है तथा तीनों लोकों में उन्नत स्थान प्राप्त कराती है अतः मनुष्यों को चाहिये कि 'श्रीराजविद्या' के अनुगामी बनें ॥५-६॥

जन्तूनाञ्च सुखंदुःखं रचना वा पृथग्विधा ।
कर्मानुसारं जायेत नास्त्यत्र सम्भ्रमः क्वचित् ॥७॥

भाषार्थः—जन्तुओं का सुख दुःख तथा भिन्न २ (जुदी २) प्रकार की रचना ये कर्मों के अनुसार होती है इसमें कहीं पर भ्रम नहीं है ॥७॥

रूपं राज्यन्तथा धर्मः रीतिराचार एव वा ।
स्वभावो भाषणश्चापि मर्यादा परिपालनम् ॥८॥

देशप्रथानुसारेण जायन्ते च पृथक्पृथक् ।
एकीकर्तुंन्नरः कश्चित् समर्थो नोऽभि जायते ॥९॥

भाषार्थः—देशों की प्रथाओं के अनुसार स्वरूप, राज्य, रीति, आचार, स्वभाव, भाषण (बोलचाल) और मर्यादा का पालन करना ये सब पृथक्पृथक् होते हैं इनको कोई मनुष्य एक नहीं कर सकता ॥ ८-९॥

सभ्यतायाः समुन्नत्याः प्रचारं क्षितिनायकः ।
प्रजाहिताय कुर्वीत स्वकीये शासने सदा ॥१०॥

भाषार्थः—राजा प्रजा के हित के लिये सभ्यता और उन्नति का प्रचार अपने राज्य में करता रहे ॥१०॥

प्रजाहानिकराण्यानि कार्याणि तानि सर्वदा ।
रुन्धाल्लोकप्रियोभूपो सर्वकल्याणहेतवे ॥११॥

भाषार्थः—प्रजा को हानि पहुंचाने वाले कामों को लोकप्रिय राजा सर्वथा रोक दे ॥११॥

धार्मिकव्यवहारेषु मर्यादायां च भूपतिः ।
हस्ताक्षेपन्नकुर्वीत राज्यसंस्थितिहेतवे ॥१२॥

भाषार्थः—राजा राज्य की स्थिति के लिये प्रजा के धार्मिक व्यवहार और प्राचीन मर्यादा में हस्ताक्षेप न करे ॥१२॥

यस्य कस्यापि भूपस्य माण्डलिकाःह्यतिनृपाः ।
अधिकारे विजायन्ते तस्य राज्यं दृढं भवेत् ॥१३॥

भाषार्थः—जिस राजा के अधिकार में अधिक माण्डलिक (जागीरदार) राजा होते हैं उस राजा का राज्य दृढ़ होता है ॥१३॥

भाषार्थः—मनुष्यों का समूह जिस किसी भू (पृथिवी) भाग में होता है उसी की रक्षा, न्याय और हित के लिये पृथक्पृथक् राज्य होते हैं ॥१४॥

माण्डलिकानि राज्यानि भूपर्यन्तमतः सदा ।
भविष्यंति कदाचिन्नो नाशमेष्यन्ति निश्चितम् ॥१५॥

भाषार्थः—इसलिये माण्डलिक राजा निरन्तर पृथ्वी पर्यन्त होते रहेंगे कभी नाश को प्राप्त नहीं होंगे ॥१५॥

राजानश्चप्रजाः सर्वाः दाम्पत्येनैव संयुताः ।
जगदीशांशसंभूताः संसारोत्पत्तिहेतवे ॥१६॥

भाषार्थः—संसार की उत्पत्ति के लिये परमात्मा के अंश से समुत्पन्न राजा और संपूर्ण प्रजा दम्पति (स्त्री और पुरुष) से संयुक्त हैं ॥१६॥

तेषु जीवो नृपः प्रोक्तः शरीरं तु प्रजाः स्मृताः ।
शक्तेश्च सुमतेस्तत्र प्रकाशः परमात्मनः ॥१७॥

भाषार्थः—उनमें जीव स्वरूप राजा है और शरीर रूपा प्रजा कही गई है। तथा शक्ति और सुमति का इन दोनों में प्रकाश है वह परमात्मा का है ॥१७॥

तत्वमेतद्राजविद्या-ज्ञाननेत्रेण पश्यति ।
निष्कण्टकं स भूपालः भुनक्ति सर्वदा महीम् ॥१८॥
प्राप्नोति परमं स्थानं स्वर्गलोके महीयते ।
संत्वतोहि महीपालाः राजविद्याऽनुगामिनः ॥१९॥

भाषार्थः—इस बात के तत्व को जो राजा राजविद्या रूपी ज्ञान चक्षुओं से देखता है वही सर्वदा निष्कण्टक राज्य भोगता है।

तथा उन्नत स्थान प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में भी पूजनीय होता है इसलिये राजाओं को चाहिये कि राजविद्या के अनुगामी बनें ॥१८-१९॥

भूतले सात्विको जीवः ब्राह्मणः प्रतिपादितः।
वेदाः शास्त्राणि तस्यैव शरीरमिति कथ्यते ॥२०॥

भाषार्थः—संसार में सात्विक जीव ब्राह्मण कहा गया है तथा वेद और शास्त्र उसका शरीर है ॥२०॥

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं प्रकाशः परमात्मनः।
गुणैरेतैश्चसंयुक्तो-ब्रह्मविद् ब्राह्मणः स्मृतः ॥२१॥

भाषार्थः—ज्ञान विज्ञान और आस्तिक भाव उस ब्राह्मण में परमात्मा का प्रकाश है तथा इन सर्व गुणों से संयुक्त तथा ब्रह्म को जानने वाला ही ब्राह्मण है ॥२१॥

स एव ब्राह्मणः पूज्यः माननीयोऽभिजायते।
गुणैरेतैरयोग्यस्तु न पूजार्हः कदाचन ॥२२॥

भाषार्थः—वही ब्राह्मण पूज्य और माननीय है तथा इन गुणों से इतर कदापि पूजा के योग नहीं हो सकता ॥२२॥

जीवो राजसिक श्चैवं क्षत्रियः सुमुदीरितः।
प्रजापालनकार्याणि तच्छरीरं समीरितम् ॥२३॥
तस्मिन्तेजस्तथैश्वर्यं प्रकाशः परमात्मनः।
रक्षाशासनयोग्यास्ते जायन्तेऽत्रमहीभुजः ॥२४॥

भाषार्थः—राजसिक जीव क्षत्रिय कहा गया है तथा प्रजा की पालना के कार्य ही उसका शरीर है और उसमें तेज और ऐश्वर्य परमात्मा का प्रकाश है तथा ऐसे ही राजा शासन (रक्षा न्याय) करने के योग्य होते हैं ॥२३-२४॥

रजः सत्वगुणोपेतो जीवो वैश्यः समीरितः ।
गणितञ्च तथा द्रव्यं शरीरं तस्य जायते ॥२५॥
कृषिवाणिज्यगोसेवाः प्रकाशः परमात्मनः ।
तस्मिन्,सदा मानयोग्य-यदिस्यात्सत्यधारणा ॥२६॥

भाषार्थः—रजः और सत्वगुणों से युक्त वैश्य जीव कहा गया है तथा गणित और द्रव्य ये उस का शरीर है । तथा कृषि, वाणिज्य, गो सेवा ये परमात्मा का प्रकाश है यदि उसमें सत्य धारणा हो तो वह मान के योग्य है ॥२५-२६॥

जीवस्तमोगुणोपेतः शूद्रश्चात्रसमीरितः ।
शुद्धभावेन या सेवा शरीरं तस्य जायते ॥२७॥
तस्मिन्सेवा विधानं तु प्रकाशः परमात्मनः ।
अतः शूद्रस्त्रिभिर्वर्णैः पालनीयोऽभिजायते ॥२८॥

भाषार्थः—तामसिक जीव शूद्र कहा गया है तथा शुद्धभाव से सेवा करना उसका शरीर कहा गया है एवं यह सेवाकर्म करना ही उसमें परमात्मा का प्रकाश है, अतएव शूद्र तीनों वर्णों से पालन करने योग्य है ॥२७-२८॥

पराक्रमस्य सुमतेः जायते राजविद्यया ।
शुद्धज्ञानाऽभिसंप्राप्तिः तया स्याच्छुद्धधारणा ॥२९॥
तयैव सुकृते पुंसां पुरुषार्थोऽभिजायते ।
संशुद्धभावना तेन तया जन्माभिवांछितम् ॥३०॥

भाषार्थः—राजविद्या से पराक्रम और सुमति के शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है शुद्धज्ञान से शुद्धधारणा हो जाती है तथा शुद्ध धारणा से मनुष्यों की सुकृत (अच्छे कार्य) में पुरुषार्थ की प्राप्ति होती

है इस पुरुषार्थ से शुद्ध भावना होजाती है । और शुद्ध भावना से इच्छा के अनुसार मनुष्यों की उच्च जाति में जन्म की प्राप्ति होती है ॥२९-३०॥

पार्वत्युवाच

स्वभावोस्याः पृथिव्यास्तु विद्यते नाथ ! कीदृशः ।
इति सर्वं कृपां कृत्वा मह्यं त्व मववोधय ॥३१॥

भाषार्थः—हे नाथ ! इस पृथ्वी का स्वभाव क्या है सो मेरे ऊपर कृपा करके इसके स्वभाव को बताइये ॥३१॥

शंकर उवाच

सा नित्यं न्यूतना पृथ्वी वर्णनं क्रियतेऽधुना ।
दत्तावधानया तस्याः श्रूयतां प्राणवल्लभे ! ॥३२॥

स्वयं स्रजति सा देवी पालयत्येव सर्वथा ।
अत्ति सर्वान्समुद्भूतान् गुणाः स्वाभाविका इमे ॥३३॥

मनुष्यवुद्ध्यभावेन ह्यन्योन्यकलहप्रदा ।
निर्लज्जान् कातरांचापि दुःखयत्येव दुःखिता ॥३४॥

वीरेभ्यश्च भटेभ्यश्च हर्षयत्यतिहर्षिता ।
ज्ञेयं क्षत्रियवीरैस्तु वलवुद्ध्योः वशम्वदा ॥३५॥

नान्यथा जायते सम्यक् भूमिरेषा कदाचन ।
तस्माद्वीरभटैरस्याः हृदा तत्वं विचिन्त्यताम् ॥३६॥

यदैनां भोक्तुकामास्ते वीराः क्षत्रियवंशजाः ।
वुद्धिमन्तस्तथाशूरा भवंतु राजविद्यया ॥३७॥

भापार्थः—वह पृथ्वी सर्वदा नवीन अवस्था में रहा करती है उसका वर्णन यहां पर किया जाता है सो हे प्राणवल्लभे ! तुम ध्यान पूर्वक सुनो । वह देवी पृथ्वी स्वयम् ही सम्पूर्ण पदार्थों को पैदा करती है तथा स्वयम् ही पालना करती है एवं पैदा किये हुये पदार्थों को स्वयम् (अपने आप) ही भक्षण (लय) कर लेती है यही उसके स्वाभाविक गुण हैं । मनुष्यों में वुद्धि का अभाव होने से अर्थात् जब मनुष्यों की वुद्धि हीन हो जाती है तब उनमें पारस्परिक (एक दूसरे में) कलह (लड़ाई) पैदा करा देती है तथा लज्जाहीन और डरपोक मनुष्यों को उनके व्यवहार से स्वयम् दुःखित होती हुई इन्हें दुःख देती है । वीर तथा योद्धाओं से स्वयं हर्प प्राप्त करती हुई उन्हें भी प्रसन्न करती है इसलिये क्षत्रिय वीरों को जानना चाहिये कि भूमि सदा वल और वुद्धि के वश में रहने वाली है । अन्य किसी प्रकार से नहीं । अतः वीर भटों को हृदय से इसका तत्व विचार करना चाहिये । यदि वीर क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुये मनुष्य इस पृथ्वी को भोगने की इच्छा करते हैं तो वे श्री राजविद्या के उपदेश से वुद्धिमान् तथा शूर वीर वनें ॥३२-३३-३४-३५ ३६-३७॥

प्रतिक्षणन्तु जायेत हानिः स्वार्थे भयावहे ।
उच्चस्थानं निर्भयो ना परार्थे लभते सदा ॥३८॥

भापार्थः—भय को पैदा करने वाले स्वार्थ में लीन होने से मनुष्य की प्रतिक्षण (हरसमय) हानि होती है । तथा परमार्थ करने पर निर्भय होकर मनुष्य उन्नत स्थान प्राप्त करता है ॥३८॥

भाषायां द्वादशक्रोशे जायते परिवर्तनम् ।
किंचित्किंचिदवश्यन्तु प्रकृत्याः नियमस्त्वयम् ॥३९॥

स्वराः प्राकृतभाषायां विद्यन्ते पञ्चविंशतिः ।
त्रयोमूलस्वरा स्तेषु सम्यगेव समीरिताः ॥४०॥

त्रिंशच्चनव प्रोक्तानि व्यंजनानि तु प्राकृते ।
एतैर्लोकस्य जायेत व्यवहारस्तु सर्वथा ॥४१॥

भाषार्थः—प्राकृतिक नियम के अनुसार बारह कोस में भाषा के अन्दर कुछ कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाया करता है। प्राकृत भाषा में पच्चीस स्वर होते हैं। उनमें ३ मूल स्वर हैं तथा उन्तालीस व्यंजन है इन्हीं से सर्वथा संसार का व्यवहार चलता है ॥३९-४०-४१॥

शुद्धमार्गे महीपालः यावच्चालयति प्रजाः ।
तावदेव स भूलोके जायते प्रोच्चशासकः ॥४२॥

भाषार्थः—जितनी अधिक प्रजा को जो राजा शुद्ध मार्ग में चलाता है उतना ही वह संसार में उच्च शासक कहाता है ॥४२॥

प्रकृतिस्वभावः

उत्थानं पतनं चैव स्वभावः प्रकृतेरयम् ।
उत्थानसमये चैषा राजविद्या प्रकाश्यते ॥४३॥

भाषार्थः—उत्थान (उठना वा किसी वस्तु का पैदा होना वा वृद्धि होना) पतन (गिरना वा किसी वस्तु का ह्रास होना) ये प्रकृति का स्वभाव है अतएव क्षत्रियों के उत्थान के समय श्री राजविद्या पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ करती है ॥४३॥

क्षात्राणी पूर्णयोग्या या क्षमा न्याये प्ररक्षणे ।
शासनस्याधिकारोस्ति तस्यै धर्मेण सम्मतम् ॥४४॥

भाषार्थः—जो क्षत्राणी पूर्ण योग्य और न्याय तथा रक्षा करने में समर्थ हो तो उस क्षत्राणी के लिये धर्म से सम्मत शासन करने का अधिकार है ॥४४॥

एकजन्मन्यनेकेषु जन्मसु न्यायधर्मयोः ।
सत्फलस्य प्रदानं स्यात् प्रकृत्याः नियमस्त्वयम् ॥४५॥

अन्यायस्याप्यधर्मस्य यथासाध्यश्रमेण वा ।
परिणामस्य दानं तु स्वभावः प्रकृतेरयम् ॥४६॥

भावार्थः—एक जन्म या अनेक जन्मों में यथा साध्य परिश्रम के साथ अधर्म अन्याय का बदला लेना और न्याय धर्म का शुभ फल देना यह प्रकृति का नियम (स्वभाव) है ॥ ४५-४६ ॥

॥ इति प्रथमोपदेशः ॥
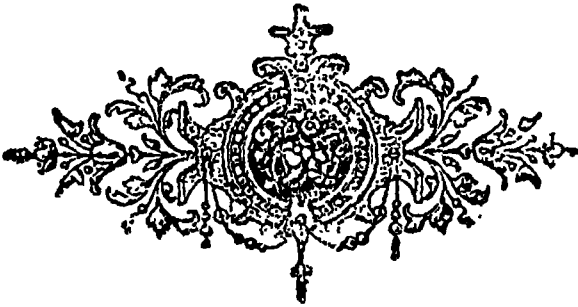
द्वितीयोपदेशः

शंकर उवाच

मनुष्य देहस्य तु वर्णनात्र
संजायते तन्निखिलन्निबोध ।
प्राणप्रिये ! येन भवेत् सदैव
ज्ञानं नरत्वस्य परप्रशस्यम् ॥१॥

भाषार्थः—हे प्राणप्रिये पार्वति ! मनुष्य के शरीर का अब यहां पर वर्णन होता है सो उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिससे मनुष्यता का प्रशंसनीय ज्ञान प्राप्त होगा ॥ १ ॥

अपारशक्त्या विभुमाययैव
विनिर्मितो मानवदेह एषः ।
क्रोधस्य कामस्य विलोभनस्या—
प्यहंकृतश्चाधिक्ता विलग्नाः ॥२॥
यदैव पुंसामखिलाचशक्तिः
विलीनतां यात्यपितत्त्वमध्ये ।
तदा नरास्ते ध्रुवमालभंते
सामान्य वृत्तिं निजशक्तिहीनाः॥३॥

भाषार्थः—अपार शक्तियों वाली परमातमा की माया से ये मनुष्य का शरीर अपार शक्तियों सहित रचा हुवा है किन्तु जब ये मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की अधिकता में पड़जाते

हैं तब उन मनुष्यों की संपूर्ण शक्तियां पांचों तत्त्वों में मिल जाती हैं तब वे मनुष्य उन अपार शक्तियों से हीन होने के कारण सामान्य वृत्ति को निश्चित् रूप से धारण कर लेते हैं ॥ २-३ ॥

ये मानवाः प्रोच्चपदाभिलाषाः
कृत्वा सदा ते वशमिन्द्रियाणि ।
श्रीराजविद्यानुगता भवन्तु
तेषां तदैवेप्सितसिद्धिरेव ॥४॥

कामादिपंचदोषाना-मवशो योऽभिगच्छति ।
दिव्यशक्तिमवाप्नोति प्रत्यक्षं ज्ञानमेव वा ॥५॥
ईश्वरेण नभः पूर्वं निर्मितं वपुषः स्वयम् ।
वायोः प्राप्तिः सदाकाशात् वायुना तेजसस्तथा ॥६॥
तेजसो वारिणः प्राप्तिः पृथिव्या वारिणस्तदा ।
तत्त्वानां तु समुत्पत्तिः क्रमादस्मात् प्रजायते ॥७॥

भाषार्थः—जो मनुष्य उन्नत पद प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं वे अपनी इन्द्रियों को वश में करके श्रीराजविद्या के अनुगामी बनें तब ही उनकी इच्छाओं की पूर्त्ति हो सकती है। जो मनुष्य काम आदि (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) पांचों दोषों के वश में नहीं होता किन्तु उनसे राजविद्यानुसार काम लेता है वह दिव्यशक्ति और प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त करता है। परमात्मा ने अपनी इच्छा से सब से प्रथम आकाश बनाया और आकाश से वायु तथा वायु से तेज और तेज से जल एवं जल से पृथ्वी की उत्पत्ति की। उक्त क्रमानुसार ही इन पांचों तत्वों की उत्पत्ति जाननी चाहिये ॥४-५-६-७॥

कामक्रोधविमोहानां लोभाहंकारयोस्तथा ।
पंचतत्वैः समुत्पत्ति र्जायते सर्वदा क्षितौ ॥८॥

तैश्च कामादिभिर्दोषैः धृत्या दानस्य तेजसः।
शौर्यस्य स्वामिभावस्य संप्राप्तिः संप्रजायते ॥९॥

प्राप्त्यानया स्वदेशस्य भाषायां भोजने तथा
पुरुषार्थे विवाहे च वेशे प्रीतिः सदा भवेत् ॥१०॥

प्रीत्या धर्मधनस्त्रीणां प्राणानां भूतलस्य च।
तदा ज्ञाने च योगे च स्थितिः संजायते नृणाम् ॥११॥

भाषार्थः—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इनकी उत्पत्ति संसार में उक्त पांचों तत्वों से ही होती है। और उनही कामादिक पांचों दोषों से धैर्य, दान, तेज, शौर्य, (पराक्रम) और स्वामिभाव की प्राप्ति जाननी चाहिये। इस प्राप्ति से अपने देश तथा मातृभाषा और भोजन वेश एवं पुरुषार्थ में तथा विवाह में प्रीति उत्पन्न होती है। स्वदेश की प्रीति से धर्म दारा (स्त्रियां) पृथ्वी धन और प्राण इनकी प्रीति होती है तब ही ज्ञान और योग में स्थिति होती है ॥८-९-१०-११॥

राजविद्याभ्यासप्रयोजनम्

अभ्यासाद्राजविद्यायाः न्याये धर्मे निरन्तरम्।
अभये चापिसारल्ये ह्याचारे प्रेरणा भवेत् ॥१२॥

प्रेरणायाः समुत्पत्तिः गाम्भीर्योत्साहयोरपि।
बुद्ध्या पराक्रमेणापि शुद्धभावः प्रजायते ॥१३॥

भाषार्थः—श्रीराजविद्या के अभ्यास से न्याय, धर्म, अभय, सरलता और शुद्धाचरण में प्रेरणा होती है और उस प्रेरणा से गम्भीरता और उत्साह की भी प्राप्ति होती है बुद्धि तथा पराक्रम से शुद्धभाव उत्पन्न होता है ॥१२-१३॥

आत्मवत्सर्वभूतनां सुखं दुःखंविलोकयेत्।
ज्ञानात्तत्वं साधुवीक्ष्य मतिं कार्ये नियोजयेत् ॥१४॥
दीनानां रक्षणं कुर्यात् सदाचारमुपाचरेत्।
इन्द्रियाणि शरीरञ्च प्रकुर्यात्स्ववशे नृपः ॥१५॥

भापार्थः—अपनी आत्मा के सुख तथा दुःखों के समान सम्पूर्ण प्राणियों के सुख और दुःख को देखना चाहिये। तथा ज्ञान से भलीभांति तत्व को देखकर प्रत्येक कार्य में बुद्धि लगानी चाहिये। तथा दीन मनुष्यों का रक्षण करना चाहिये, सदाचार का पालन करना चाहिये, तथा इन्द्रिय और शरीर को अपने वश में रखना चाहिये ॥१४-१५॥

जितेन्द्रियत्वं पुंसां तु बुद्धि धरति सर्वदा।
जितेन्द्रियस्य प्रकृतिः दीर्घमायु र्बलं मतिम् ॥१६॥
पराक्रमं च वीरत्वं तेजोवत्वं च पौरुपम्।
समुत्साहं विलभते सुखेन सर्वदा क्षितौ ॥१७॥

भापार्थः—जितेन्द्रियपन मनुष्य की बुद्धि ही धारण कर सकती है अर्थात् मनुष्य ही इन्द्रियों को जीत सकता है तथा जितेन्द्रिय मनुष्य की संतान दीर्घायु, बल, बुद्धि, पराक्रम, वीरता तेज पुरुपार्थ और उत्साह को सर्वदा सुख पूर्वक प्राप्त कर सकती है ॥ १६-१७॥

समे राज्याभिलाषाश्च क्षत्रिया राजविद्यया।
दिव्यशक्तेश्च संप्राप्तिं गृह्णंतु मंगलेच्छया ॥१८॥

भापार्थः—राज्य को प्राप्त करने की इच्छा वाले क्षत्रियों को चाहिये कि राजविद्या के ज्ञान से दिव्य शक्तियों की प्राप्ति को अपने कल्याण की इच्छा से सीखें ॥१८॥

कामनायाः प्रयोजनम्

कामेनैव प्रकुर्वीत भूपतिर्धर्मसंचयम्।
संचितस्य च धर्मस्य रक्षणं समुपाचरेत् ॥१९॥

साधुरीत्योपदेशस्य धार्मिकस्य प्रचारणम्।
धर्मदानमिति ख्यातं कामस्यैतत्प्रयोजनम् ॥२०॥

भाषार्थः—राजा अपनी इच्छा से धर्म का संचय करे। संचित किये हुये धर्म का रक्षण करे। तथा भलीभांति धर्म के प्रचार को करना यह धर्म का दान कहा गया है। एवं काम (इच्छा) का भी यही प्रयोजन कहा गया है ॥१७-१९॥

क्रोधप्रयोजनम्

कोपानलस्याश्रयणं विधाय
रणस्थले पूर्णतयारिवृन्दम्।
विजित्य धर्मेण नृपो धरित्रीं
सम्प्राप्नुयात् क्रोधफलं प्रदिष्टम् ॥२१॥

सम्प्राप्तभूमेः परिरक्षणञ्च
दानं प्रकुर्यादपि भूमिनाथः।
स्वकीयकोपस्य फलं पृथिव्याः
प्राप्तिश्च रक्षा परिदानमेव ॥२२॥

भाषार्थः—राजाको चाहिये कि अपनी क्रोधरूप अग्नी का आश्रय प्राप्त करके पूर्ण रूप से शत्रुओं के समूह को रणस्थली (युद्ध करने की भूमि) में धर्म पूर्वक जीत कर पृथ्वी को प्राप्त करे यही

क्रोध का परिणाम कहा गया है। तथा राजा उस प्राप्त की हुई भूमि की रक्षा और उसका दान भी करे इसलिये उसके क्रोध का परिणाम, भूमि प्राप्ति, भूमि रक्षा, और भूमि दान ही कहा गया है। अर्थात् क्षत्रियों में भूमि भाग देना है ॥२१-२२॥

लोभप्रयोजनम्

लोभमाश्रित्य धर्मेण कुर्याद्द्रव्यस्य संग्रहम्।
तस्य संरक्षणं दानं लोभस्यास्ति प्रयोजनम् ॥२३॥

भापार्थः—लोभ का अश्रयण करके धर्म पूर्वक धन का संग्रह करना चाहिये तथा उस धन की रक्षा और उसका दान देना यह लोभ का प्रयोजन कहा गया है ॥२३॥

मोह प्रयोजनम्

मोहमाश्रित्य नारीणां वंधूनां संततेरपि।
संग्रहं मानवः कुर्यात् रक्षणं चापि सर्वदा ॥२४॥
यथायोगप्रयुक्त्यैव स्वजातेर्वरमीक्ष्य च।
कुर्याद्विवाहं कन्याया दानमत्र समीरितम् ॥२५॥

भापार्थः—मनुष्य को चाहिये कि मोह का अश्रयण करके स्त्री बान्धव संबन्धी और संतति का संग्रह (अपनाना) और रक्षा करे तथा यथायोग युक्ति से अपनी जाति में वर को देखकर विवाह संस्कार की विधि से कन्या का विवाह करे यही दान कहा गया है ॥२४-२५॥

अहंकारप्रयोजनम्

अहंकारं समाश्रित्य योगेन प्राणसंग्रहं।
पथ्येन प्राणसंरक्षा प्राणदानं रणस्थले ॥२६॥

भाषार्थः—मनुष्य को चाहिये कि अहंकार का आश्रयण करके प्राणों का योग युक्ति से संग्रह करे और पथ्य से उनकी रक्षा करे और युद्ध में प्राणों का दान भी करे ॥२६॥

संग्रामे वीरतां कुर्यात् सर्वदा विजयेच्छया ।
सदोपयोगिकार्येषु तेजो धैर्यं च पौरुषम् ॥२७॥

भाषार्थः—विजय की इच्छा से सर्वदा संग्राम में वीरता प्रकाशित करनी चाहिये और उपयोगी कार्यों में तेजी, धीरज और पुरुषार्थ करना चाहिये ॥२७॥

योग्यदानम्

देशं कालञ्च संवीक्ष्य सर्वदैव महीपतिः ।
सुकृताय सुपात्राय दाने मतिमुपाचरेत् ॥२८॥

योग्यं वरं विलोक्यैव स्वजातिपरिसंभवम् ।
कन्यादानं प्रकुर्वीत योग्यदानमितिस्मृतम् ॥२९॥

भाषार्थः—देश तथा काल (समय) को भलीभांति देखकर ही सर्वदा राजा सुकृत और सुपात्र के लिये दान देने में बुद्धि रक्खे। तथा योग्य वर को देखकर ही कन्या का दान अपनी जाति में करना चाहिये इसी दान को सब से योग्य दान कहा गया है ॥२८-२९॥

उच्चभावः क्षत्रियाणां स्वान्ते बसतु सर्वदा ।
अन्यथा भ्रष्टतां यांति स्वधर्मात्पृथिवीतले ॥३०॥

भाषार्थः—क्षत्रियों के हृदयों में सर्वदा उच्चभाव रहना चाहिये यदि उच्चभाव वे न रक्खें तो इस संसार में अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाते हैं ॥३०॥

मातृभाषापरित्यागे चिरस्यानुभवो नृणाम् ।
विलोपतां समायाति शास्त्राणामपि सर्वदा ॥३१॥
धारणाभिर्युतोधर्मः विनाशं चापि गच्छति ।
धर्मस्य प्रविनाशेन नश्यंतिमानवाः समे ॥३२॥

भाषार्थः—मातृभाषा के परित्याग कर देने पर पूर्व पुरुषों द्वारा होने वाला चिरकाल का अनुभव (तजुरबा) मनुष्यों का नष्ट हो जाता है तथा शास्त्रों (न्याय धर्मादि) का भी अनुभव नष्ट हो जाता है एवं चार धारणाओं से युक्त धर्म भी नष्ट होजाता है तथा धर्म के नाश होने से मनुष्य नाश हो जाते हैं याने बिगड़ जाते हैं ॥३१-३२॥

मातृभाषापरिज्ञस्तु लोकस्यानुभवी तथा ।
न्यायाधीशः पूर्णयोग्यो नीतिशास्त्रविशारदः ॥३३॥
धर्मेष्टनिष्ठः सुकुलः शुद्धोच्चभावसंयुतः ।
सह्यविचारसंयुक्तो विश्वेशभयसंयुतः ॥३४॥
निष्क्रोधी वा पिनिर्लोभी न्यायाधीशः प्रजाप्रियः ।
एतस्मात्तु प्रजा सर्वाः भूपं ददति चाशीषम् ॥३५॥
ततोराज्यं समायाति दृढतामेति मंगलम् ।
न्यायाधीशमतो भूपः सुयोग्यं विनियोजयेत् ॥३६॥

भाषार्थः—जिस देश में न्यायाधीश नियुक्त किया जाय वहां की मातृभाषा का अच्छी तरह जानने वाला जगत का अनुभवी पूर्णयोग्य नीतिशास्त्र का प्रवीण होना चाहिये तथा धर्म और इष्ट में श्रद्धा रखने वाला और कुलीन शुद्ध और उच्चभाव से युक्त, सहन-विचारशक्ति संयुक्त, ईश्वर से डरने वाला, क्रोध रहित, लोभ रहित, ऐसा न्यायाधीश प्रजा प्रिय होता है तथा ऐसे न्यायाधीश से प्रजा प्रमुदित होकर राजा को आशीष देती है जिससे राज्यदृढ़ होता है

और कल्याण रहता है इसलिये राजा को चाहिये कि न्यायाधीश सदा योग्य रक्खे ॥३३-३४-३५-३६॥

स्वदेशीयभोजनम्

स्वदेशजं वा प्रबलान्युतं यत्
सुभोजनं तेन विना नराणाम् ।
संजायते पौरुषहानिरेव
तदाग्निरक्षाऽकुशला भवन्ति ॥३७॥

भाषार्थः—अपने देश के बलदायक भोजन के विना मनुष्यों के पुरुषार्थ की हानि होती है तब वे पृथ्वी की रक्षा नहीं कर सकते हैं ॥३७॥

वीरवेषपरित्यागपरिणामः

वीरवेषपरित्यागे सर्वदा मनसो गतिः ।
प्रेरणा वा विचारश्च प्रतिकूलोभि जायते ॥३८॥
संशुद्धा भावना वापि प्राप्नोति परिवर्तनम् ।
पश्चाद्धनस्य जायेत विनाशः सर्वथा क्षितौ ॥३९॥
शुद्धभावविकृत्यैव प्राणिनो न कदाचन ।
यथेष्टजातावुत्पत्तिं प्राप्नुवन्ति महीतले ॥४०॥

भाषार्थः—वीरवेश के त्याग देने से मन की गति विचार तथा प्रेरणा प्रतिकूल हो जाती है (फिर जाती है)। तथा शुद्ध-भावना भी परिवर्तित (विकृत) हो जाती है इसके अनन्तर धन का सर्वथा नाश हो जाता है एवं शुद्ध भाव के ही विकृत (विगड़) जाने से मनुष्य कभी अपनी इच्छित जाति में जन्म प्राप्त नहीं कर सकते । जिससे जाति घट जाती है ॥३८-३९-४०॥

स्वजातौ च विवाहस्य परित्यागेन जायते ।
नारीणां सन्ततेश्चापि जातेर्नाशोनिरन्तरम् ॥४१॥

संकराणां समुत्पत्ति र्जायते भूतले तदा ।
पापानिसंप्रजायन्ते दुःखान्यपि निरन्तरम् ॥४२॥

भाषार्थः—अपनी जाति में विवाह के परित्याग से अर्थात् निज जाति में विवाह न करने से स्त्री सन्तान तथा जाति का भी नाश हो जाता है । तब संसार में वर्णसंकर सन्तान की उत्पत्ति होती है तथा पाप और दुःख होते रहते हैं ॥४१-४२॥

पौरूषत्यागः

पौरुषस्य परित्यागात् दुःखदग्धस्तुमानवः ।
प्राणनाशमवाप्नोति ततो नर्कमसंशयम् ॥४३॥

भाषार्थः—पुरुषार्थ के त्याग देने से मनुष्य प्राणों के विनाश को प्राप्त करता है इसके बाद नर्क भोगता है अर्थात् उसका सर्वस्व नाश हो जाता है ॥४३॥

परम्परास्थितिः

धरा धर्मेणैवानवरतमवाप्नोत्यचलतां
तथा द्रव्यस्यास्ति स्थितिरिह समस्ते तु भुवने ।

धनेनाप्तिः स्त्रीणां परमरमणीनां मृगदृशां
तथा ताभिः सौख्यं प्रभवति परा सन्ततिरिह ॥४४॥

सन्तत्या संप्रजायेत स्वकुलस्य परम्परा ।
सौख्यं प्राप्नोति सर्वस्वं लोकयोरुभयो र्जनः ॥४५॥

भाषार्थः—यह पृथ्वी धर्म से ही निरन्तर स्थिरता को प्राप्त होती है तथा उसकी स्थिरता से धन की स्थिति समस्त संसार में होती है तथा धन से रमण करने में श्रेष्ठ स्त्रियों की प्राप्ति होती है और उन स्त्रियों से श्रेष्ठ सन्तति होती है तथा उस श्रेष्ठ सन्तति से अपने वंश की परम्परा होती है और दोनों लोकों में मनुष्य सुख प्राप्त करता है ॥४४-४५॥

स्वकीयेष्टानुरागेण योगमाया प्रसीदति ।
शुद्धोच्चैश्वरभावांश्च क्षत्रियेभ्यो ददात्यपि ॥४६॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में प्रेम रखने से योगमाया प्रसन्न होती है तथा शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव क्षत्रियों को प्रदान करती है ॥४६॥

शुद्धोच्चैश्वरभावानां त्रिशूलं ज्ञानकारणम् ।
सत्वस्य शुद्धभावेन वृद्धिः संजायते ध्रुवम् ॥४७॥

रजसः प्रोच्च भावेन शांतिः संजायते क्षितौ ।
प्रभुत्वात्तमसश्चात्र स्थितेः सम्यक् समुद्भवः ॥४८॥

स्वार्थाधिक्याद्बुद्धिमध्ये हानिः सम्यक् प्रजायते ।
तदान्यायस्य हानिस्तु सर्वथैव सुनिश्चितम् ॥४९॥

भाषार्थः—शुद्ध, उच्च और ईश्वर भावों को बताने वाला त्रिशूल कहा गया है जिसमें सत्वगुण के शुद्धभाव से वृद्धि, रजोगुण के उच्चभाव से शांति और तमोगुण के ईश्वर भाव से संसार में स्थिति बनी रहती है । स्वार्थ की अधिकता से बुद्धि में हीनता आ जाती है और बुद्धि में हानि होने से न्याय में हानि होना निश्चित ही है ॥४७-४८-४९॥

विना न्यायेन संसारे वृद्धिः शान्तिश्च नश्यति ।
निः स्वार्थत्वात्सदा दाने समुत्साहः समीरितः ॥५०॥

भाषार्थः—विना न्याय के संसार में वृद्धि और शांति नष्ट हो जाती है इसका उपाय यह है कि स्वार्थ दोष का परित्याग करके दान में उत्साह रक्खा जाय ॥५०॥

बले संजायते हानि आधिक्यात्सुखभोगयोः ।
तस्मा त्संरक्षणार्थं हि प्रतिकारः श्रमो मतः ॥५१॥

भाषार्थः—सुख तथा भोग की अधिकता से वल में हानि हो जाती है इसलिये रक्षा करने के निमित्त परिश्रम का अभ्यास करना इसका प्रतिकार है ॥५१॥

समाधिक्यात्तुमोहस्य हानिः सौख्ये प्रजायते ।
ततो नीरोगतायाश्च हानिः संजायते ध्रुवम् ॥५२॥
प्रतीकारोऽस्य विज्ञेयः स्वेष्टस्यैवालम्बनम् ।
ईश्वराराधने भक्तिः शुद्धाचारावधारणम् ॥५३॥

भाषार्थः—मोह की अधिकना से सुख में हानि हो जाती है सुख में हानि होने से नीरोगता की हानि होती है इसका उपाय अपने इष्ट का अवलम्बन करना तथा ईश्वर की आराधना में भक्ति और शुद्ध आचरण का ग्रहण करना है ॥५२-५३॥

ऐश्वर्यस्य समाधिक्यात् वृद्धिर्मानस्य जायते ।
तयाश्रेष्ठांमतिंस्वीयां सम्यक् जानाति मानवः ॥५४॥
तदा शुद्धविचारेऽपि हानिः संजायते ध्रुवम् ।
श्रेष्ठविद्योपदेशोवा हानिः स्यात् सुखलिप्सया ॥५५॥
ततोराज्येऽभिजायन्ते सर्वथाघोरविप्लवाः ।
अल्पमायुश्च संप्राप्य विनाशमेति भूपतिः ॥५६॥
राजविद्योपदेशस्य प्रबन्धः स्यात्सदोत्तमः ।
प्रतीकारोऽस्यविज्ञेयः सर्वदा भूमिवल्लभैः ॥५७॥

भाषार्थः—ऐश्वर्य (प्रभुत्व) की अधिकता से मान (घमंड) की वृद्धि होती है और मान की वृद्धि से मनुष्य अपनी बुद्धि को ही श्रेष्ठ मानता है तब शुद्ध विचार में भी हानि हो जाती है तथा अल्प (थोडी) अवस्था (उमर) प्राप्त कर नाश को प्राप्त होता है इसका उपाय यह है कि राजविद्या के उपदेश से उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये। क्योंकि इससे राजा तत्व से (सार की बात से) चलायमान नहीं हो सकता यही इसका प्रतिकार है ॥५४-५५-५६-५७॥

सह्येन प्रविचारेण शुद्धोच्चाभ्यां प्रजायते ।
भावाभ्यां सुमतिः पुंसां तया न्यायावलंबनम् ॥५८॥

तत्स्याद्धर्मेण संयुक्तो बुद्धिपक्षः समीरितः ।
न्यायाधीशगुणश्चात्र गौरवर्णस्तथा स्मृतः ॥५९॥

भाषार्थः—सहन विचार शक्ति तथा शुद्ध और उच्च भाव से मनुष्यों की उत्तम बुद्धि हो जाती है तथा उस सुमति से धर्मयुक्त न्याय का अवलम्बन करना यह पहला बुद्धि पक्ष है तथा यही पक्ष न्यायाधीश का गुण कहा गया है तथा ऐसे न्यायाधीश का गौरवर्ण होना चाहिये ॥५८-५९॥

तेजसा तपसा धृत्या पुरुषार्थेन नित्यशः ।
अभ्यासासंगशक्तिभ्या-मैश्वर्येणाभिरक्षणम् ॥६०॥

द्वितीयो बुद्धिपक्षोऽत्र बलाधीशगुणः स्मृतः ।
रक्तश्यामस्वरूपः स्यात् तत्प्रभावस्य हेतवे ॥६१॥

भाषार्थः—तेज, तप, धैर्य, पुरुषार्थ, अभ्यास और असंग शक्ति एवं स्वामिभाव से रक्षा करना यह द्वितीय बल पक्ष है तथा यही पक्ष बलाध्यक्ष का गुण कहा गया है बलाधीश का संसार पर प्रभाव पड़े इसलिये बलाधीश का लाल और श्याम स्वरूप होना चाहिये ॥६०-६१॥

स्वकीयेष्टे दृढत्वन्तु सदाधारः प्रकथ्यते ।
धर्मस्य मूलमाख्यातं दयाऽहिंसावलंवनम् ॥६२॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में दृढ़ता रखना आधार कहा गया है तथा दया और अहिंसा का अवलम्बन करना ही धर्म का मूल कहा गया है ॥६२॥

विचारशक्तिसंयुक्तं निर्मितं मानवं वपुः ।
उच्चभावाद्विचारस्य सर्वं साधयितुंक्षमः ॥६३॥

भाषार्थः—मनुष्य का शरीर विचार शक्ति से युक्त वना हुआ है उसमें मनुष्य अपने विचार के उच्च भाव से सम्पूर्ण साधना करने को समर्थ है ॥६३॥

नीचभावेषु संलग्नः सर्वनाशाय गच्छति ।
तस्मान्नरः सदायोग्यः शुभांकुर्याद्विचारणाम् ॥६४॥

भाषार्थः—नीच भावों में लगा हुआ मनुष्य सर्वनाश को प्राप्त होता है इसलिये योग्य मनुष्य को चाहिये कि अपनी विचारशक्ति को सर्वदा उत्तम रक्खे ॥६४॥

इति द्वितीयोपदेशः

तृतीयोपदेशः

बलरक्षा निरूपणम्, द्वादश बलानि ।

शंकर उवाच

द्वादशानां बलानाञ्च कृत्वा वर्णनमुत्तमम् ।
रक्षां संवर्णयिष्यामि श्रूयतां गिरिनन्दनि ! ॥१॥

भाषार्थः—हे पार्वति ! अब मैं बारह प्रकार के वलों का उत्तम रीति से वर्णन करके रक्षा का वर्णन करूंगा उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥१॥

प्रथमंबलम्

अवयवैर्निखिलैश्च समन्वितो
निजशरीरमनोबलसंवृतः ।
निखिलबन्धुजनैश्च युतोजनः
भवतु तत्कथितं प्रथमं बलम् ॥२॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण अवयवों (शरीर के अंगों) से युक्त, अपने शारीरिक और मानसिक (आत्मिक) वल के सहित, सम्पूर्ण वन्धु-जनों और सम्बन्धीयों से जो युक्त, मनुष्य हो तो यह पहला वल कहा गया है ॥२॥

द्वितीयंचतृतीयंबलम्

द्वितीयन्तु बलम्प्रोक्तं तपः पुरुषकारयोः ।
द्रव्यस्य चापि कोषानां विद्यानां स्याच्चतृतीयकम् ॥३॥

भापार्थः—तप और पुरुपार्थ का दूसरा बल कहा जाता है। द्रव्य (सम्पत्ति) कोप (खज़ाना) और विद्याओं का होना तीसरा बल कहा गया है ॥३॥

चतुर्थंबलम्

धर्मवीरत्वयोरेवं बलन्तुर्यं निगद्यते ।
यद्बलाश्रयगो भूपो धर्मवीरः प्रजायते ॥४॥

भापार्थः—धर्म और वीरता का बल चौथा बल है तथा इसी बल को प्राप्त कर राजा धर्मवीर कहा जाता है ॥४॥

पञ्चमम्बलम्

पराक्रमस्य पुण्यस्य राज्यस्यापि निरन्तरम् ।
पञ्चमं बलमेतद्धि कल्याणानां च कारणम् ॥५॥

भापार्थः—पराक्रम (शौर्य) पुण्य तथा राज्य का बल सम्पूर्ण कल्याण का कारण ये पांचवां बल कहा गया है ॥५॥

षष्ठंबलम्

बुद्धे श्चतुरतायाश्च सत्यभावस्य सन्ततम् ।
ज्ञानस्यापि बलंज्ञेयं षष्ठमेतत्सुनिश्चितम् ॥६॥

भापार्थः—बुद्धि की चतुरता, सत्यभाव तथा ज्ञान का बल निश्चय करके छठा बल जानना चाहिये ॥६॥

सप्तमंचाष्टमंबलम्

सप्तमश्चास्त्रशस्त्राणा-मभ्यासस्यतु यद्बलम् ।
मित्रस्य बन्धोः प्रीतेः स्या त्साहाय्यस्याष्टमं बलम् ॥७॥

भाषार्थः—अस्त्र तथा शस्त्रों के अभ्यास का सातवां बल कहा गया है। बान्धव सम्बन्धी और मित्र इनकी प्रीति तथा सहायता का आठवां बल कहा गया है ॥७॥

नवमंबलम्

नित्याभ्यस्तवरूथिन्याः स्ववशायास्तुयद्बलम् ।
नवमन्तत्तु सम्प्रोक्तं राज्यरक्षणहेतवे ॥८॥

भाषार्थः—अपने आधीन तथा नित्य अभ्यास को प्राप्त की हुई सभ्य सेना का जो बल है वह राज्य की रक्षा के निमित्त नवमां बल कहा गया है ॥८॥

दशमम्बलम्

समयमवृथीकृत्य विचारेषु नियोजनम् ।
स्वकीयराज्यकार्याणां बलन्तद्दशमं स्मृतम् ॥९॥

भाषार्थः—समय को व्यर्थ (फजूल) न गवाँ कर अपने राज्य के कार्यों के विचारों में लगाना दशमा बल कहा गया है ॥९॥

एकादशंमबलम्

दृढस्थानादिकानाञ्च दुर्गाणामपि यद्बलम् ।
तदेकादशमं ज्ञेयं रक्षायैभूपतेर्वपोः ॥१०॥

भाषार्थः—दृढ़ (मजबूत) स्थानादिक (रहने आदि के स्थान तथा दुर्ग (किलों) का जो बल है वह राजा के शरीर की रक्षा के निमित्त ग्यारहवां बल कहा गया है ॥१०॥

द्वादशमंबलम्

स्वीयेष्टयोगाश्रयणस्यचोक्तं
बलन्तु तद्द्वादशमंमनोज्ञम् ।
अग्रे प्रवक्षामि बलस्य कालं
देशं वयोनिर्बलता निदानम् ॥११॥

भाषार्थः—अपने इष्ट तथा योग का आश्रयण करना यह सर्वोत्तम बारवां बल कहा गया है । इसके आगे बल का काल तथा देश अवस्था और निर्बलता के कारण को कहूंगा ॥११॥

जलवायुशुद्धिमीक्षेत सर्वेषामेवहेतवे ।
शुद्धाभ्यां जलवायुभ्यां स्वास्थ्यरक्षा विजायते ॥१२॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण प्रजा और अपने कल्याण के लिये राजा जलवायु की शुद्धि के प्रबन्धों को देखता रहे, क्योंकि शुद्ध जलवायु से ही स्वास्थ्य की रक्षा होती है ॥१२॥

मनसश्चात्मनः शुद्धिं देहिनामवलोकयेत् ।
न्यायस्य समयेभूपो राज्यपालनतत्परः ॥१३॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण मनुष्यों के मन और आत्मा की शुद्धि को राज्य के पालन में लगा हुआ राजा न्याय करने के समय देखे ॥१३॥

स्थूलशरीरस्य भोजनम्

स्थूलस्य तु शरीरस्य भोजनं सात्विकं स्मृतम् ।
साधारणन्नियमितं पथ्यम्पुष्टिकरन्तथा ॥१४॥

भाषार्थः—स्थूल शरीर का भोजन सात्विक (सत्व गुण से युक्त) साधारण नियमित (नियमबद्ध) तथा पथ्य (हितकर) पुष्टि (ताकत) को पैदा करने वाला होना चाहिये ॥१४॥

सूक्ष्मस्य च सदाचारः भोजनं सम्यगीरितम् ।
रोगाः स्थूलस्य जायंते ज्वरकासक्षयादयः ॥१५॥

भाषार्थः—सूक्ष्म शरीर अथवा मन का भोजन सदाचार (अच्छा आचरण) से रहना ही कहा गया। है और स्थूल शरीर (दैहिक) रोग ज्वर कास क्षय आदि कहे गये हैं ॥१५॥

विकाराः सूक्ष्मदेहस्य जायंते चापि दारुणाः ।
कामक्रोधविलोभाश्च सैर्षाद्वेषादयस्तथा ॥१६॥

भाषार्थः—सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन के भयंकर रोग, काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा द्वेषादि कहे गये हैं ॥१६॥

वीर्यक्षयो भवति पञ्चशरस्य वृद्धौ
वीर्यक्षयाद्भवति सन्ततिशक्तिहीनः ।
कामीजनः प्रजनयत्यधिकाश्च कन्या
उत्पादयेदपि सुतान्परमाल्पसंख्यान् ॥१७॥

भाषार्थः—कामेच्छा के बढ़ने पर वीर्य की क्षीणता होती है तथा वीर्य के क्षीण हो जाने से सन्तति उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा कामी पुरुष अधिक कन्याओं को उत्पन्न करता है यदि पुत्र उत्पन्न भी हों तो कम संख्या में होते हैं ॥१७॥

रमणोपदेशः

प्रियासार्द्धं वर्षेरमयतु तृवारं यदि नर-
स्तदा दीर्घायुष्मान्प्रभवति सुतस्तस्य बलवान् ।

स्वतेजोभिस्सैवाप्रतिहतगतिः सर्वविषये
परो मान्यो गण्यः सकलजगदानन्दजननः ॥१८॥

भाषार्थः—यदि मनुष्य स्त्री के साथ एक वर्ष में तीन वार रमण (भोग) करे तब उसका पुत्र वलवान् और दीर्घायु वाला होता है और वह पुत्र अपने प्रताप से सम्पूर्ण विषयों में अप्रतिहतगती (सम्पूर्ण विषयों के प्राप्त करने में उसकी वुद्धि प्रवल होती है) होता है अतः संसार में वह माननीय और गणनीय तथा संसार को प्रसन्न करने वाला होता है ॥१८॥

ऋतुमती युवती किल जायते
प्रकृतितः प्रतिमाससमागते।
परिकरोतु जनो रमणन्तदा
सवलधार्मिकसन्ततिवाञ्छया ॥१९॥

भाषार्थः—प्रत्येक महीने में स्वभाव से ही स्त्री ऋतुमती (मासिक धर्म वाली) होती है उसी समय मनुष्य को ऋतुधर्म व्यतीत होने पर वलवान् और धार्मिक संतति को प्राप्त करने की इच्छा से भोग करना चाहिये ॥२०॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु नवावृत्तन्तुमैथुनम्।
हेमन्तशिशिरग्रीष्मे-षुतृवारंभजेदपि ॥२०॥

भाषार्थः—वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु में नौ वार स्त्री के साथ भोग करना चाहिये अर्थात् पक्ष में एक वार मैथुन की आज्ञा है। हेमन्त शिशिर और ग्रीष्मऋतु में तीन वार उपभोग करना चाहिये अर्थात् उक्त ऋतुओं के दो २ मासों में एक २ वार मैथुन करना चाहिये ॥२०॥

एवन्नियमबद्धस्य पुरुषस्य प्रजायते।
सन्ततिर्योग्यतापूर्णा सवला दीर्घजीविनी ॥२१॥

भाषार्थः—इस प्रकार नियम पूर्वक भोग करने वाले पौरुषवान पुरुष की संतान योग्य, वलवती और दीर्घजीविनी होती है ॥२१॥

कलौया तरूणावस्था वर्ण्यतेऽत्राखिलामया।
युगेष्वन्येषुजायेत स्वयमुद्भासिताचसा ॥२२॥

भाषार्थः—कलियुग में जो तरुणावस्था होती है वह यहां पर वर्णन की जाती है किन्तु यही तरुणावस्था अन्य युगों में जितनी होती है स्वयम् (अपने आप) मनुष्य को मालुम होजाती है ॥२२॥

शीतप्रदेशे तरुणावस्था

शीताधिकप्रदेशे तु तारुण्यं लभते नरः।
वर्षे श्रेष्ठतरः पञ्च–चत्वारिंशत्समागते ॥२३॥

भाषार्थः—शीत प्रदेश में (ठंडे मुल्क में) श्रेष्ठ मनुष्य पैंतालीस वर्ष की अवस्था में तरुणावस्था (यौवन) प्राप्त करता है ॥२३॥

त्रिंशेवर्षे शीतदेशे नारीतारुण्यमेति च।
एवं देशप्रधानत्वा–ज्जायते वोत्तमा दशा ॥२४॥

भाषार्थः—तीस वर्ष में स्त्री यौवन प्राप्त करती है। इस प्रकार देश के भेद से स्त्री पुरुषों की तरुणावस्था कही गई है ॥२४॥

मध्यमा तरूणावस्था पुरुषस्य प्रजायते।
पञ्चविंशे तथा वर्षे नार्योः विंशे प्रजायते ॥२५॥

भाषार्थः—शीताधिक प्रदेश में पुरुष की मध्यम तरुणावस्था पच्चीस वर्ष में और स्त्री की वीस वर्ष में होती है ॥२५॥

अष्टादशमवर्षांशौ कनिष्ठा तरुणा दशा ।
पुरुषस्य स्त्रियश्चापि वर्षे स्यात् षोड़षे गते ॥२६॥

भापार्थः—अठारवें वर्ष के प्राप्त होने पर पुरुष की और सोलहवें वर्ष में स्त्री की अधम तरुणावस्था होती है ॥२६॥

साधारणदेशे तारुण्यम्

नात्युष्णो नाति शीतश्च देशः साधारणः स्मृतः ।
तत्रत्या कथ्यतेऽवस्था उत्तमा मध्यमाधऽ मा ॥२७॥

भापार्थः—न तो अत्यन्त उष्ण न अति शीत ऐसा देश साधारण कहा जाता है तथा ऐसे देश में उत्पन्न हुए पुरुष तथा स्त्री की तरुणावस्था कही जाती है ॥२७॥

उत्तमा तरुणावस्था जायते मानवस्य च ।
पञ्चविंशे तथा वर्षे स्त्रियो विंशे समीरिता ॥२८॥

भापार्थः—साधारण देश में मनुष्य की पच्चीसवें वर्ष में और स्त्री की उत्तम तरुणावस्था वीसवें वर्ष में होती है ॥२८॥

मध्यमा तरुणावस्था वर्षेऽष्टादशमे भवेत् ।
नरस्य, षोडशे वर्षे नार्यः संजायते तथा ॥२९॥

भापार्थः—मध्यम तरुणावस्था (वीच का यौवन) मनुष्य की अठारह वर्ष में तथा स्त्री की सोलह वर्ष में होती है ॥२९॥

अधमा तरुणावस्था वर्षे स्यात् षोडशे तथा ।
पुरुषस्य स्त्रियश्चापि वर्षेस्यात्त्रयोदशे ॥३०॥

भाषार्थः—नीची तरुणावस्था पुरुष की सोलह वर्ष में और स्त्री की तेरह वर्ष में होती है ॥३०॥

उष्णप्रदेशे तारुण्यम्

अत्युष्णदेशजातस्य नरस्य तरुणा दशा ।
वर्षे विंशेऽभिजायेत नार्यः स्यात्षोडषेतथा ॥३१॥

भाषार्थः—अत्यन्त उष्ण देश में उत्पन्न हुए मनुष्य की वीस में वर्ष में और स्त्री की सौलवे वर्ष में उत्तम तरुणावस्था होती है ॥३१॥

अष्टादशमवर्षाप्तौ तारुण्यम्मध्यमोजनः ।
चतुर्दशमवर्षाप्तौ नारी प्राप्नोति निश्चितम् ॥३२॥

भाषार्थः—अठारह वर्ष में मनुष्य और चौदह वर्ष में स्त्री मध्यम यौवन प्राप्त करती है ॥३२॥

पुरुषस्याधमावस्था वर्षेतुषोडशे भवेत् ।
स्त्रियः सम्यक् प्रजायेत वर्षे द्वादशमे गते ॥३३॥

भाषार्थः—मनुष्य की अधम तरुणावस्था सोलहवें वर्ष में एवं स्त्री की बारहवें वर्ष में होती है ॥३३॥

देशभेदेन सर्वाणि बलाङ्गानीरितानि च ।
येषां ज्ञानञ्चसम्प्राप्य बलवाञ्जायते नृपः ॥३४॥

भाषार्थः—इस प्रकार देश के भेद से सम्पूर्ण बल के अंगों को कहा गया है जिसके ज्ञान को प्राप्त करके राजा बल को प्राप्त करता है ॥३४॥

अपारं बल मेतद्धि न्यायरक्षावलम्बनम् ।
कर्मयोगश्च संप्रोक्तः राज्यस्यानेन संस्थितिः ॥३५॥

भाषार्थः—क्षत्रियों के लिये न्याय और रक्षा का अवलम्बन करना ही अपार बल तथा उनका कर्म योग कहा गया है एवं न्याय और रक्षा के अवलम्बन करने से ही राज्य की स्थिति है ॥३५॥

इति तृतीयोपदेशः

चतुर्थोपदेशः

बुद्धिकर्मयोगन्यायनिरूपणम्

ज्ञानेच्छाकृतिभिश्चात्र बुद्धिः संजायते द्विधा ।
स्वार्थिकी प्रथमा प्रोक्ता द्वितीया पारमार्थिकी ॥१॥

भावार्थः—ज्ञान, इच्छा तथा आकृति (चेष्टा) से दो प्रकार की बुद्धि होती है । उसमें प्रथम (पहली) स्वार्थिकी तथा दूसरी पारमार्थिकी बुद्धि कही गई है ॥१॥

अनेकयोनिमध्ये तु मनुष्यस्यात्रयद्वपुः ।
एतादृशं विरचितं मायया परमात्मनः ॥२॥

शुभं वाप्यशुभं कर्म विभिन्नजन्मनामपि ।
संशोधितुं विकर्तुं स्यात् मानवः सततं क्षमः ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की माया ने अनेक (पशु पक्षी आदि) योनियों में से मनुष्य का शरीर इस प्रकार का बनाया है कि जिस शरीर से अनेक जन्मों में किये हुवे, शुभ तथा अशुभ कर्मों को शुद्ध करने तथा विगाड़ने को मनुष्य समर्थ है ॥२-३॥

यद्ययं मानवः किंचित् विकुर्याच्छोधयेदपि ।
न काठिन्यं विजायेत तस्मात्कर्माणिशोधयेत् ॥४॥

भावार्थः—यदि यह मनुष्य किसी कर्म को सुधारे अथवा विगाड़े तो उसके लिये किसी प्रकार की कठिनता नहीं है अतः

मनुष्य को चाहिये कि अपने कर्मों को शुद्ध (ठीक पवित्र) बनाने का ही यत्न करे ॥४॥

यदा नरोऽभिलग्नः स्यात् स्वार्थेहानिविधायके ।
तदा सर्वस्वविध्वंसं करोत्यत्र न संशयः ॥५॥

भाषार्थः—जब मनुष्य हानि पैदा करने वाले स्वार्थ दोष में लीन होजाता है। तब वह निश्चित रूप से अपने सर्वस्व को नष्ट कर लेता है ॥५॥

परमार्थोऽभिलग्नस्तु स्वस्य सर्वान्मनोरथान् ।
संसाधयति जन्माप्तौ सर्वथा पृथिवीतले ॥६॥

भाषार्थः—जो मनुष्य परमार्थ (दूसरे के हित) में लगाहुआ है वह संसार में जन्म प्राप्त करने पर अपने सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर लेता है ॥६॥

स्वेच्छाचारशक्तियुक्तो मनुष्यो मायया कृतः ।
तस्मा न्नरः स्वाभिलाषं योग्ये कार्ये नियोजयेत् ॥७॥

भाषार्थः—अपनी इच्छा के अनुसार काम करने की शक्ति के सहित माया ने मनुष्य को बनाया है इसलिये अपनी इच्छा को योग्य कार्य में लगाना चाहिये ॥७॥

यदि ना स्वार्थमाश्रित्य कार्याणि साधयत्यपि ।
अल्पलाभाय वा नित्य-मल्प सौख्याप्तिहेतवे ॥८॥
मुहुर्मुहु स्त्ववाप्नोति सम्भवं नीचयोनिषु ।
तस्मात्सम्यग्विचार्यैव स्वार्थदोषंपरित्यजेत् ॥९॥

भाषार्थः—यदि मनुष्य नित्यप्रति थोड़े सुख, तथा थोड़े लोभ के लिये स्वार्थ का आश्रयण करके स्वार्थिकी बुद्धि से कार्यों को सिद्ध

भी कर लेता है तो वह वार २ नीच योनियों में जन्म प्राप्त करता है इसलिये भलीभांति इस वात का विचार कर स्वार्थ दोष को छोडदे ॥ ८-९॥

परमार्थविलग्नस्तु लाभं वाप्यक्षयंसुखम् ।
उच्चयोनौलभेत्जन्म परमार्थमतश्चरेत् ॥१०॥

भाषार्थः—जो मनुष्य परमार्थ में लगा हुआ है वह महान् लाभ, अक्षय सुख, तथा उच्च योनि में जन्म प्राप्त करता है इसलिये परमार्थ का आचरण करना चाहिये ॥१०॥

स्वभावस्यानुसारेण चरस्याप्यचरस्यच ।
जन्म संलभते जीवो मध्योच्चनीचयोनिषु ॥११॥

भाषार्थः—स्वभाव (प्रकृति) के अनुसार जीव चर अथवा अचरों की उच्च, मध्यम और अधम योनियों में जन्म प्राप्त करता है ॥११॥

वर्तमानस्य संजातैः कर्मभिः पूर्वजन्मनः ।
बुद्धिः संजायते पुंसां साच्च कर्मानुसारिणी ॥१२॥

भाषार्थः—वर्तमान समय में होने वाले कर्मों से तथा पूर्व जन्म कृत कर्मानुसार मनुष्यों की बुद्धि होती है । इसलिये वह बुद्धि कर्मों के अनुसार चलने वाली जानना चाहिये ॥१२॥

तस्माच्छुद्धविचारेण जनः कर्माणिसाधयेत् ।
पौरुषेण सुखोत्पत्तिः नान्यथा जायते क्वचित् ॥१३॥

भाषार्थः—इसीलिये शुद्ध विचार से मनुष्य कर्मों को शुद्ध करले । पुरुषार्थ से सुख की उत्पत्ति होती है अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥१३॥

युद्धमात्रं दुःखमात्रं फलं लोके ह्यधर्मजम् ।
फलं कस्याप्यधर्मस्य तत्कालं लभते नरः ॥१४॥
कस्यापि कालसंप्राप्तौ कस्यचित्पुण्यसंक्षये ।
जन्मन्यस्मिन्परे वापि फल प्राप्तिस्त्व संशयम् ॥१५॥

भाषार्थः—युद्धमात्र (जितनी भी लड़ाइयां) अथवा सम्पूर्ण दुःख संसार में अधर्म (अन्यायादि) का परिणाम कहा गया है। किसी अधर्म का फल मनुष्य तत्काल प्राप्त करता है तथा किसी का कुछ समय व्यतीत होने पर एवं किसी का पुण्यों के नष्ट हो जाने पर। इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में फल प्राप्ति अवश्यमेव होती है॥ १४-१५॥

सुकृतदुस्कृतयोर्लोके फलं नश्यति नोकचित् ।
एतज्जन्मसुकार्यात्तु दुष्कृतं दशमांशकम् ॥१६॥
नश्यत्येव सुकार्यस्य भविष्ये निश्चितं फलम् ।
जन्मन्यस्मिन्परे वापि मिलत्येव यथायथम् ॥१७॥

भाषार्थः—सुकृत (न्यायादि शुभकर्म) और दुष्कृत (अन्यायादि दुष्कर्मों) का फल कदापि नष्ट नहीं होता अर्थात् भोगना ही पड़ता है तथा इस जन्म के शुभ कर्मों से दशमां भाग दुष्कृत (खोटेकाम) नष्ट हो जाते हैं एवं दुष्कृत का फल इस जन्म वा पर जन्म के भविष्य में यथार्थ रूपसे अवश्य ही मिलता है ॥१६-१७॥

यत्रस्थस्तु महीपालः स्वयं कार्यं न पश्यति ।
विकृतिं प्राप्नुवन्त्येव वरेण्याः कर्मचारिणः ॥१८॥
प्रजाः प्रपीडयन्तस्ते कुर्वन्ति धनसंचयम् ।
प्रजाहेतोः श्रमं त्यक्त्वा चालस्यं प्राप्नुवन्त्यपि ॥१९॥
परिणामे महीपालः प्राप्नोत्येव दुराशिषम् ।
राज्यात्पतति मूढः सः सभृत्यो नर्कं मश्नुते ॥२०॥

भाषार्थः—जहां का राजा अपने राज्य के कार्य को स्वयं नहीं देखता अर्थात् केवल कर्मचारियों के आश्रय पर ही सम्पूर्ण कार्य छोड़ देता है ऐसी दशा में उत्तम भी कर्मचारी बिगड़ जाते हैं और अपनी बडी से बडी तनख्वा पर भी सन्तुष्ट न होकर प्रजा को पीडित करते हुवे अन्याय से द्रव्योपार्जन करने लगते हैं और प्रजाहितार्थ परिश्रम को छोड़कर आलस्य में पड़ जाते हैं इसके परिणाम में राजा, प्रजा के दुराशीर्वाद को प्राप्त करता है और राज्य से भ्रष्ट हो जाता है तथा राजा और कर्मचारी दोनों नर्कगामी होते हैं ॥१८-१९-२०॥

अन्यायपीडितात्मानः प्रकारैः विविधैः सदा ।
विभिन्नजन्मसम्प्राप्य प्राप्नुवन्ति प्रतिक्रियाम् ॥२१॥

अतोऽन्यायस्तथाऽधर्मः पिशाचरूपिणाविमौ ।
त्याज्यौ न्यायं सदा धर्मं चेतसा समुपाचरेत् ॥२२॥

तदैव पृथिवीपालः राज्यं भुंक्ते ह्यकण्टकम् ।
न्यायधर्मप्रशैथिल्यात् पिशाचौस्ताद्दलान्वितौ ॥२३॥

ततोभूपश्च निःशक्तः विनाशमुपगच्छति ।
विज्ञानसस्य कर्त्तव्यं सर्वथामङ्गलेच्छया ॥२४॥

भाषार्थः—अन्याय से पीडित आत्माएं विभिन्नजातियों (उस जाति वा अन्य जाति) में जन्म प्राप्त करके अनेक प्रकार से (पुत्र वन कर, भाई वनकर, कन्या वनकर, सिंह वनकर, सर्प वनकर, स्त्री वन कर, जमाई वनकर इसी प्रकार प्राणनाशक दुःखदायक प्राणी का जन्म प्राप्त करके) उस पूर्व जन्म में किये हुये अन्याय और अधर्म का बदला विविध प्रकार से लेते हैं इसलिये इन पिशाच रूप धारण किये हुए अधर्म अन्याय को छोड़ देना चाहिये और न्याय तथा धर्म का सदा आचरण करता रहे "क्योंकि जो राजा अधर्म और अन्याय रूप घोर पिशाचों को जीतता है" तब ही इस संसार में राजा निष्कण्टक

राज्य भोगता है एवं न्याय और धर्म में शिथिलता आने से ही वह अन्याय और अधर्म रूप पिशाच बलवान् हो जाते हैं जिससे राजा निर्बलता प्राप्त कर विनाश को प्राप्त हो जाता है अतः अपने कल्याण की इच्छा से इन उपरोक्त बातों का ज्ञान करना चाहिये ॥२१-२२-२३-२४॥

व्यक्तरीत्या गुप्तरीत्या न्यायधर्मानुसारिणे।
अधर्ममथवान्यायं ये कुर्वन्ति क्षितौ जनाः ॥२५॥

तदा ते प्राप्नुवन्त्येव विघ्नान् हानिं तथापदम्।
नातोऽधर्मन्तथाऽन्यायं प्रकुर्यान्मङ्गलेप्सया ॥२६॥

भावार्थः—गुप्त अथवा प्रकाश्य रीति से न्याय और धर्म पथ पर चलने वाले पर जो मनुष्य अधर्म और अन्याय करते हैं तो इस के परिणाम में वे अधर्मी और अन्यायी मनुष्य अधर्म, विघ्न, हानि और आपत्तियों को प्राप्त करते हैं। अतः अपने और राज्य के कल्याण के लिये अधर्म और अन्याय कदापि नहीं करना चाहिये ॥२५-२६॥

अन्यायस्य समाधिक्यात् नृणां भवति दुर्मतिः।
तदा रोगाश्चदुःखानि संग्रामाश्चभवन्त्यपि ॥२७॥

परिणामेप्रजाः क्षीणाः भवन्त्येव सुनिश्चितम्।
तदा विभिन्नदेशानां नराणां सम्प्रजायते ॥२८॥

ईश्वरकृपया शीघ्रं सुमतिर्मङ्गलप्रदा।
तत्प्रभावात्संगशक्त्या कलादिव्यास्त्रशस्त्रकैः ॥२९॥

निषेधयन्ति ते वृद्धाः सर्वथा युद्धकारकान्।
सद्विचारान्शिक्षयन्ति न्यायस्यापिप्रशासनम् ॥३०॥

भावार्थः—जिस देश में अन्याय की जितनी अधिकता होती है वहां के मनुष्यों की उतनी ही दुर्बुद्धि हो जाती है तब संसार में रोग दुःख युद्धादि होते हैं इसके परिणाम में प्रजा का क्षीण होना स्वतः सिद्ध है। ऐसी दशा किसी देश की हो जाने पर परमात्मा की कृपा से विभिन्न देशों में रहने वाले मनुष्यों की अच्छी बुद्धि होजाती है, तब वे सुबुद्धमनुष्य संगठन की शक्ति अथवा कला दिव्य अस्त्रशस्त्रों द्वारा उन लड़ने वालों को रोक देते हैं तथा वे अच्छी बुद्धि वाले मनुष्य वहां के राजा को न्याय पूर्वक शासन करना सिखाते हैं ॥२७-२८-२९, ३०॥

उच्चस्थानं सुमत्या यैः सम्प्राप्तं क्षितिनन्दनैः ।
यावन्न्याये तथा धर्मे तेऽनुरक्ता भवन्ति हि ॥३१॥

तावदेवात्रसाम्राज्यं तेषां संजायते स्थिरम् ।
किन्तु स्वार्थादिदोषानां यदाधिक्ये पतन्ति वै ॥३२॥

तथाऽन्यायेऽथवा धर्मे शैथिल्यमाप्नुवन्ति च ।
परिणामेस्य दुर्बुद्धिः जायते तादृशी दशा ॥३३॥

भावार्थः—जिन राजाओं ने अपनी उत्तम बुद्धि द्वारा उन्नत-स्थान प्राप्त कर लिया है वे जब तक न्याय और धर्म में अनुरक्त रहते हैं तब तक ही उनका राज्य स्थिरता को प्राप्त करता है। किन्तु जब वे स्वार्थादिक दोषों की अधिकता में पड़जाते हैं तथा न्याय और धर्म में शिथिलता प्राप्त कर लेते हैं तब इसके परिणाम में उनकी दुर्बुद्धि हो जाती है और उनकी भी उसी प्रकार की दशा हो जाती है ॥३१-३२-३३॥

एतादृशे तु समये प्राचीनाः भूमिनायकाः ।
न्यायधर्मदृढासंतु तस्मात्तेषां च संस्थितिः ॥३४॥

अन्यथा सम्प्रजायेत सर्वथापरिवर्तनम् ।
न्यायस्यावीक्षणाद्राज्यं विक्रियामेतिनिश्चितम् ॥३५॥

भाषार्थः—ऐसे समय में प्राचीन राजाओं को चाहिये कि न्याय और धर्म में दृढ़ता प्राप्त करें क्योंकि इसी से उनकी स्थिती है अन्यथा उनका भी इसी प्रकार परिवर्तन होजाता है क्योंकि न्याय के विगड़ जाने से राज्य भी विगड़ जाया करता है ॥३४-३५॥

उपचारं विना कायः संततं याति विक्रियाम् ।
न्यायस्यावीक्षणेनापि न्यायोदोषमुपैति च ॥३६॥

भाषार्थः—शरीर को न संभाल ने से जिस प्रकार शरीर विगड़ जाता है इसी प्रकार न्याय को न संभालने से न्याय विगड़ जाया करता है ॥३६॥

मातृभूमिहितार्थन्तु संग्रामः क्रियते नृपैः ।
धार्मिकः सैव जायेत विपरीतस्त्वधार्मिकः ॥३७॥

धर्मयुद्धे क्षत्रियो यः क्षत्रियस्य सहायताम् ।
करोति फलमाप्नोति लोकेजन्माभिवांछितम् ॥३८॥

सहायतां प्रकुर्वन्यः प्राप्नुयान्मरणं रणे ।
चिरकालं मनुष्यः सः जन्माप्नोत्यभिवाञ्छितम् ॥३९॥

भाषार्थः—मातृ भूमि के हित के लिये जो परस्पर युद्ध किया जाता है वही धर्म, युद्ध कहा गया है इस के इतर युद्ध करना महा-पाप है अतः अधर्म युद्ध करने में कदापि प्रवृत्ति नहीं रखनी चाहिये। धार्मिक युद्ध में जो क्षत्रिय, क्षत्रिय की सहायता करता है वह अपनी इच्छा के अनुसार जन्म प्राप्त करता है। यदि युद्ध में सहायता करते हुए की मृत्यु हो जाय तो चिरकाल तक इच्छानुसार जन्म प्राप्त करता रहता है ॥३७-३८-३९॥

न्याये धर्मेऽभिगमनं गच्छतां च सहायता ।
क्षत्रियाणां महीलोके महत्पुण्यमुदीरितम् ॥४०॥

विधर्मी यो दुराचारी पताकिन्योऽभिनायकः ।
तन्मोचनं महत्पापं सर्वथा समुदीरितम् ॥४१॥

विमुक्तश्चदुराचारी प्रकारैर्विविधै श्छलैः ।
क्षत्रियाणांप्रवीराणां नाशं संचेष्टतेसदा ॥४२॥

दुष्टाचारजनैः सार्द्धं विमर्षो नैवकर्हिचित् ।
धर्माऽधर्मस्यकर्त्तव्यो राज्यकल्याणहेतवे ॥४३॥

भाषार्थः—स्वयं न्याय और धर्म पर चलना तथा चलने वालों की सहायता करना यह क्षत्रियों के लिये महान् पुण्य कहा गया है। अपने वश में आये हुये विधर्मी और दुराचारी सेनानायक को मुक्त करना महान् पाप है। क्योंकि उसे मुक्त कर देने से वह दुराचारी अनेकों प्रकार के छलों से क्षत्रियों को नष्ट करने की चेष्टा में लगा रहता है तथा परिणाम में उन वीर क्षत्रियों को नष्ट भी कर देता है। अतः राज्य के कल्याण के लिये दुराचारियों के साथ धर्माधर्म का विचार नहीं करना चाहिये ॥४०-४१-४२-४३॥

अज्ञानेनाभिमाने तु प्रणिपत्यैवमानवः ।
स्वार्थादीनां समाधिक्यात् द्वेषैर्षाभ्यां स्वमण्डले ॥४४॥

युद्धतेक्षत्रिया लोके तेषांमेवसहायकाः ।
चाण्डालकृमिकीटानां योनिंसंप्राप्नुवन्ति हि ॥४५॥

भाषार्थः—अज्ञानता से अभिमान में पड़कर स्वार्थादि दोषों की अधिकता से जो परस्पर ईर्षा द्वेष से अपने देश में ही परस्पर युद्ध करने लग जाते हैं ऐसों की सहायता करने वाले अनेक योनियों में चाण्डाल का जन्म प्राप्त करते हैं या मलीन कीड़े बनते हैं और ऐसे युद्धों में जो मारे जाते हैं वे सहस्रों जन्मों तक ऐसे ही नीच योनियों में दुःख भोगते रहते हैं ॥४४-४५॥

त्रिगुणदर्शनम् ।

U A.P PRESS
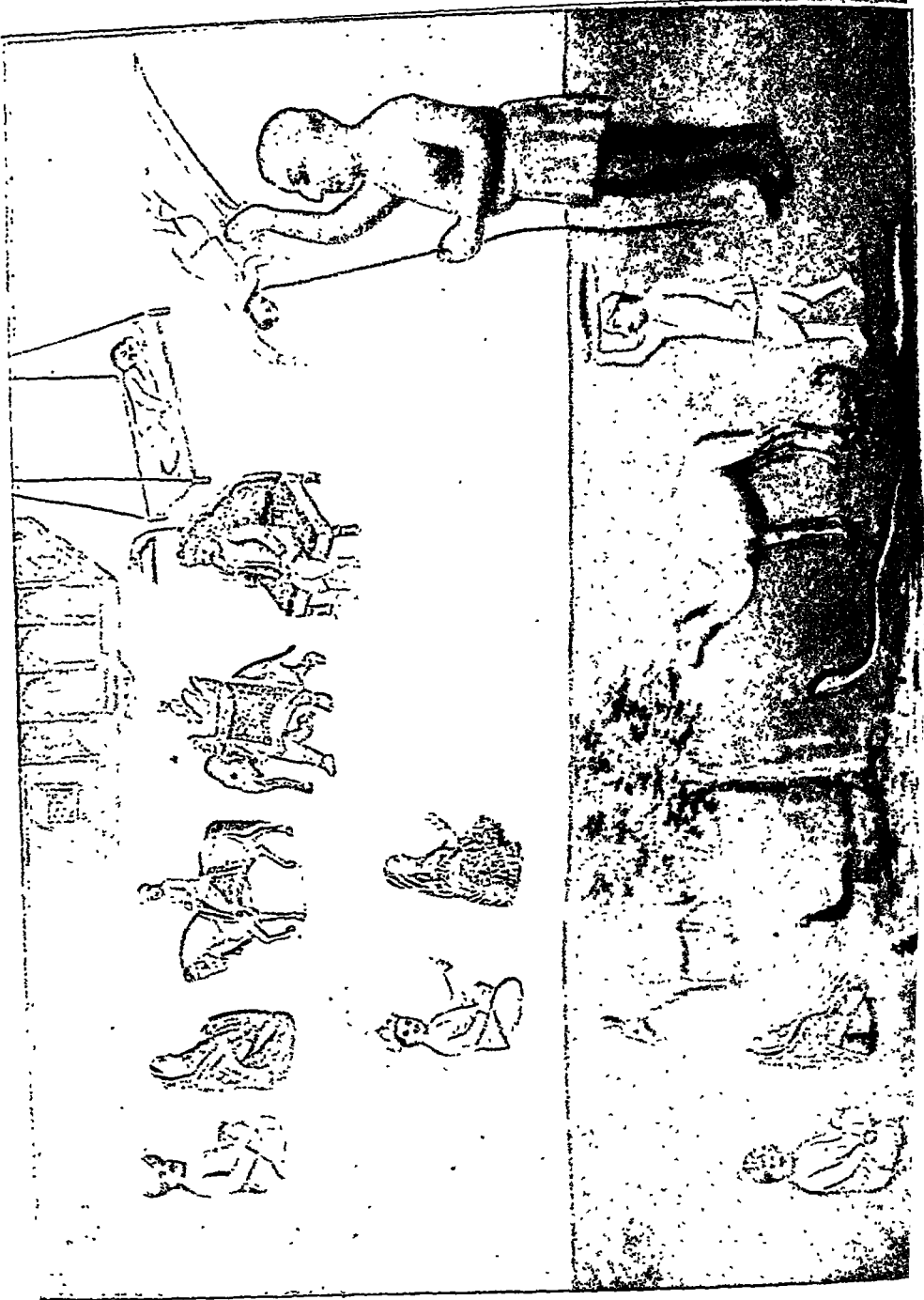
पण्डिता शुद्धभावाश्च न्यायधर्मानुगामिनः ।
सात्विकाः क्षत्रियाः लोके प्रोच्चजन्माप्तुवन्ति हि ॥४६॥
सम्पूर्णाः सौख्यसामिग्रीः प्राप्नुवन्त्येवनिश्चितम् ।
रजोगुणीवपुःत्यागे जन्माप्नोत्यभिवांच्छितम् ॥४७॥
नीचकर्मानुरक्तस्तु साराज्ञश्चतमोगुणी ।
दुःखमेति जन्म तस्य पश्वादिनीचयोनिषु ॥४८॥

भावार्थः—विद्वान्, शुद्ध भाव वाले, सत्वगुणी, न्याय और धर्म का आचरण करने वाले क्षत्रिय उच्चजन्म प्राप्त करते हैं तथा सम्पूर्ण सौख्य सामिग्रियां (हाथी, घोड़ा, पालकी, महल, गढ़, बगीचा आदि) भी प्राप्त करते हैं । तथा रजोगुणी शरीर छोड़ते समय अपनी भावना के अनुसार जन्म प्राप्त करते हैं । तथा अज्ञानी नीचकर्म करने वाले अभिमानी तमोगुणी सार को न जानकर पशु, पक्षी कृमि, आदि नीच योनियों में भ्रमण करते रहते हैं तथा संसार में नाना दुःखों को भोगते हैं ॥४६-४७ ४८॥

स्वार्थरूपपिशाचस्तु सात्विकञ्च रजोयुतम् ।
पाशे निगृह्य तमसि प्रवेशयति निश्चितम् ॥४९॥
जयत्येनं क्षत्रियो यः स एवविश्वमण्डले ।
अखण्डितं सुखैर्युक्तं भुंक्तेराज्यमसंशयम् ॥५०॥

भावार्थः—स्वार्थ रूप पिशाच सत्व और रजो गुणियों को फाँसी में डालकर तमोगुण में प्रविष्ट कर देता है और इसको जो जीतता है वही क्षत्रिय अखण्डित राज्य भोगता है ॥४९-५०॥
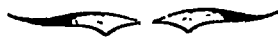
पञ्चमोपदेशः

शक्तिपुरुषार्थनिरूपणम्

पुरुषार्थस्य शक्तेश्च मनुष्याणां हितेच्छया।
गुणान्संवर्णयिष्यामि श्रूयतां पार्वति ! प्रिये ! ॥१॥

भाषार्थः—पुरुषार्थ तथा शक्ति के गुणों को मनुष्यों के हित के लिये मैं वर्णन करता हूं सो हे प्रिये पार्वति ! तुम सुनो ! ॥१॥

मनुष्या भूतलोत्पन्नाः पौरुषमाचरन्तु ते ।
पुरुषार्थाचरणस्य विभोराज्ञा स्वभावतः ॥२॥

भाषार्थः—संसार में उत्पन्न हुये मनुष्य पुरुषार्थ का आचरण करें अर्थात् पुरुषार्थ करें क्योंकि स्वभाव से ही पुरुषार्थ का आचरण करने के लिये परमात्मा की आज्ञा है ॥२॥

पुरुषार्थी मनुष्यस्तु ब्रह्मरूपो महीतले ।
पुरुषार्थेन लीयन्ते परब्रह्मणि मानवाः ॥३॥

भाषार्थः—पुरुषार्थ करने वाला मनुष्य ही संसार में ब्रह्मरूप है तथा पुरुषार्थ करने से ही मनुष्य परब्रह्म में विलीन हो जाते हैं ॥३॥

पुरुषार्थी जनोवीरो सुभटोऽस्मिन्महीतले ।
सर्वस्वं लभते चापि स्वर्गमेवंनिरन्तरम् ॥४॥
पूर्वे मानवदेहेन पुरुषार्थेन जन्मनि ।
कृतस्यात्रफलेनैव लाभं सौख्यं सदाक्षयम् ॥५॥

भाषार्थः—पुरुषार्थी वीर अच्छा योद्धा मनुष्य इस संसार में सर्वस्व तथा स्वर्ग को भी प्राप्त करता है। पूर्वे जन्म में मनुष्य देह से

किये हुए पुरुषार्थ के फल से ही मनुष्य को इस जन्म में सुख तथा लाभ होता है। तथा यह सुख और लाभ सदा अक्षय रहता है अर्थात् इसे कोई और तरह नहीं कर सकता ॥४-५॥

सन्ततिस्तस्य जायेत लोकेस्मिन् सर्वदा स्थिरा ।
अखण्डिता कीर्तियुक्ता सुखेन सहिता तथा ॥६॥

भावार्थः—तथा पुरुषार्थी मनुष्य की संतान इस लोक में सर्वदा स्थिर अखण्डित, यश से युक्त तथा सुख से सहित होती है ॥६॥

अभावे राजविद्यायाः सद्विचारोबलन्तथा ।
सद्बुद्धिर्वा पौरुषञ्च श्रद्धातेजश्चहीयते ॥७॥

भावार्थः—श्री राजविद्या के अभाव से अच्छे विचार, बल पुरुषार्थ, अच्छी बुद्धि, श्रद्धा और तेज ये नष्ट हो जाते हैं ॥७॥

निष्पौरुषो विभुं मायां कर्म भाग्यञ्चदूषयेत् ।
किन्तुकिञ्चिन्मनुष्याय नोत्यक्तं परमात्मनः ॥८॥

भावार्थः—पुरुषार्थ से हीन मनुष्य परमात्मा, माया, कर्म और भाग्य को दोष देता है किन्तु परमात्मा ने मनुष्य के लिये कुछ बाकी नहीं रक्खा है ॥८॥

पुरुषार्थी मनुष्यस्तु परमात्मानमेव च ।
करोत्यात्मवशं विज्ञ स्तस्मात्पौरुषमाचरेत् ॥९॥

भावार्थः—पुरुषार्थी विज्ञ मनुष्य परमात्मा को भी अपने वश में कर लेता है इसलिये पुरुषार्थ का आचरण करना चाहिये ॥९॥

यदिस्वार्थस्य सौख्यस्य शैथिल्यस्यातिभावनाम् ।
त्यजेत् शुद्धेन भावेन पुरुषार्थं समाचरेत् ॥१०॥

तदा सत्ययुगस्येव समयो वर्तते क्षितौ ।
कर्मसंसाधयेदस्मात् धर्मश्रद्धासमन्वितः ॥११॥

भाषार्थः—यदि मनुष्य स्वार्थ सुख और शिथिलता की अधिकता को छोड़दे और शुद्धभाव से पुरुषार्थ करे तब सतयुग का सा समय संसार में वरतता है इसलिये धर्म और श्रद्धा से युक्त होकर कर्मों की सिद्धि करनी चाहिये ॥१०-११॥

शुद्धज्ञानयुतोऽवश्यं शक्तिपौरुषसंयुतः ।
यद्यद्वांच्छति भूलोके तत्तत्प्राप्नोति निश्चितम् ॥१२॥

भाषार्थः—शुद्ध ज्ञान से जो युक्त है तथा शक्ति और पुरुषार्थ में लगा हुआ है वह मनुष्य जो इच्छा करता है वह संसार में निश्चय रूप से प्राप्त करता है ॥१२॥

उपयोग्यभ्यासमध्ये पूर्णां संप्राप्य योग्यताम् ।
सर्वां सिद्धिश्चलभते मात्याक्षीः पौरुषञ्जन ! ॥१३॥

भाषार्थः—उपयोगी अभ्यास में पूर्ण योग्यता प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है इसलिये हे मनुष्य पुरुषार्थ को मत छोड़ ॥१३॥
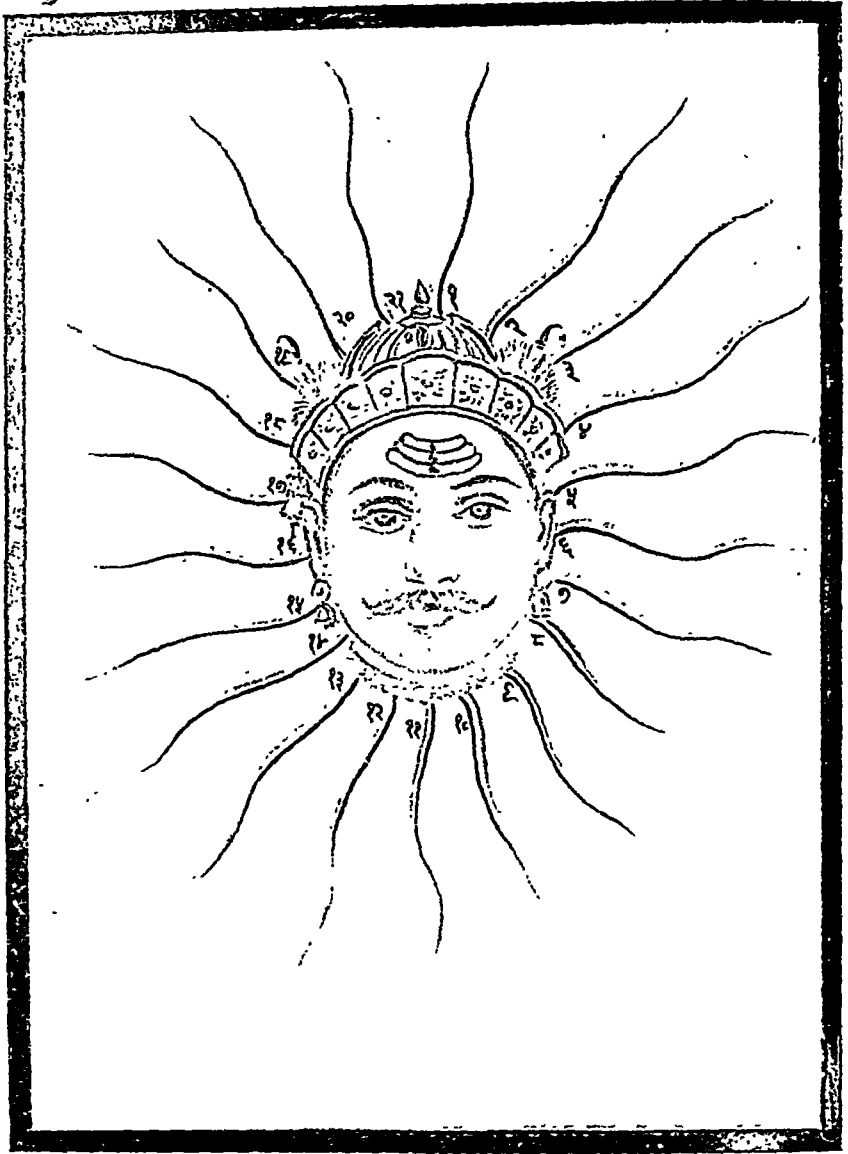
नृपतिसूर्यस्यैकविंशत्युपदेशाः ।

U A.P.P.J

सूर्यस्यैकविंशत्युपदेशाः

एकविंशत्युपदेशान् प्रकाशयति यान् रविः ।
भूलोके वर्णनंतस्य श्रूयतां पार्वति ! प्रिये ! ॥१४॥

भाषार्थः—जिन इक्कीस उपदेशों को सूर्य संसार में प्रकाशित करता है हे प्रिये ! पार्वति ! उन इक्कीस उपदेशों का वर्णन होता है उसे तुम सुनो ॥१४॥

बन्धूनां स्वस्य शक्तेश्च योग्यतायाश्चशोधनम्
रवेराद्योपदेशोऽयं सर्वकल्याणहेतवे ॥१५॥

भाषार्थः—बान्धवों की तथा अपनी शक्ति और योग्यता का शोधन करना यह सबों के कल्याण के लिये सूर्य का प्रथमोपदेश वर्णन किया गया है ॥१५॥

चारैर्वृतान्तविज्ञानं द्वितीयोऽत्र समीरितः ।
शरीरमिन्द्रियाण्येव कृत्वा च स्ववशे सदा ॥१६॥

देहेन मनसा वापि धनेनात्रपरस्परम् ।
धार्मिकेषु च कार्येषु प्रीतिरैक्यं सहायताम् ॥१७॥

प्रकुर्यात्प्राणपर्यन्त-मुपदेशस्तृतीयकः ।
शुद्धोचैश्वरभावेषु विचारस्य नियोजनम् ॥१८॥

वृद्धैः शान्तैः स्थितेश्चापि संसारे संप्रवर्तनम् ।
उपदेशश्चतुर्थोऽयं रवेरत्र समीरितः ॥१९॥

भाषार्थः—चारों (गुप्तदूतों) से वृत्तान्त को जान लेना दूसरा उपदेश है। शरीर तथा इन्द्रियों को वश में करके देह, मन और धन से

परस्पर धार्मिक कार्यों में प्रीति, एकता सहायता प्राण पर्यन्त करना यह तीसरा उपदेश है। तथा शुद्ध उच्च और ईश्वर भाव में विचार लगाना तथा वृद्धि, शांति और स्थिति को संसार में प्रवृत्त करना यह सूर्य का यहां पर चतुर्थ उपदेश वर्णन किया गया है ॥१६-१७-१८-१९॥

तपसा पुषार्थेन धैर्येण तेजसा तथा ।
विविधानां हि विद्यानां प्रचारस्य निरन्तरम् ॥२०॥

धार्मिकस्योपदेशस्य प्रवन्धकरणं मुदा ।
पंचमस्तूपदेशोऽयं प्रजाहेतोः समीरितः ॥२१॥

भाषार्थः—तप, पुरुषार्थ, धैर्य और तेज से विविध विद्याओं का निरन्तर प्रचार तथा धार्मिक उपदेश का हर्ष पूर्वक प्रवन्ध करना यह प्रजा के हित के लिये पांचवां उपदेश वर्णन किया गया है ॥२०-२१॥

प्रजासन्मार्गवृत्यर्थं न्यायस्य नियमस्य च ।
निरीक्षणं प्रबन्धस्य षष्ठश्चात्र समीरितः ॥२२॥

भाषार्थः—प्रजा को अच्छे मार्ग में चलाने के लिये न्याय और मर्यादा तथा प्रवन्ध का देखना यह छठा उपदेश कहा गया है ॥२२॥

अत्यावश्यककार्यस्य प्रागुपायाभिसाधनम् ।
सप्तमस्तूपदेशोऽत्र जगहेतो रुदीरितः ॥२३॥

भाषार्थः—अत्यन्त आवश्यकीय कार्य का उपाय पूर्व (पहले) सिद्ध करना यह जगत के हित के लिये सातवां उपदेश यहां पर कहा गया है ॥२३॥

सर्वोपयोगिवस्तुनां रक्षाशुद्धिर्विलोकनम् ।
उपदेशोष्टमोभानो र्हिताय प्रतिपादितः ॥२४॥

भापार्थः—सम्पूर्ण उपयोगी वस्तुओं की रक्षा, शुद्धि और उन्हें देखना यह सूर्य का आठवां उपदेश है ॥२४॥

धर्मेणैवायसंसिद्धिः सर्वकार्याभिचिन्तनम् ।
भानोरयन्तूपदेशो नवमोऽत्र समीरितः ॥२५॥

भापार्थः—धर्म से आय का सिद्ध करना तथा धर्म से ही सम्पूर्ण कार्यों का चिन्तन करना यह सूर्य का नवमा उपदेश कहा गया है ॥२२॥

युक्त्यैवकर्मणाश्चेष्टा वाहारव्यवहारयोः ।
रवेः समुपदेशोऽयं दशमस्तुसमीरितः ॥२६॥

भापार्थः—युक्ति पूर्वक प्रत्येक कर्मों की चेष्टा तथा आहार और व्यवहार की चेष्टा करना यह सूर्य का दशवां उपदेश कहा गया है ॥२६॥

एकादशोपदेशः स्या–त्तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
राजविद्योपदेशेन न्यायस्य परिपालनम् ॥२७॥

रक्षणं जनतायास्या–दभ्यासश्चास्त्रशस्त्रयो ।
द्वादशस्तुरवेरत्र प्रोपदेशः समीरितः ॥२८॥

भापार्थः—तात्विकज्ञान से पदार्थों का चिन्तन करना यह ग्यारहवां उपदेश है। तथा राजविद्या के उपदेश से न्याय का पालन करना और जनता की रक्षा करना एवं अस्त्र तथा शस्त्रों का अभ्यास करना यह सूर्य का बारहवां उपदेश कहा गया है। इसी को रक्षा और न्याय कहते हैं ॥२७-२८॥

राजविद्योपदेशस्थ क्षत्रियेषु निरन्तरम् ।
प्रवन्धस्यादितिप्रोक्त उपदेशस्त्रयोदशः ॥२९॥

भाषार्थः—निरन्तर राजविद्या के उपदेश का क्षत्रियों में प्रवन्ध होना यह तेरहवां उपदेश है ॥२९॥

विशुद्धंवा बलिष्ठंस्या-द्भोजनं तु चतुर्दशः ।
स्वस्यैव वीरवेषस्य प्रोक्तःपंचादशोमुदा ॥३०॥

भाषार्थः—स्वदेश का विशुद्ध और वलिष्ठ भोजन करना यह चौदहवां उपदेश है तथा अपना ही वीरवेष रखना यह पन्द्रहवां उपदेश कहा गया है ॥३०॥

स्वदेशे मातृभाषायां प्रीतिः स्यादेशषोडशः ।
सप्तदशश्चोपदेशः स्वेष्टेदार्ढ्यं सदा भवेत् ॥३१॥

भाषार्थः—अपने देश और मातृ भाषा में प्रीति रखना यह सोलहवां उपदेश है तथा अपने इष्ट में दृढ़ होना यह सत्रहवां उपदेश है ॥३१॥

दयाहिंसापालनं च पुण्यधर्मावलम्बनम् ।
आराधनं भगवतः स्यादष्टादश एव वा ॥३२॥

भाषार्थः—दया और अहिंसा का पालन करना तथा पुण्य और धर्म का अवलम्बन करना एवं भगवान् का आराधन करना यह अट्ठारहवां उपदेश है ॥३२॥

प्रजासमीपेवसतिः स्वातंत्र्येण च संगमः ।
एकोनविंशश्चैवात्र प्रोपदेशः समीरितः ॥३३॥

भाषार्थः—प्रजा के पास में रहना तथा स्वतन्त्रता के साथ प्रजा से मिलना यह उन्नीसवां उपदेश कहागया है ॥३३॥

पंग्वन्धविधवादीनां सर्वथैवाभिपोषणम् ।
विंशश्चात्रोपदेशोऽयं परार्थसाधनंतथा ॥३४॥

भाषार्थः—पङ्गु (लंगड़े) अन्धे और विधवा स्त्री आदि असमर्थों का सर्वदा पोषण करना परोपकार करना यह वीसवां उपदेश संसार के हित के लिये कहा गया है ॥३४॥

यथायोगप्रयुक्त्यैव कार्याणामभिसाधनम् ।
एकविंशस्तूपदेशः मंगलाय समीरित ॥३५॥

भाषार्थः—यथा योग युक्ति से कार्यों का सिद्ध करलेना यह सूर्य का इक्कीसवां उपदेश है ॥३५॥

अथ श्रीराजविद्यायां, एकविंशति पाठ निरूपणोनाम्

पञ्चमः संवादः

प्रथमः पाठः

शासनयोग्यताप्राप्त्यर्थं षटत्रिंशल्लक्षण निरूपणम्

शुद्धभावेन संप्राप्तिः नरदेहस्य जायते ।
षट्त्रिंशल्लणैर्युक्तः क्षत्रियोराज्यमश्नुते ॥१॥
विचारस्याधिका शक्ति मनुष्येष्वेवविद्यते ।
तेनैवसुमतेः शक्तेः शुद्धज्ञानं प्रजायते ॥२॥

भाषार्थः—शुद्ध भाव से मनुष्य देह की उत्पत्ति होती है। छत्तीस लक्षणों युक्त जो क्षत्रिय है वह राज्य भोगता है। विचार करने की अधिक शक्ति मनुष्यों में ही है। उसी से सुमति और शक्ति का शुद्धज्ञान प्राप्त होता है ॥१-२॥

मही कः शास्ति भो नाथ ! मामेवं विनिवेदय ।
रक्षान्यायौ कथं स्यातां सर्वथा पृथिवीतले ॥३॥

भाषार्थः—हे नाथ ! (शंकरजी) इस पृथ्वी पर कौन शासन करता है तथा संसार में रक्षा और न्याय किस रीति से होते हैं ॥३॥

शंकर उवाच

शक्तिवान् बुद्धिवान् चैव सुखेन शास्ति मेदिनीम् ।
शक्त्या संजायते रक्षा बुद्ध्या न्यायश्चसन्ततम् ॥४॥
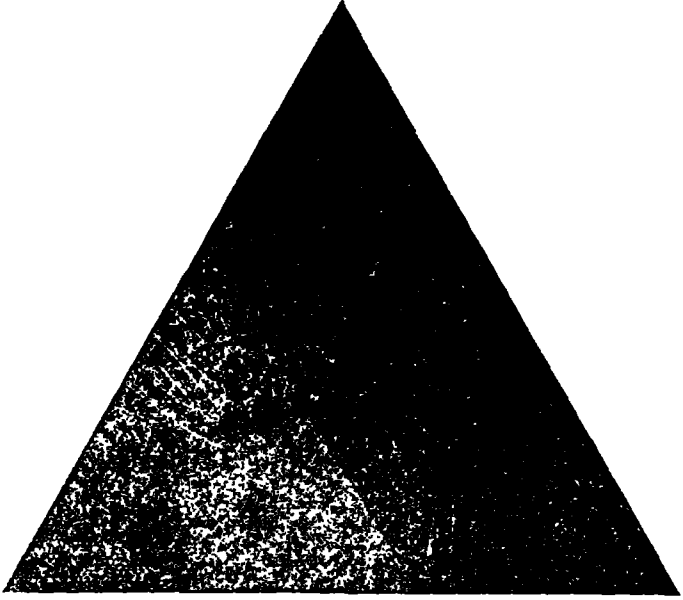
अग्निः (रक्तवर्णः)
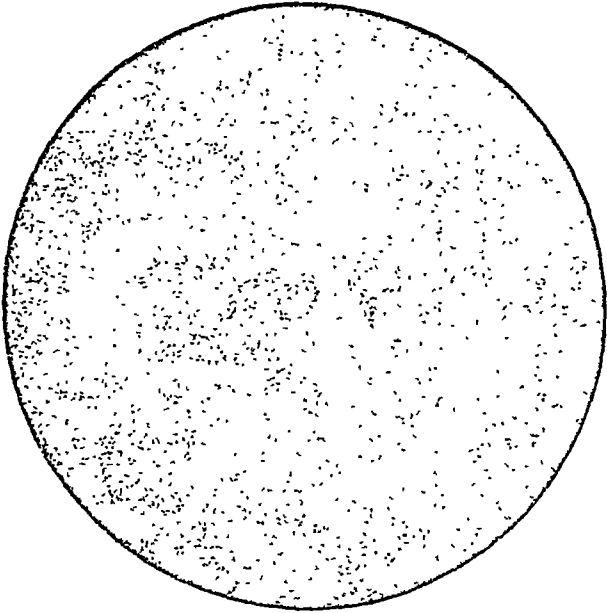
वायुः (हरित्वर्णः)

षट्त्रिंशल्लक्षणैर्युक्तः न्याये संरक्षणे क्षमः ।
तस्मात्तेषां वर्णनात्र सर्वथा क्रियते मया ॥५॥

भाषार्थः—श्री शंकर भगवान् बोले कि जिसमें बल और बुद्धि है वह ही सुख पूर्वक पृथ्वी पर शासन करता है उसमें शक्ति से रक्षा और बुद्धि से न्याय होता है तथा छत्तीस लक्षणों से जो युक्त है वह ही न्याय तथा रक्षा कर सकता है इसलिये उन छत्तीस लक्षणों का वर्णन करता हूं ॥४-५॥

आकाशात्तुसमुत्पत्ति रिष्टस्य सम्प्रजायते ।
षट्त्रिंशल्लक्षणोत्पत्तिः शेषैस्तत्त्वचतुष्टयैः ॥६॥

भाषार्थः—आकाश से इष्ट तथा छत्तीस लक्षणों की उत्पत्ति शेष चार तत्वों से जाननी चाहिये ॥६॥

बलादष्टलक्षणानि

बलादष्टलक्षणानां समुत्पत्तिः प्रजायते ।
लक्षणं प्रथमश्चात्र शरीरेन्द्रिय संयमः ॥७॥

भाषार्थः—बल से आठ लक्षणों की उत्पत्ति होती है उसमें बल का प्रथम लक्षण शरीर तथा इन्द्रियों का संयम (वश में रखना) है । बल का अग्नि तत्व वर्णन किया गया है ॥७॥

स्वेष्टे दार्ढ्यंविधायैव पौरुषोत्साहधारणात् ।
कार्यसंसाधश्चेति द्वितीयं बललणम् ॥८॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में दृढ़ता रखकर उत्साह पूर्वक पुरुषार्थ से कार्यों को सिद्ध कर लेना यह दूसरा लक्षण है ॥८॥

पौरूषस्यावलम्बस्तु तृतीयं वललक्षणम् ।
सव्यायामपथ्यसेवा चतुर्थंलक्षणंस्मृतम् ॥९॥

भाषार्थः—पौरुष का अवलम्बन करना यह तीसरा वल का लक्षण है तथा व्यायाम करते हुए पथ्य भोजन का सेवन करना यह चौथा वल का लक्षण है ॥९॥

परिश्रमस्य चाभ्यासः पञ्चमं लक्षणंभवेत् ।
अस्त्रशस्त्रसमभ्यासो नित्यं षष्ठन्तु लक्षणम् ॥१०॥

भाषार्थः—परिश्रम करने का अभ्यास करना यह पांचवां लक्षण है तथा नित्यप्रति अस्त्र और शस्त्रों का अभ्यास करना यह छठा लक्षण है ॥१०॥

वाहनारोहणाभ्यासः सप्तमंबललक्षणम् ।
क्षत्रियेषुयोग्यतावा स्वेकता चाष्टमंस्मृतम् ॥११॥

भाषार्थः—सवारी पर चढ़ने का अभ्यास यह सातवां वलका लक्षण है समस्त क्षत्रियों में एकता तथा योग्यता का होना वलका आठवां लक्षणहै ॥११॥

श्रीशंकर उवाच

बलेनैवाष्टरक्षायाः ब्रवीमिलक्षणान्यहम् ।
उमे ! तच्छ्रूयतां प्रेम्णा सर्वसंसारहेतवे ॥१२॥

भाषार्थः—संसार के हित के लिये वल से आठ रक्षा के लक्षणों को मैं कहता हूं सो हे पार्वति ! उसे तुम प्रेम पूर्वक सुनो ॥१२॥

न्यायस्यापि स्वधर्मस्य मर्यादायाश्च सन्ततम् ।
प्रबन्धानां रक्षणञ्च लक्षणंप्रथमंस्मृतम् ॥१३॥

भापार्थः—(रक्षा का चायु नत्त्व है) न्याय तथा अपने धर्म और मर्यादा एवं प्रवन्ध की रक्षा करना यह रक्षा का प्रथम लक्षण है ॥१३॥

प्रजानां प्राणवपुषोः स्वातन्त्र्यस्य धनस्य च ।
धर्मस्य रक्षणञ्चापि द्वितीयं लक्षणंभवेत् ॥१४॥

भापार्थः—प्रजा के प्राण तथा शरीर, स्वतन्त्रता, धन तथा धर्म की रक्षा करना यह रक्षा का दूसरा लक्षण है ॥१४॥

आचारस्यप्रजानाञ्च कुलानां परिरक्षम् ।
तृतीयं लक्षणं प्रोक्तं रक्षायाः सर्वहेतवे ॥१५॥

भापार्थः—प्रजा के आचार तथा कुलों की रक्षा करना यह रक्षा का तीसरा लक्षण सवों के हित के निमित्त वर्णन किया गया है ॥१५॥

गृहाणांवा मठानाञ्च मन्दिराणाञ्चसर्वदा ।
सन्ततं धर्मशालानां पूतस्थानस्य वा तथा ॥१६॥
सर्वेषांधर्मकार्याणां वृक्षाणामुपयोगिनाम् ।
रक्षणंयज्ञशालानां चतुर्थं लक्षणंस्मृतम् ॥१७॥

भापार्थः—गृह, मठ, मन्दिर, धर्मशाला (धार्मिक कार्य, धर्म सम्बंधि वृक्ष) पवित्र स्थान तथा यज्ञशालाओं की रक्षा करना यह रक्षा का चौथा लक्षण कहा गया है ॥१६-१७॥

शैलाकरसमुद्राणां नदीनामपिसर्वथा ।
तथावनौषधीनाञ्च रक्षणंपञ्चमं भवेत् ॥१८॥

भापार्थः—पर्वत, खान, तलाव, समुद्र, नदी और वनौषधियों की रक्षा करना यह रक्षा का पांचवां लक्षण है ॥१८॥

सर्वोपयोगिजीवेभ्यः तृणभूमेश्च रक्षणम् ।
षष्ठन्तुलक्षणं प्रोक्तं सौख्यसम्पादकन्तथा ॥१९॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण उपयोग (काम) में आने वाले प्राणियों के लिये तृण (घास) से युक्त भूमि की रक्षा करना रक्षा का छठा लक्षण है तथा ऐसा करना सौख्यप्रद है ॥१९॥

स्थावराणां जङ्गमानां जडचेतनयो स्तथा ।
रक्षणन्त्वत्ररक्षायाः लक्षणं सप्तमं स्मृतम् ॥२०॥

भाषार्थः—स्थावर, जंगम, जड़ और चेतन इनकी रक्षा करना रक्षा का सातवां लक्षण है ॥२०॥

स्वकीयस्य च देशस्य सन्ततं परिरक्षणम् ।
अष्टमं लक्षणं प्रोक्तं रक्षायास्त्वत्र साम्प्रतम् ॥२१॥

भाषार्थः—अपने देश की रक्षा करना रक्षा का अठवां लक्षण कहा गया है ॥२१॥

बुद्धे र्दशलक्षणानि

दशलक्षणसम्प्राप्तिः बुद्ध्या संजायते सदा ।
शुद्धभावावलम्बस्तु लक्षणं प्रथमं स्मृतम् ॥२२॥

भाषार्थः—बुद्धि से दस लक्षणों की प्राप्ति होती है उसमें शुद्धभाव का ग्रहण करना पहला लक्षण कहा गया है ॥२२॥

उच्चभावावलम्बञ्च द्वितीयश्चात्रलक्षणम् ।
प्रभुत्वभावसम्प्राप्तिः तृतीयं लक्षणं भवेत् ॥२३॥

भापार्थः—उच्चभाव का अवलम्बन करना दूसरा लक्षण है तथा प्रभुत्त्व (स्वामि) भाव को ग्रहण करना तीसरा लक्षण है ॥२३॥

स्वजातिनियमं प्राप्य विवाहः स्यान्मुदैर्युतः ।
स्त्रीपुंसो रेकभावः चतुर्थलक्षणं स्मृतम् ॥२४॥

भापार्थः—अपनी जाति के नियम के अनुसार प्रसन्नता पूर्वक विवाह करना तथा स्त्री पुरुप का एकभाव होना यह चौथा लक्षण कहा गया है ॥२४॥

धार्मिकेषु च कार्येषु हितंप्रीतिस्तथैकता ।
प्राणावधि च साहाय्यं पञ्चमं लक्षणं स्मृतम् ॥२५॥

भाषार्थः—धार्मिक कामों में परस्पर उत्साह से हित प्रीति एकता तथा प्राण पर्यन्त सहायता करना यह पांचवां लक्षण कहा गया है ॥२५॥

स्वदेशे स्यात्सदा प्रीतिः तथैवं शुभचिन्तनम् ।
षष्ठमेतल्लक्षणन्तु जगद्धेतोः समीरितम् ॥२६॥

भाषार्थः—अपने देश में सर्वदा प्रीति रखना तथा अच्छी बातों का चिन्तन करना यह रक्षा का छठा लक्षण संसार के हित के लिये कहा गया ॥२६॥

सत्संगस्यावलम्बश्च सप्तमं लक्षणं स्मृतम् ।
अष्टमन्तुसमाख्यातं प्रजाः सन्मार्गचालनम् ॥२७॥

भाषार्थः—सत्संगति का ग्रहण करना सातवां लक्षण कहा गया है तथा प्रजा को अच्छे मार्ग में चलाना यह आठवां लक्षण कहा गया है ॥२७॥

विविधानां हि विद्यानां धर्मस्य स्वप्रजास्वपि ।
प्रबन्धो लक्षणं चैतत् नवमंप्रतिपाद्यते ॥२८॥

भाषार्थः—अपनी प्रजा में विविध विद्याओं का तथा धर्म के उपदेश का निरन्तर प्रबन्ध करना नवमा लक्षण कहा गया है ॥२८॥

स्वस्त्यादिनवकानाञ्च प्रजामध्ये प्रवर्तनम् ।
यथायोगप्रयुक्त्यैव लक्षणंदशमं स्मृतम् ॥२९॥

भाषार्थः—स्वस्ति आदि नौ बातों का यथायोग युक्ति से प्रजा के मध्य में प्रचार करना यह दशवां लक्षण है ॥२९॥

न्यायस्य दशलक्षणानि

न्यायस्य वारितत्वं हि लक्षणानि दशैववा ।
वर्णनंक्रियते तेषां भूपमङ्गलहेतवे ॥३०॥

भाषार्थः—न्याय का जल तत्व है तथा इसके दस लक्षण होते हैं उन दस लक्षणों का राजाओं के कल्याण के निमित्त यहां पर वर्णन किया जाता है ॥३०॥

प्रीतिः स्यान्मातृभाषायां लक्षणं प्रथमं भवेत् ।
स्वदेशशुद्धभोज्यस्य सेवनं स्यात्द्वितीयकम् ॥३१॥

भाषार्थः—मातृभाषा में प्रीति रखना यह प्रथम लक्षण है अपने देश के शुद्ध भोजन का सेवन करना यह दूसरा न्याय का लक्षण है ॥३१॥

वीरवेषः परप्रीत्या तृतीयं लक्षणं स्मृतम् ।
यथार्थनिर्णयंकृत्वा-न्यायः स्यात्तुचतुर्थकम् ॥३२॥

पक्षपातविहीनत्वं पञ्चमं लक्षणं भवेत् ।
धर्मेणैवायसंसिद्धिः षष्ठमेतत्तुलक्षणम् ॥३३॥

भावार्थः—पक्षपात रहित होना यह पांचवां लक्षण है तथा धर्म पूर्वक (प्रजा हित के लिये) आमदनी करना यह छठा लक्षण कहा गया है ॥३३॥

वृद्ध्यादिनवकानाञ्च प्रबन्धकरणं सदा ।
न्यायस्य सप्तमं प्रोक्तं लक्षणं जनहेतवे ॥३४॥

भावार्थः—मनुष्यों के हित के लिये वृद्धि, शांति और स्थिति आदि (नौ बातों) का प्रबन्ध करना न्याय का सातवां लक्षण है ॥३४॥

नैरोग्यार्थं प्रजानाञ्च जलवायोश्चशोधनम् ।
न्यायस्य लक्षणञ्चैत-दष्टमं प्रतिपादितम् ॥३५॥

भावार्थः—प्रजा की नीरोगता के निमित्त जल और वायु को शुद्ध करना न्याय का आठवां लक्षण कहा गया है ॥३५॥

दयाऽहिंसाधर्मभावैः जडचेतनयोस्तथा ।
न्याये परा प्रवृत्तिःस्यात् लक्षणं नवमं स्मृतम् ॥३६॥

भावार्थः—दया अहिंसा और धार्मिक भावों से जड़ तथा चेतनों के न्याय करने में प्रवृत्ति रखना यह नवमा लक्षण कहा गया है ॥३६॥

धर्मेणैव प्रजामध्ये समृद्धेः परिवर्द्धनम् ।
लक्षणं दशमंप्रोक्तं न्यायस्य जगद्धेतवे ॥३७॥

भावार्थः—धर्म पूर्वक प्रजा के मध्य में समृद्धि (सम्पत्ति) का बढ़ाना यह न्याय का दशमां लक्षण है ॥३७॥

द्वितीयः पाठः

स्थित्यर्थं राज्यस्थापननिरूपणम्

पार्वत्युवाच

सर्वेषाम्मानवानाम्वा धर्मः कोऽस्ति पृथक् पृथक् ।
तथा संमिश्रितानाञ्च धर्मः को विद्यते विभो ! ॥१॥

भाषार्थः—हे प्रभो ! (शंकरजी) संसार में सम्पूर्ण मनुष्यों का पृथक्पृथक् तथा सब मनुष्यों का मिला हुआ एक धर्म क्या है सो यह कृपा कर मुझ से कहिये ॥१॥

तदा श्रीशंभुनाऽवाचि धर्मदृष्ट्या सुशान्तिभिः ।
प्रबन्धैरुत्तमैश्चापि प्रेम्णाज्ञापालनं प्रभोः ॥२॥

मुख्यधर्मोऽयमाख्यातः संसारस्थितिहेतवे ।
अस्यानुयायिभिः सौख्यं प्राप्यते विजयस्तथा ॥३॥

भाषार्थः—तब श्री शंकरजी बोले कि धार्मिकदृष्टि से तथा शांति पूर्वक और भले प्रबन्धों से एवं प्रेम पूर्वक प्रभु (स्वामी) की आज्ञा का पालन करना संसार की स्थिति के लिये यह मुख्य धर्म कहा गया है तथा इस मुख्य धर्म के अनुगामी मनुष्य सुख तथा विजय प्राप्त करते हैं ॥३॥

अहारसुखदुःखानां ज्ञानेन सहिता तु या ।
वानस्पत्यादिनिखिलाः स्थावरा रचना त्वियम ॥४॥

राज्यस्थापनम् ।

U.A P.P.J

U A. P. P. J
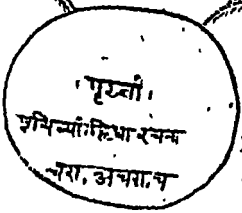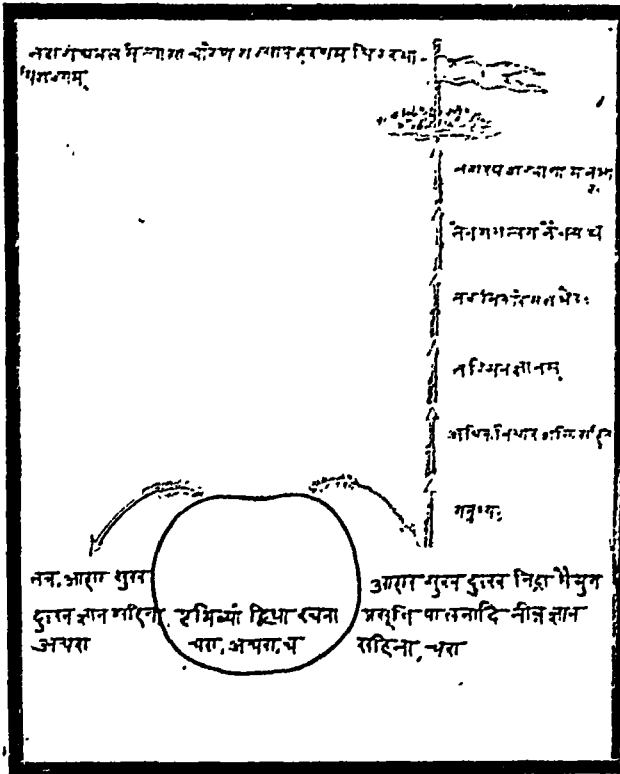
भाषार्थः—आहार, (भोजन) सुख और दुःख इनके ज्ञान के सहित सम्पूर्ण वृक्ष वनस्पत्यादि स्थावर (अचर) रचना है ॥४॥

चररचना "मनुष्य पश्वादिनाम्"

आहारसुखदुःखानां निद्रायाः भयक्रोधयोः।
मोहमैथुनयोश्चापि प्रसूतिपालनस्य च ॥५॥

स्पर्शस्य चापि विज्ञानं समानं विद्यते सदा।
पश्वादिषु मनुष्येषु न भेदोत्रकचिद्भवेत् ॥६॥

भाषार्थः—आहार (भोजन) सुख, दुःख, निद्रा, भय, क्रोध, मोह मैथुन, संतति का पालना और स्पर्श का ज्ञान ये मनुष्य तथा पशुओं में समान है इसमें किसी प्रकार भेद नहीं है ॥५-६॥

पश्वादिषु विचारस्तु विद्यतेऽल्पतरः सदा।
श्रेष्ठा विचारशक्तिश्च मनुष्येष्वेधिका मता ॥७॥

भाषार्थः—पशु पक्षी आदिकों में जो विचार है वह अल्प है तथा मनुष्यों में श्रेष्ठविचार शक्ति अधिक मानी गई है ॥७॥

तयैश्वरस्य विज्ञानं जनेषु विद्यते सदा।
त्रिधा तच्च समाख्यातं केवलं मनसः परम् ॥८॥

अवधेश्चापि विज्ञानमेतैः स्यात्परमंपदम्।
त्रिधा ज्ञानं तु संप्राप्य कुर्यात्कार्याणि मानवः ॥९॥

भाषार्थः—उस श्रेष्ठ अधिक विचार शक्ति से मनुष्यों में ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा वह ज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है जिसमें प्रथम केवल ज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान। दूसरा मन से भी परे (योग बल का ज्ञान) तीसरा अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानों से परम-

पद् की प्राप्ति होती है अतः त्रिविध ज्ञान को प्राप्त करने के लिये ही मनुष्यों को कार्य करना चाहिये ॥८-९॥

स्थूलज्ञानं तु जायेत श्रुतिमत्यो र्निरन्तरम् ।
एताभ्यां ज्ञान उत्साहस्तेन धर्मः प्रजायते ॥१०॥

धर्मादिष्टसमुत्पत्ति-रिष्टाद्वीरत्वसम्भवः ।
तस्माज्जितेन्द्रित्वं स्यात् तस्मात्तु बलपौरुषौ ॥११॥

जायते बलवुद्धिभ्यां पौरुषन्तु नृणां सदा ।
तस्य सम्यक् फलं श्रेयः राज्यं सम्प्राप्यते तदा ॥१२॥

भाषार्थः—स्थूलज्ञान श्रुति और मति (वुद्धि) का होता है और इभ श्रुति और मति के ज्ञान में उत्साह होता है तथा उस उत्साह से धर्म की प्राप्ति होती है। धर्म से इष्ट की उत्पत्ति होती है तथा इष्ट से वीरता होती है और वीर्य से जितेन्द्रियपन जितेंद्रिय से वल और पौरुष की प्राप्ति होती है। तथा वल और वुद्धि से जो पुरुषार्थ किया जाता है उसी का कल्याणकारी फल राज्य की प्राप्ति है ॥१०-११-१२॥

स्वतन्त्रराज्यम्

मानं मुद्रा तथा चैवं समाचारालया अपि ।
जातिध्वजाश्च सपथः शुल्कानामालयास्तथा ॥१३॥

ध्वजाचिन्हाकृतिर्वर्णाः सदा सन्तु पृथकपृथक् ।
स्वतन्त्रराज्यमेतद्धि विज्ञेयं मानवैः सदा ॥१४॥

भाषार्थः—मान (माप-तोल) मुद्रा, समाचारालय, राज्यशपथ, शुल्कालय तथा जाति की ध्वजा का चिह्न, आकार और उसका वर्ण भी पृथक् २ होने से स्वतन्त्र राज्य कहा जाता है ॥१३-१४॥

दशशासनलक्षणानि

बलबुद्धिविभेदेन प्रजाः सन्मार्गगामिनीः ।
कर्तुन्दशविधान्यत्र शासनानि ब्रवीम्यहम् ॥१५॥

भाषार्थः—बल और बुद्धि के भेद से प्रजा को अच्छे मार्ग में चलने वाली बनाने के लिये दस प्रकार के शासनों का वर्णन किया जाता है ॥१५॥

व्यवस्थातन्त्रराज्यम्

ननु समस्तप्रकृत्यनुमोदितं
विहितसीममतीवमनोहरम् ।
भवति तत्विह राज्यमसंशयं
सकलसौख्यविधायकमक्षयम् ॥१६॥

व्यवस्थातन्त्रराज्यं हि कथ्यते सर्वभूतले ।
एतद्राज्यप्रबन्धेन व्यवस्था साधु जायते ॥१७॥

भाषार्थः—जो राज्य संपूर्ण प्रजा से अनुमोदित (स्वीकृत) तथा मर्यादा में बंधा हुआ है वह मनोहर राज्य समस्त सुखों का करने वाला तथा अक्षय है और वह व्यवस्थातन्त्र राज्य कहा जाता है इस प्रकार राज्य का प्रबन्ध होने से राज्य की व्यवस्था उत्तम होती है ॥१६-१७॥

धर्मराज्यम्

प्रजानिश्चितसभ्यानां लोकानुभवशालिनाम् ।
निस्वार्थसत्यरक्तानां धार्मिणान्दूरदर्शिनाम् ॥१८॥

परार्थन्याययुक्तानां जनानान्तु निरन्तरम् ।
अनेकशास्त्रविज्ञानां मन्त्रिणामेत्यसंमतिम् ॥१९॥
प्रकृत्याः सुखशान्त्यर्थं स्थित्यर्थं यच्चशासनम् ।
द्वितीयन्धर्मराज्यन्तत् कथ्यते क्षितिमण्डले ॥२०॥

भावार्थः—प्रजा से निश्चित् किये हुए सभासद्, संसार के अनुभवी, वृद्ध, स्वार्थत्यागी, सत्य के प्रेमी, धर्मात्मा, दूरदर्शी, परमार्थ और न्याय में लगे हुए, अनेक शास्त्रों के पंडित, बुद्धिमान् ऐसे मंत्रियों की सम्मति प्राप्त करके प्रजा में वृद्धि, शांति और स्थिति के लिये जो राज्य किया जाता है उसे समस्त भूमण्डल में दूसरा धर्म राज्य कहते हैं ॥१८-१९-२०॥

मर्यादाराज्यम्

मर्यादया तु यद्राज्यं मर्यादाराज्यमुच्यते ।
तृतीयमस्मिन् लोकानां न चिन्ता सुखदुःखयोः ॥२१॥

भावार्थः—मर्यादा (नियम) बांधकर जो राज्य किया जाता है उसे मर्यादा राज्य कहते हैं इस तृतीय राज्य में मनुष्यों को सुख दुःख प्राप्त करने की चिन्ता नहीं रहती। क्योंकि इस राज्य में सुख तथा दुःख नियमानुसार ही प्राप्त होता है ॥२१॥

कतिपयजनतन्त्रराज्यम्

भूमेरधिपतीनां यत् धनाढ्यानाञ्च शासनम् ।
कतिपयजनतन्त्रं राज्यन्तुर्यंन्निगद्यते ॥२२॥

भावार्थः—भूम्यधिपति (जागीरदार) तथा धनवान् पुरुषों का जहां पर राज्य होता है उसको चौथा कतिपय जन तन्त्र राज्य कहते हैं ॥२२॥

सेनातन्त्रराज्यम्

सभ्यैरग्रेसरैर्यच्च योग्यसेनाऽधिनायकैः ।
राज्यम्पञ्चमकञ्चैतत् सेनातन्त्रमिहोच्यते ॥२३॥

भाषार्थः—सुयोग्य सेना के नायक, अग्रेसर (अग्रणी) ऐसे सभासदों से जो राज्य किया जाता है उसे श्री राजविद्या में पांचवां सेनातन्त्र राज्य कहा गया है ॥२३॥

प्रजाभूपतिसम्मतराज्यम्

राज्यवंशसमुत्पन्नैः प्रजासभ्यनरैस्तथा ।
लोकानुभवयुक्तैश्च निःस्वार्थै दूरदर्शिभिः ॥२४॥
धर्मन्यायानुरक्तैश्च सन्ततं सत्यभाषिभिः ।
मानवैः सम्मतिम्प्राप्य क्रियते यच्च शासनम् ॥२५॥
एतत्तुशासनंप्रोक्तं प्रजाभूपतिसम्मतम् ।
षष्ठमेतत्तु संजातं राज्यकल्याणवर्द्धनम् ॥२६॥

भाषार्थः—राज्य वंश में उत्पन्न हुये, संसार के अनुभव से युक्त जो प्रजा से निश्चित् किये हुये सभासदों से तथा स्वार्थ से रहित उत्साही दूरदर्शी, न्यायधर्मानुरक्त, सत्यभाषण करने वाले मनुष्यों से सम्मति प्राप्त करके जो राज्य किया जाता है ऐसे राज्य को प्रजाभूपतिसम्मत राज्य कहते हैं यह छठे राज्य का लक्षण है तथा ऐसा राज्य कल्याण की वृद्धि करने वाला होता है ॥२४-२५-२६॥

नृपतन्त्रराज्यम्

जायते नृपबुद्ध्यैव नृपतन्त्रन्तु शासनम् ।
सप्तमञ्च समाख्यातं सर्वस्मिं क्षितिमण्डले ॥२७॥

भाषार्थः—जो राज्य केवल राजा की बुद्धि के अनुसार ही किया जाता है उसे नृपतन्त्र राज्य कहते हैं तथा समस्त संसार को इसकी संख्या सातवीं जाननी चाहिये ॥२७॥

अनियन्त्रितराज्यम्

कृपापात्रैस्तथाभृत्यैः भूपतेर्यच्च जायते ।
राज्यं निगद्यते चैत-दष्टममनियन्त्रितम् ॥२८॥

भाषार्थः—जो राज्य राजा के कृपापात्र तथा भृत्यों से किया जाता है वह आठवां अनियन्त्रित राज्य कहा गया है ॥२८॥

श्रेष्ठमानवतन्त्रराज्यम्

बुधैः श्रेष्ठमनुष्यैश्च जायते यच्चशासनम् ।
श्रेष्ठमानवतन्त्रन्तत् नवमम्प्रतिपाद्यते ॥२९॥

भाषार्थः—जो राज्य श्रेष्ठ बुधजनों से किया जाता है अर्थात् श्रेष्ठ पण्डित जन जिस राज्य को करते हैं। वह नवमां श्रेष्ठ मानव तन्त्र राज्य कहा गया है ॥२९॥

प्रजातन्त्रराज्यम्

दीनेष्वपि धनाढ्येषु पञ्च पञ्च सभासदाः ।
सेनाधिपै रुच्चवंश्यैः सन्तुपञ्चसभासदाः ॥३०॥

सर्वजातिषु सन्त्वेव पञ्चपञ्चसभासदाः ।
तैः सम्मतन्तुदशमं प्रजा तन्त्रञ्च शासनम् ॥३१॥

भाषार्थः—दीन तथा धनवान् मनुष्यों में पांच २ सभासद्, उच्चवंश के सेनानायकों में से पांच, संपूर्ण जातियों में से पांच २ सभासद् इन सबों की सम्मति से जो राज्य किया जाता है उसे दशवां प्रजातन्त्र राज्य कहते हैं ॥३०-३१॥

तृतीयः पाठः

राज्यप्रयोजननिरूपणम्

श्रीपार्वत्युवाच

राज्यार्पणं किमर्थं भो ! कस्मै वा क्रियते विभो ! ।
एतत्सर्वं कृपां कृत्वा ब्रूहि मां जगद्धेतवे ॥१॥

भाषार्थः—श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे नाथ ! राज्य किस लिये तथा किस को दिया जाता है यह सब बात संसार के हित के निमित्त मेरे प्रति कहो ॥१॥

श्रीशंकर उवाच

निक्षेपवत् सृष्टिरेषा नृपेषु रक्षिता मया ।
प्रजावृद्धिं प्रकुर्वन्तु राजानः सन्ति ये भुवि ॥२॥
राज्यार्पणं नृपेभ्योय देतदर्थं च विद्यते ।
हितैषिणश्चलोकस्य प्रजा रक्षन्तु मेधनीम् ॥३॥
वृद्धेरुपायं कुर्वन्तु स्वोपभोगाय नो भवेत् ।
नृपस्तु सन्तते स्तुल्याः प्रजाः संरक्षयेत्सदा ॥४॥
विपरीतानि कार्याणि स्वस्य वा कर्मचारिणाम् ।
अवीक्षणेनाप्नुवन्ति प्रजाःदुःखानि वै तदा ॥५॥
दुर्वाक्यैस्तु प्रजायाश्च भूपति र्दुःखमश्नुते ।
लोके निन्दां च सम्प्राप्य पश्चान्नर्काय गच्छति ॥६॥
तस्मात्प्रतिक्षणे भूपो वीक्षेत कर्मचारिणाम् ।
योग्यतां सत्प्रबन्धार्थं राज्यकल्याणहेतवे ॥७॥

भावार्थः—शंकर जी बोले कि यह सृष्टि मैंने राजाओं में निक्षेप (धरोहर के तौर पर) सौंपी है इसलिये राजाओं को चाहिये कि प्रजा की वृद्धि करें। राजाओं के लिये राज्य इसलिये सौंपे गये हैं कि वे लोकहितैषी बनकर प्रजा की तथा भूमि की रक्षा करें तथा उसकी वृद्धि के उपायों को करें केवल अपने ही भोगों में लगे हुए न रहें तथा राजा अपनी प्रजा को अपनी सन्तति से विशेषकर रक्षा करे जो राजा अपने और कर्मचारियों के विपरीत काम होने से या कर्मचारियों के विपरीत कामों को न देखने से प्रजा को दुःख देता है तब वह दुखी प्रजा के दुराशीर्वाद से लोक में निन्दा प्राप्त कर निश्चय नर्क प्राप्त करता है इसलिये राजा को चाहिये कि अच्छे प्रबन्ध और राज्य के कल्याण के लिये प्रतिक्षण (हरसमय) अपने कर्मचारियों की योग्यता को देखता रहे ॥२-३-४-५-६-७॥

महीपालो राजविद्यां विहाय प्रकृतेर्धनं ।
ग्रहणात्यन्यायमाश्रित्य निरपत्यो विपद्यते ॥८॥

भाषार्थः—जो राजा श्री राजविद्या के ज्ञान को छोड़कर तथा अन्याय का अवलम्बन करके प्रजा के धन को ग्रहण करता है वह निःसन्तान होकर नष्ट हो जाता है ॥८॥

एतादृशस्य भूपस्य संततिर्ह्यधिका यदि ।
प्रजादुराशिषं प्राप्य युद्ध्यते च परस्परम् ॥९॥
अन्यै भूपतिभिः सार्द्धं युद्धैराकस्मिकैस्तथा ।
विनाशं यांति चैतस्य कुर्यादूज्ञानं महीपतिः ॥१०॥
अन्यायिभूमिपालेन द्वेषं कुर्वन्ति भूभुजः ।
नियमोऽयं प्रकृत्याश्च तस्मादेतद्विचार्यताम् ॥११॥

भापार्थः—यदि ऐसे राजा के सन्तान अधिक हो तो वह प्रजा का दुराशीर्वाद प्राप्त करके आपस में युद्ध करने लगती है अथवा अन्य राजाओं के साथ अकस्मात् युद्ध छिड़ जाने से अन्यायी राजा

की सन्तति विनष्ट होजाती है इस बात का राजा ध्यान रक्खे क्योंकि अन्यायी राजा के साथ दूसरे राजा द्वेष पैदा कर लेते हैं यह प्रकृति का नियम है ॥९-१०-११॥

तत्वमेतत्परिज्ञाय सम्यगेव महीपतिः ।
प्रजाः स्वकीयसन्तत्यः स्नेहाधिक्येन पालयेत् ॥१२॥
तस्यैव भूपते र्भूमौ राज्यं संजायते स्थिरम् ।
चिरकालं ससन्तानः भुनक्ति स सदा मुदा ॥१३॥

भावार्थः—इस उपरोक्त तत्व को जानकर राजा अपनी संतान के प्रेम से भी अधिक स्नेह से प्रजा की पालना करे उसी राजा का राज्य संसार में स्थिरता को प्राप्त करता है और चिरकाल तक अपनी सन्तान के साथ २ हर्ष पूर्वक राज्य का उपभोग करता है ॥१२-१३॥

चतुर्थः पाठः

राज्यस्थैर्यनिरूपणम्

सैश्वर्यैः क्षत्रियान् वीरान् प्रबध्वा भूमिशासने ।
नैश्चल्यं लभते भूपो राज्यं सुस्थिरतां तथा ॥१॥

भावार्थः—मालकी भाव से युक्त राजा वीर क्षत्रियों को भूमि शासन में बांधकर ही निश्चलता को प्राप्त करता है तथा उसका राज्य स्थिरता प्राप्त करता है ॥१॥

वीरेभ्यः क्षत्रिभ्येस्तु भूदानस्य त्वनन्तरम् ।
महीलोके सुखै र्युक्तः कुर्याद्राज्यमकण्टकम् ॥२॥

भावार्थः—वीरक्षत्रियों को भूमि का शासन देने के पश्चात् राजा इस संसार में सुख पूर्वक निष्कण्टक राज्य करता है। अर्थात् राज्य में अधिक जागीरदार होने से राज्य का बल प्रबल हो जाता है अतः प्रबल बल के कारण शत्रु आक्रमण करने से विमुख रहते हैं यदि करें भी तो पराजित होना सम्भव है इसी आशय से यहां पर अकण्टक राज्य करने के वाक्य का समावेश किया गया है इसका आशय नीचे के श्लोक से स्पष्ट होता है ॥२॥

मनः कायवचोभिर्वा धनैः प्राणैश्च सन्ततम् ।
स्वस्वामिनोऽभिरक्षार्थं तत्पराः सन्तु ते समे ॥३॥

भावार्थः—वे राज्य की ओर से थोड़ा २ भूमिशासन प्राप्त किये हुये वीरक्षत्रिय अपने वचन, धन और प्राणों से स्वामी की रक्षा करें। अर्थात् यह उनका धर्म है ॥३॥

प्राप्ताधिकारास्ते सर्वे वार्षिकं निश्चितं करम् ।
दद्युर्निजोच्चभूपाय कुर्वन्त्वर्चाश्च सर्वशः ॥४॥

भाषार्थः—राज्य की ओर से भूमि पर अधिकार प्राप्त किए हुए वे वीरक्षत्रिय निश्चित् किए हुए वार्षिक (जो प्रति वर्ष देना निश्चित् हुआ हो) कर (लगान) को अपने सेऊपर के राजा को देवें तथा सब प्रकार से सेवा करते रहें ॥४॥

प्रतिवर्षं महीपालो वारमेकमसंशयम् ।
योग्यतामधिकृतानां क्षत्रियाणां विलोकयेत् ॥५॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि प्रत्येक वर्ष में एक वार अपने राज्य से अधिकार प्राप्त किये हुए क्षत्रियों की योग्यता को देखा करे ॥५॥

कोषसंचयः

धनकोषं द्विधा कुर्याद्भू पतिर्निजशासने ।
गुप्तमेकं तथा चान्यत् प्रकाश्यं सर्वतस्तथा ॥६॥

भाषार्थः—राजा धन (सम्पत्ति) के कोष (खज़ाने) को दो प्रकार से अपने राज्य में रक्खें जिसमें एक तो गुप्त तथा दूसरा प्रकाश्य (खुला) होवे ॥६॥

सेनारक्षणप्रकारः

सेनाप्येवं द्विधा रक्षेत् राज्यरक्षणहेतवे ।
प्रथमां गुह्यरूपेण प्रकाश्यामपरान्तथा ॥७॥

सामिग्रीं सैनिकानाञ्च कुर्यादेवं द्विधा नृपः ।
तदैव राज्यदार्ढ्यं स्यात् प्रबन्धः साधु वा भवेत् ॥८॥

भावार्थः—इसी प्रकार राज्य की रक्षा के निमित्त सेना भी दो प्रकार की होनी चाहिये जिसमें प्रथम गुप्त रूप से तथा दूसरी प्रकाश्य रूप से। इसी प्रकार गुप्त तथा प्रकाश्य रूप से सैनिकों की सामिग्री भी होनी चाहिये। तब ही राज्य की दृढ़ता तथा भलीभांति रक्षा हो सकती है ॥७-८॥

भूम्याकाशवारिसेना पवित्रविषमस्थले ।
शस्त्रास्त्राभ्यासदक्षास्यात् नित्य दार्ढ्येन संस्थिता ॥९॥

भावार्थः—भूमि, आकाश और जल में चलने वाली सेना पवित्र और विषम स्थान पर नित्यप्रति शस्त्र और अस्त्रों के अभ्यास में कुशल, दृढ़ता पूर्वक स्थित रहनी चाहिये ॥९॥

दुर्गरक्षा

दुर्गस्यपरिरक्षार्थं दुर्गे सेना सुशिक्षिता ।
भूपालस्य प्रबन्धेन सज्जितास्यात्सुनिश्चिता ॥१०॥

भावार्थः—दुर्ग (किले) की रक्षा के लिये सुशिक्षित तथा अस्त्रशस्त्रों से सजी हुई सेना निश्चित् रहनी चाहिये ॥१०॥

भुम्यधिपतिप्रयोजनम्

क्षत्रियाणां प्रवीराणां भूपतित्वप्रयोजनम् ।
अखिलेष्वपि तत्वेषु स्वाधिकारः सदा भवेत् ॥११॥

यस्मिन्राज्ये क्षत्रियाःस्युः भूम्यधिपतयोधिकाः ।
सदातन् मंगलैर्युक्तं दृढतां चानुगच्छति ॥१२॥

भाषार्थः—क्षत्रिय वीरों का भूपति (पृथ्वी के मालिक) से प्रयोजन यह है कि जहां की भूमिका जिसको अधिकार मिला हो वहां के सम्पूर्ण तत्वों पर उनका अधिकार हो । जिस राज्य में क्षत्रिय लोग अधिक संख्या में थोड़ी २ भूमि के स्वामी होते हैं वह राज्य सर्वदा कल्याण तथा दृढ़ता से युक्त होता है ॥११-१२॥

यावतां राजविद्यायाः शिक्षितानां प्रशासने ।
क्षत्रियाणामाधिपत्यं तावद्राज्यं दृढंभवेत् ॥१३॥

यावन्त्यधिकमूलानि तरो र्यस्य भवन्ति हि ।
तावन्मात्रं तस्य दार्ढ्यं तथा राज्यस्य जायते ॥१४॥

भाषार्थः—जितने अधिक श्रीराजविद्या के शिक्षित क्षत्रियों का जिस राज्य में मालकी भाव होता है उतना ही अथवा तभी तक राज्य की दृढ़ता रहती है जिस प्रकार जिस वृक्ष के जितनी अधिक जड़ें होती हैं उतनी ही अधिक उस वृक्ष की भी दृढ़ता होती है । अर्थात् जिस राज्य में इस प्रकार का स्वामिभाव कम हो जाता है उतनी ही उस राज्य की स्थिरता में हानियां हैं । इसका प्रयोजन यह है कि वहुत जागीरदारों से राज्य की दृढ़ता वनी रहती है ॥१३-१४॥

नृपः केवलं भृत्यसेनाश्रितो यः
कदाचित् स कालस्य चक्रेऽभियातः ।
परिभ्रश्यते राज्यतो नूनमेवं
परिज्ञानमेतस्य कार्यं स्वबुद्ध्या ॥१५॥

भाषार्थः—जो राजा केवल भृत्यसेना (नोकर फौज) के आश्रय पर ही राज्य करता है तो वह कभी समय के चक्र में आकर राज्य से भ्रष्ट हो जाता है इस वात का राजा को अपनी ही वुद्धि से विचार कर लेना चाहिये ॥१५॥
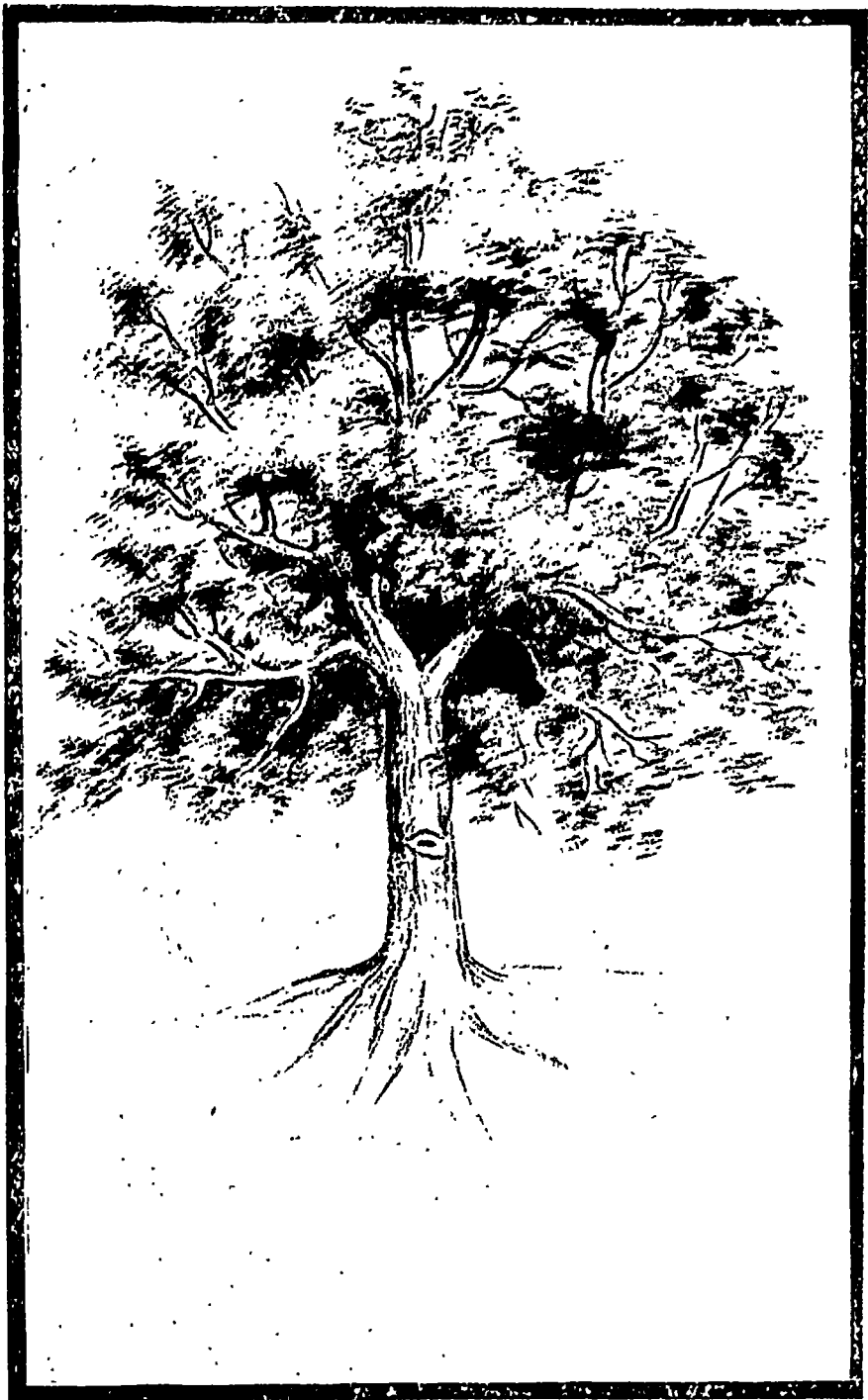
सत्प्रबन्धेनोत्तमराज्यरूपवृक्षः ।

UAPPJ

भृत्यप्रबलदार्ढ्यन्तु राज्ये संविद्यते तथा ।
यथा वृक्षस्य मूलं स्यात् भूमेरुपरिचोद्धृतम् ॥१६॥
एतादृशस्य मूलस्य चोपरिष्टात्तु सेचनात् ।
स्थितिर्वृक्षस्य जायेत नवा संजायतेऽन्यथा ॥१७॥
भूमेः सुधारसंन्नैव समाकर्षति कर्हिचित् ।
एवंभृत्यबलाद्राज्ये वेतनेनैव संस्थितिः ॥१८॥
तरोर्मूलस्य चैक्याच्चु वृक्षस्य जायते स्थितिः ।
बलस्य राज्यस्यैक्याच्चु राज्यस्य जायते स्थितिः ॥१९॥

भाषार्थः—नोकर फौज से राज्य की दृढ़ता उस प्रकार है जैसे किसी वृक्ष की जड़ भूमि में न जाकर ऊपर पत्थर आदि पर उठी हुई हो ऐसी जड़ ऊपर से सींची जाती है तब ही वृक्ष की स्थिति है अन्यथा नहीं । ऊपर उठी हुई जड़ स्वयम् भूमि से सुधारस नहीं खींच सकती इसी तरह नोकर फौज से राज्य की स्थिति उसकी तनख्वा पर है । जड़ और वृक्ष की एकता से वृक्ष की जिस प्रकार स्थिति है उसी तरह राज्य और सेना से राज्य की स्थिति है ॥१६-१७-१८-१९॥

अनेकैस्तुराजन्यकैर्भूमिपालैः
　　महीनायकस्यास्ति राज्ये सुदार्ढ्यम् ।
अतः सर्वमेतत् विमृश्यैव विज्ञः
　　प्रदद्यात पृथिव्यो विभागं तु तेभ्यः ॥२०॥

भाषार्थः—अनेक क्षत्रिय और भूमिपालों (थोड़ी भूमि के मालिक) से बड़े राजा की दृढ़ता होती है अतः इस सम्पूर्ण बात का विचार कर विज्ञ राजा भूमि का विभाग उन क्षत्रियों को दे दे ॥२०॥

भूम्यधिपतिसंयुक्तो महीपालो निरन्तरम् ।
राज्यस्य दार्ढ्यमाप्नोति यशश्च लभते सुखम् ॥२१॥

भापार्थः—जिस राजा के राज्य में भूमिपति (जागीरदार) अधिक हैं वह राजा निरन्तर राज्य की दृढ़ता तथा यश और सुख को प्राप्त करता है ॥२१॥

मूलस्य चापि वृक्षस्य स्थितिरस्त्युभयाश्रिता ।
पार्थक्येन विनाशस्तु जायते नात्र संशयः ॥२२॥

भापार्थः—जिस प्रकार मूल (जड़) और वृक्ष की एक्यता से वृक्ष की स्थिति है अथवा दौनों के आश्रित है उन दौनों के आपस में पृथक् होने पर नाश के इतर परिणाम कुछ नहीं है ॥२२॥

भूम्यधिपतिमूलैस्तु राजवृक्षः समाश्रितः ।
राज्यरूपफलस्याप्तिः जायते तत्प्रपोषणात् ॥२३॥

भापार्थः—भूम्यधिप (जागीरदार) रूप मूलों (जड़ों) के आश्रित राजा रूप वृक्ष रहता है तथा उन मूलों के भलीभांति पोषण से राज्य रूप फल की प्राप्ति होती है अर्थात् जागीरदार और राजा इन दौनों से ही राज्य स्थिर है ॥२३॥

मूलान्यधस्ताल्लघुतां प्रयान्ति
यथाक्रमं तेन महीपतीनाम् ।
राज्येधिकारोस्तु हितैच्छयैव
राज्यस्य दार्ढ्यं प्रभवेत् तदैव ॥२४॥

भापार्थः—जिस प्रकार क्रम से वृक्ष की जड़ नीचे जाते २ (छोटी) पतली होती जाती है इसी प्रकार राज्य में छोटे २ महीपतियों का भी अधिकार होना चाहिये ऐसा करने से राज्य की दृढ़ता होती है । अर्थात् जिस राज्य में जितने जागीरदार अधिक होंगे वह

अर्धराज्यरूपवृक्षः । J A P P J.

राज्य उतना ही दृढ़ हो सकेगा। यानी मोटी जड़ नीचे जाते जाते क्रमशः पतली होती जाती हैं और बहुत शाखा छोड़ती जाती हैं इसी तरह मोटी जड़ बड़े जागीरदार फिर नीचे उससे पतली उनसे छोटे जागीरदार होते है यही क्रम साधारण क्षत्रियों तक जानना चाहिये ॥ २४॥

बलबुद्ध्याश्रितं राज्यं जायते सर्वदा स्थिरम् ।
शस्त्राभ्यस्तक्षत्रियास्तु बलपक्षे समीरिताः ॥२५॥
राजर्षयो बुद्धिमन्तः बुद्धिपक्षे विनिश्चिताः ।
रीत्या नया भवेद्राज्यं बलबुद्ध्याश्रितं सदा ॥२६॥

भाषार्थः—जो राज्य बल और बुद्धि के आश्रित है वही राज्य दृढ़ता प्राप्त करता है जिसमें अस्त्र शस्त्रों के अभ्यास को पाये हुये क्षत्रिय बल पक्ष में जानने चाहिये। राजर्षी और बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि पक्ष में जानने चाहिये, इस रीति से बल और बुद्धि के आश्रित राज्य कहा गया है ॥२५-२६॥

यथैवार्द्धानि मूलानि शोषमायांति सर्वशः ।
वृक्षोऽपिशोषमायाति प्रपुष्टोऽर्धोभिजायते ॥२७॥
विकारेऽत्र समुत्पन्ने मूलमर्धश्च भूरुहः ।
शुष्यत्येव तथा राज्य-मर्धं याति विशोषताम् ॥२८॥
मूलेभ्यो यदि वृक्षाणां सम्बन्धस्तु पृथक् भवेत् ।
शोषमेति तथा शाखी राज्यमेवं विनश्यति ॥२९॥
क्षत्रियाणाञ्च भूपानां द्वेषाग्निर्ज्वलितो भवेत् ।
राज्यरूपस्तदा शाखी भस्मतामेति सर्वथा ॥३०॥

भाषार्थः—जिस प्रकार जिस वृक्ष की आधी जड़ें सूख जाती हैं तब वह आधा वृक्ष सूख जाया करता है और आधा (जिस ओर की जड़े नहीं सूखी हैं) वृक्ष पुष्ट होता रहता है, तथा जिस प्रकार

विकार उत्पन्न होने पर आधा मूल और आधा वृक्ष सूख जाता है उसी प्रकार आधे राज्य में विकार (उपद्रव) पैदा होने पर आधा राज्य नष्ट हो जाता है । यदि मूलों (जड़ों) से वृक्षों का सम्बन्ध प्रथक् हो जाता है तब जिस प्रकार वृक्ष सूख जाता है उसी प्रकार राज्य भी शोष (नाश) को प्राप्त होता है । जब राजा के अन्याय से राज्य में रहने वाले क्षत्रिय और राजाओं की द्वेष रूप अग्नि जलने लगती है अर्थात् अन्याय से जब आपस में द्वेष पैदा हो जाता है तब राज्य रूप वृक्ष भस्म हो जाता है इसी प्रकार आधे राज्य में जागीरदार न होने से आधे राज्य की ही स्थिति नष्ट होती है और सम्पूर्ण राज्य में जागीरदारों के अभाव से सम्पूर्ण राज्य की स्थिति नष्ट हो जाती है वृक्ष की जड़ों में भूमि जलरूप सुधारस देती हैपरन्तु अन्याय से जड़ों में अग्नि देने लग जाती है । जिससे जड़ें जलकर वृक्ष भी नष्ट हो जाता है यही अन्याय रूप विकार है तथा द्वेषारूप अग्नि है ॥२७ २८-२९-३०॥

राज्यरूपे महावृक्षे न्यायरूपस्य वारिणः ।
अभावेऽन्यायरूपोग्नि र्दहत्येव निरन्तरम् ॥३१॥

भाषार्थः—राज्य स्वरूप महावृक्ष में यदि न्याय स्वरूप जल का अभाव होता है तब अन्याय रूप अग्नि उस राज्य रूप वृक्ष को जला देती है । अर्थात् राज्य में न्याय का अभाव होने से अन्याय उस राज्य को नष्ट कर देता है ॥३१॥

अक्षयवटवृक्षस्य मूलैः संजायते स्थितिः ।
यावन्त्यधिकमूलानि तावतीदृढताधिका ॥३२॥

भाषार्थः—अक्षय रूप वट (वरगद) के वृक्ष के मूलों (जड़ों) से उक्त वृक्ष की स्थिति होती है उसके जितने अधिक मूल (जड़) होते हैं उतनी ही उस वृक्ष की अधिक दृढ़ता होती है अर्थात् जितनी अक्षयवट की जड़ें भूमि का संयोग प्राप्त करती है उतनी ही उसकी दृढ़ता होती है इसी प्रकार क्षत्रियों को भूमि शासन देने से राज्य की दृढ़ता होती है ॥३२॥
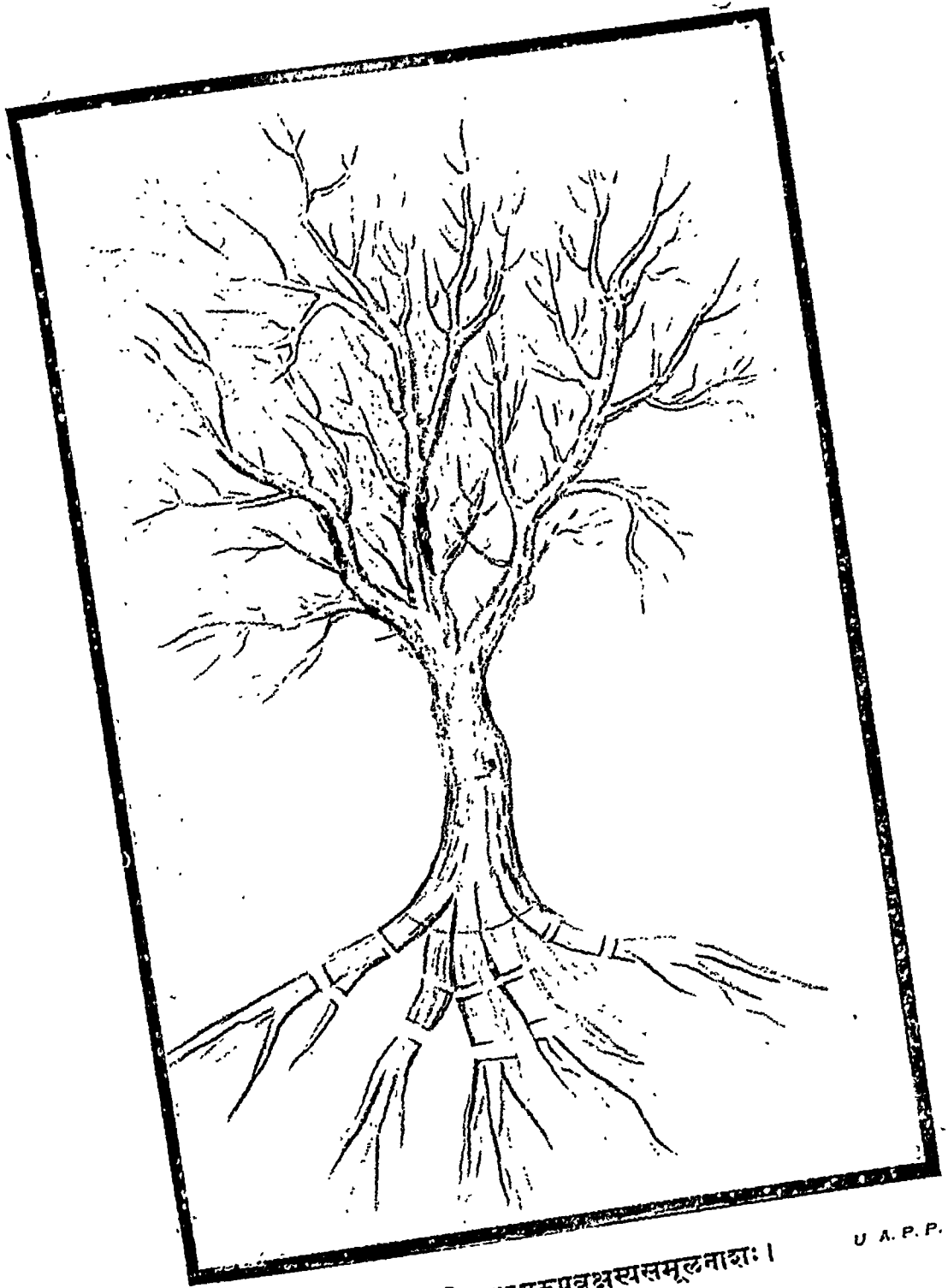
दुष्प्रवन्धेनराज्यरूपवृक्षस्यसमूलनाशः।

U A.P.P.J

अन्यायाग्निप्रकोपेनराज्यरूपवृक्षविनाशः । U. A P P. J

सुबृहद्राज्यकल्पवृक्षः ।
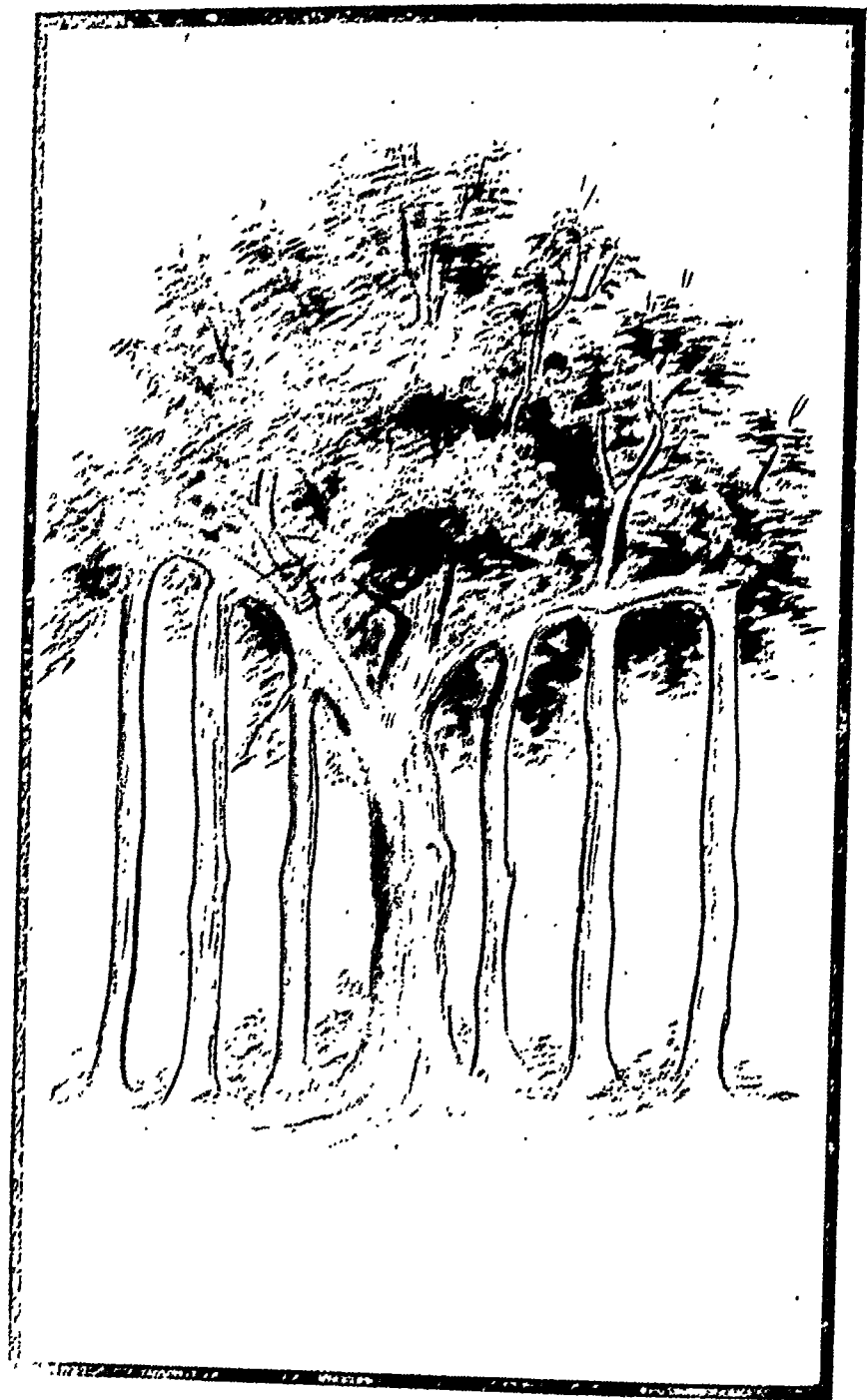
मूलानि दीर्घाणि यदाऽक्षयस्य
संयोगमायान्ति तरोः पृथिव्याः ।
तदा न चोत्पाटयितुं समर्थः
वृक्षं क्वचिन्मारुतपूर्णवेगः ॥३३॥

भाषार्थः—जब अक्षय वट के बढ़े हुए मूल वृक्ष और पृथ्वी से मिल जाते हैं तब उस वृक्ष की दृढ़ता के कारण वायु का वेग उखाड़ नहीं सकता ॥३३॥

एवं स्वकीयसन्तत्यै क्षत्रियेभ्यो ददाति यः ।
भूविभागं तस्य राज्यं दृढं संजायते सदा ॥३४॥

भाषार्थः—इसी प्रकार अपनी संतान तथा वीर क्षत्रिय लोगों को जो राजा भूमि भाग देता है तब उस राजा का राज्य सदा दृढ़ बना रहता है । अर्थात् उसे समय का चक्र भी नहीं उखाड़ सकता ॥३४॥

भूपालकैःराज्यविनिश्रितैश्च
दृढत्वमायाति सदैव राज्यम् ।
नान्यस्य भूपस्य बलं कदाचित्
राज्यापहारे क्षमतां प्रयाति ॥३५॥

भाषार्थः—राज्य से निश्रित् किये हुए सामन्तकों (जागीर-दारों) से राज्य दृढ़ता को प्राप्त करता है तब उस राज्य को अन्य राजा का बल (सेना) कभी भी अपहरण करने में समर्थ नहीं हो सकता ॥३५॥

भृत्यसेना वेतनस्य दानेन फलदा भवेत् ।
यथोद्गतानि मूलानि स्थिरतां यान्ति सेचनात् ॥३६॥

भाषार्थः—नोकर रक्खी हुई सेना वेतन (तनख्वा) देने से ही फल को देने वाली होती है जिस प्रकार ऊपर उठे हुए वृक्ष के मूल का सेचन करने से उसकी स्थिरता होती है ॥३६॥

रत्नैः सुवर्णैः सहितं मनोज्ञम्
विस्तीरितं संस्तरण नितान्तम् ।
ये राजविद्यापरिपूर्णदक्षाः
कुर्वन्ति सौख्येन सदैव राज्यम् ॥३७॥

भाषार्थः—रत्न और सुवर्ण से सहित मनोहर पृथ्वी रूप विछोना विछाया हुआ है सो इसे जो राजा राजविद्या में पूर्ण कुशल हैं वे उस पृथ्वी रूप आस्तर्ण पर सुख पूर्वक राज्य करते हैं ॥३७॥

यस्मिंस्तु राज्येऽधिकृताः सुवीराः
सत्क्षत्रियाः सन्ति तदन्यभूपाः ।
हर्तुं समर्था न कदाचिदेव
ज्ञानं प्रकुर्वन्तु समे महीपाः ॥३८॥

भाषार्थः—जिस राजा के राज्य में अच्छे वीर क्षत्रिय अधिकार प्राप्त किये हुए होते हैं उस राज्य को अन्य राजा कभी भी हरण नहीं कर सकते इस बात का सर्वदा राजा लोग ज्ञान प्राप्त करलें ॥३८॥

यस्मिंस्तु राज्ये ह्यधिकाः महीपाः
तद्वीक्ष्यशत्रुः प्रतिगच्छतीह ।
न सन्ति यस्मिन्रिपवोऽखिलं तत्
हरन्त्यवश्यं त्वबलं विलोक्य ॥३९॥

भाषार्थः—जिस राज्य में पृथ्वी पर शासन करने वाले अधिक महीप (जागीरदार) होते हैं ऐसे राज्य को देखकर शत्रु
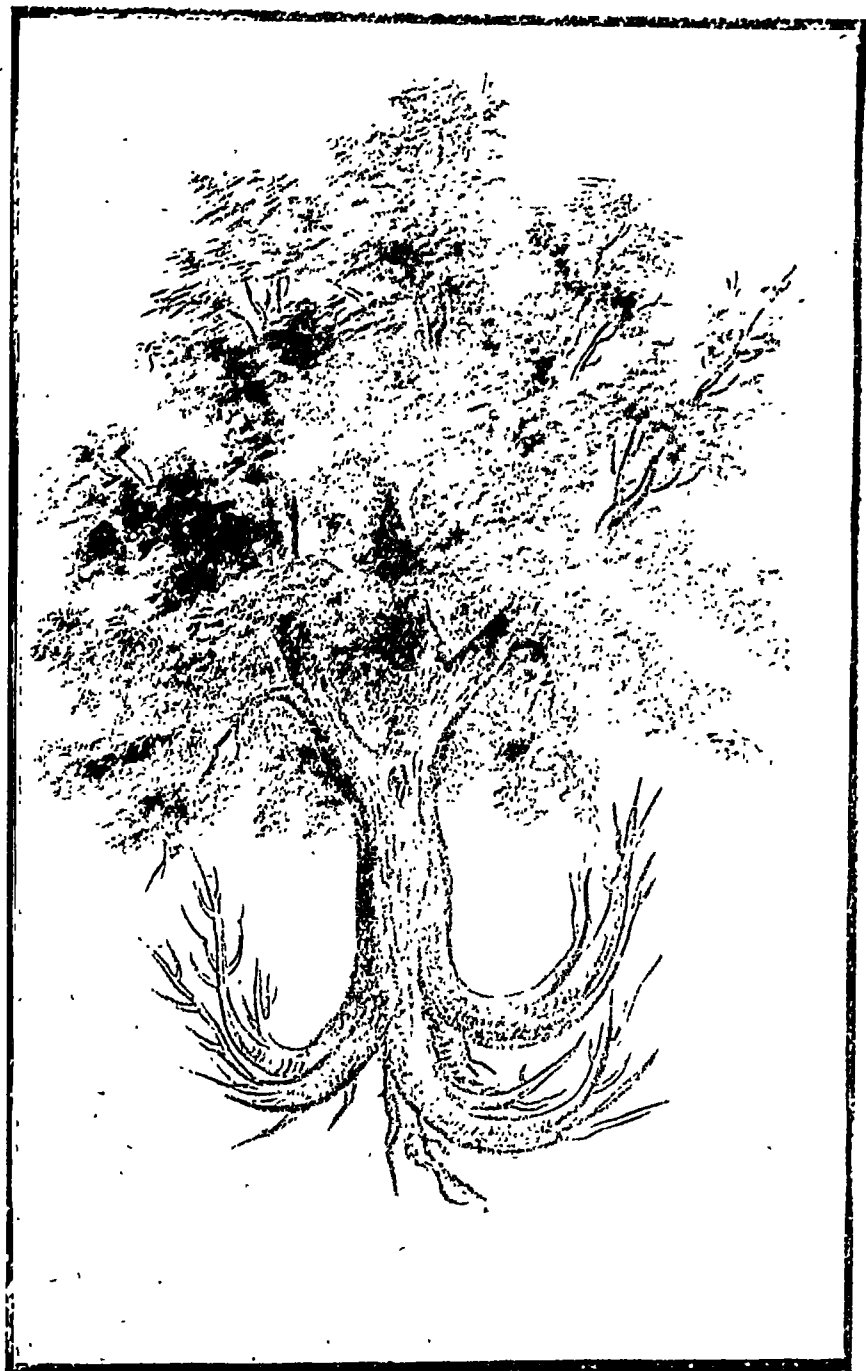
अचिरस्थायिराज्यरूपवृक्षः ।

U. A P. P J.
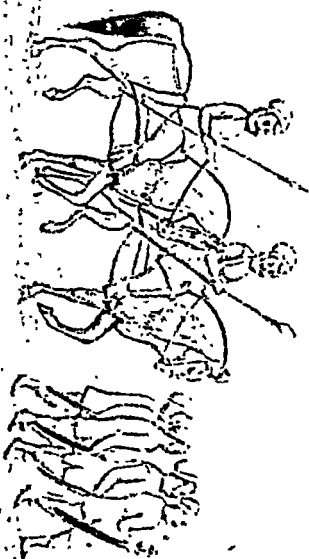
बहुसामन्त राज्यम्
अल्पाधिकृत राज्यम्
सुखेन शत्रवः हरन्ति
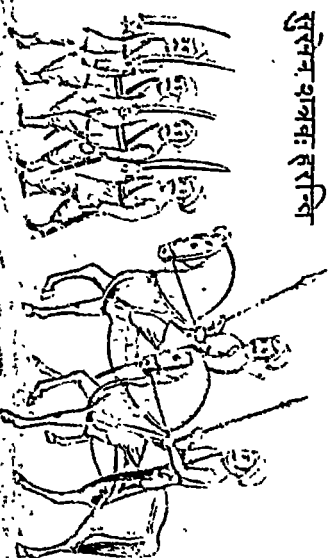
पीछे लौट जाता है और जिस राज्य में अधिक जागीरदार नहीं हैं ऐसे राज्य को निर्बल देखकर शत्रु उसे अपहरण कर लेते हैं ॥३९॥

संपूर्णराज्यस्य यदा धरित्रीम्
स्वयं हि संशास्ति य एव भूपः ।
तश्चान्यभूपा ह्यवलंविलोक्य
विनाशयन्त्येव समस्तराज्यम् ॥४०॥

भावार्थः—जो राजा सम्पूर्ण राज्य की भूमि पर अपने आप ही शासन करता है उस राज्य को अन्य राजा निर्बल (सेना रहित) देखकर समस्त राज्य को विनष्ट कर देते हैं ॥४०॥

प्रयोजनश्चास्ति बलस्य रक्षा
न्यायस्तुबुद्धेरपि जायतेऽत्र ।
तस्मात्सुबुद्धिं बलमेत्य भूपः
न्यायं प्रकुर्यात्परिरक्षणञ्च ॥४१॥

तन्नान्यभूपास्तु कदाचिदेव
समर्थतां यांति विचालनाय ।
करोति सिद्धिं स्वमतानुकूलाम्
यशोवितानं परिविस्तृणोति ॥४२॥

भावार्थः—बल का प्रयोजन रक्षा है तथा बुद्धि का प्रयोजन न्याय कहा गया है इसलिये अच्छी बुद्धि को प्राप्त करके राजा न्याय तथा रक्षा करता रहे, ऐसे राजा को अन्य राजा लोग चलायमान करने को समर्थ नहीं होते तथा वह अपनी इच्छा के अनुसार सिद्धि को प्राप्त करता है और अपने यश रूप वितान (तम्बू) को समस्त भूलोक में विस्तृत कर लेता है ॥४१-४२॥

विलोकयति लोकेशो रक्षां न्यायं निरन्तरम् ।
स राज्यरूपवृक्षस्य फलं भुंक्ते स्वयं मुदा ॥४३॥

अन्यथा तु फलं तस्य प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ।
कदाचित्समयं प्राप्य नाशयंति हरन्ति च ॥४४॥

भाषार्थः—जो राजा अपने राज्य के रक्षा और न्याय को निरन्तर देखता है वह ही राज्य रूप वृक्ष के फल को अपने आप प्राप्त करता है अन्यथा रक्षा न्याय को न देखने से उस राज्यरूप वृक्ष के फल को अन्य मनुष्य प्राप्त करते हैं तथा कभी भी समय पाकर राज्य को नष्ट अथवा हरण कर लेते हैं ॥४३-४४॥

न्याये तथा संपरिरक्षणे च
करोत्युपेक्षां च महीपति र्यः ।
विद्वेषभावाः क्षितिपास्तथाऽन्ये
राज्यंसमूल प्रविनाशयंति ॥४५॥

भाषार्थः—जो राजा न्याय तथा रक्षा करने में उपेक्षा करता है तव अन्य राजा उसके शत्रु हो जाते हैं अथवा उससे शत्रुता का भाव रखकर अन्य राजा लोग सम्पूर्ण राज्य को नष्ट कर देते हैं वा हरण कर लेते हैं ॥४५॥

क्षत्रियाणां प्रतिशतं सदैवेकाभिरक्षकः ।
भूपस्य परिरक्षार्थं सर्वथा निश्चितो भवेत् ॥४६॥

भूपस्य रक्षिते दुर्गे वसन्तु तेचरक्षकाः ।
तेम्योमिलेद्भोजनन्तु भूपस्य पाकशालया ॥४७॥

भाषार्थः—राजा की रक्षा के लिये क्षत्रियों के प्रति सैकड़े में एक एक रक्षक सर्वदा निश्चित रहना चाहिये। तथा वे रक्षक

सुदृढराज्यरूपकल्पवृक्षः । U A P.P J.

सुरक्षित (ऊंचे या विषम) स्थान पर बने हुए किले में ही रहने चाहिये और उनके लिये राजा की ही पाकशाला (रसोई) में से भोजन माफी में मिलना चाहिये ॥४६-४७॥

अस्त्रशस्त्रसमभ्यासे निपुणान् क्षत्रियान्भटान् ।
प्रासाददुर्गरक्षार्थं भूपति र्विनियोजयेत् ॥४८॥
तैः सार्द्धं मृगयार्थं वा शत्रुसंमेलनाय च ।
आवश्यकीयकार्यार्थं गच्छेद् भूपो हितेच्छया ॥४९॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि अपने महल और किले की रक्षा के लिये निपुण वीर क्षत्रिय योधाओं को निश्चित् करे । तथा ऐसे ही वीरों के साथ शिकार तथा आवश्यकीय कार्य के लिये शत्रु से मिलने के निमित्त अपने हित की इच्छा से जाना चाहिये ॥४८-४९॥

शुभकृतौ नृपतिः परिवर्तनम्
परिकरोतु जनैरनुमोदितम् ।
अशुभकार्यकृतौ नियमस्य नो
तदिह हानिभयादभियुज्यते ॥५०॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि शुभ कार्यों में प्रजा की इच्छा के अनुसार नियम का परिवर्तन करदे किन्तु अशुभ कार्यों के करने पर राज्य में हानि के भय से इस प्रकार नियम का परिवर्तन करना योग्य नहीं है ॥५०॥

मर्यादायाः प्रबन्धस्य जायते परिवर्तनम् ।
प्रजामतानुसारेण न क्वचिन्न्यायधर्मयोः ॥५१॥

भाषार्थः—प्रजा के मत के अनुसार मर्यादा तथा प्रबन्धों का तो परिवर्तन किया जा सकता है किन्तु न्याय तथा धर्म यह दोनों कभी भी परिवर्तित नहीं होते ॥५१॥

भूविभागस्तु सर्वत्र क्षात्रियेभ्यः प्रदीयते ।
अन्यजातिमनुष्यास्तु भृत्या एव भवन्ति हि ॥५२॥

भाषार्थः—भूमि का विभाग केवल क्षत्रियों को ही दिया जाता है तथा अन्य जातियों के मनुष्य केवल नोकर ही रक्खे जाते हैं ॥५२॥

नृपतिपरीक्षा

बालभूपपरीक्षार्थं दश वृद्धान्नियोजयेत् ।
राजविद्यापूर्णविज्ञान् सत्यधर्मरतानपि ॥५३॥

भाषार्थः—बालक राजा जब युवा होकर योग्यता प्राप्त करले तब उस राजा की परीक्षा करने के लिये राजविद्या के पूर्ण ज्ञाता सत्य और धर्म में लगे हुए ऐसे दश राजविद्या के विज्ञ वृद्ध मनुष्यों को नियुक्त करना चाहिये ॥५३॥

याद्दशी योग्याता यस्य भवेत्सत्कर्मचारिणः ।
ताद्दशस्तु राज्यभारो देयस्तस्मै निरन्तरम् ॥५४॥

षष्ठांशात्त चतुर्थांशः भूकरात् क्षितिनन्दनः ।
आवश्यकीयकार्यार्थं ग्रह्णीयात् सर्वदैव तु ॥५५॥

भाषार्थः—जिस कर्मचारी की जिस प्रकार की योग्यता हो उसके लिये उसी माफिक राज्य का भार सोंपना चाहिये । तथा भूमि के कर में से चतुर्थांश से छटें भाग तक आवश्यकीय कार्य के लिये लेना चाहिये ॥५४-५५॥

द्विगुणादधिकं नैव ऋणं कस्यापि दापयेत् ।
गृहवंशविनाशश्च प्रकुर्यान्न महीपतिः ॥५६॥

भावार्थः—दुगने से अधिक किसी का भी ऋण (कर्ज़ा) न दिलाना चाहिये तथा किसी घर तथा वंश को भी राजा कभी न नष्ट करे ॥५६॥

रक्षान्यायौ सकार्यौ हि क्षत्रियाणां समाश्रितौ ।
स्यातान्नान्यविजातीनां राज्यमङ्गलहेतवे ॥५७॥

भावार्थः—रक्षा और न्याय के काम सदा क्षत्रियों के अधिकार में होने चाहिये अन्य किसी जाति के अधिकार में कदापि नहीं। इससे क्षत्रियों का राज्य स्थिर बना रहता है अर्थात् उसे कोई चलायमान नहीं कर सकता ॥५७॥

रक्षान्यायदिव्यशक्तिः क्षत्रियेष्वेव विद्यते ।
तस्मान्न्यायन्तथा रक्षां कुर्वन्तु मनसा सदा ॥५८॥

भावार्थः—रक्षा तथा न्याय करने की दिव्यशक्ति क्षत्रियों में ही है इसलिये न्याय तथा रक्षा को क्षत्रिय लोग मन से करते रहें॥ ५८॥

प्रजाभूपालयोरैक्यं विना लुप्यन्ति सर्वशः ।
सर्वेषां शुभचिह्नानि तथा नाशं प्रयांति च ॥५९॥

भावार्थः—राजा और प्रजा की एकता के विना सबों के शुभ चिह्न सर्वशः लुप्त हो जाते हैं तथा नाश को प्राप्त होते हैं ॥५९॥

एकीकुर्यात्प्रजाः भूपः स्वबुद्ध्या राजविद्यया ।
येन भूपः सुनैश्चल्यं भूतले प्राप्नुयात्सदा ॥६०॥

भावार्थः—राजा अपनी बुद्धि तथा राजविद्या से प्रजा को एक करले (अपनी बनाले) जिससे संसार में निश्चलता प्राप्त करे ॥६०॥

जायते बलबुद्धिभ्यां न्यायः संरक्षणन्तथा ।
ताभ्यां राज्यस्थितिश्चापि जायते नात्र संशयः ॥६१॥

भाषार्थः—बल तथा बुद्धि से न्याय और रक्षा होती है एवं न्याय और रक्षा से राज्य की निश्चय स्थिति होती है ॥६१॥

यथा हरिर्विनिर्दोषं हन्ति तस्मात्प्रजायते ।
तस्यापि हननं न्यायः द्विप्रकारेण कथ्यते ॥६२॥

भाषार्थः—जिस प्रकार सिंह विना दोष वाले जन्तुओं को मारता है इसलिये उस सिंह का मारना न्याय कहा गया है तथा वह दो प्रकार से कहा जाता है ॥६२॥

बलै द्वादशभी रक्षा बुद्धया न्यायश्च षड्विधः ।
दैहिकेन बलेनात्र सिंहस्य हननं बलम् ॥६३॥
बुद्धया सिहस्य हननं बलं बुद्धेः समीरितम् ।
एताभ्यां तुबलाभ्यां च राज्यस्थैर्यं प्रजायते ॥६४॥

भाषार्थः—बारह प्रकार के बलों से रक्षा तथा बुद्धि से छः प्रकार का न्याय होता है। यहां पर बल के दो भेद कहे जाते हैं जिसमें शारीरिक बल द्वारा मल्ल युद्ध से सिंह को मारना शारीरिक बल है बुद्धि द्वारा (अस्त्रशस्त्रों) द्वारा सिंह को मारना यह बुद्धि बल कहा गया है इन दोनों प्रकार के बलों से ही राज्य की स्थिरता होती है ॥६३-६४॥

क्षत्रियेभ्यो महीभाग-प्रदानेनैव भूभुजाम् ।
परम्परा स्थिति दार्ढ्यं लोके संजायते तथा ॥६५॥

भाषार्थः—क्षत्रियों को पृथ्वी का भाग प्रदान करने से ही राजाओं की परम्परास्थिति तथा संसार में दृढ़ता होती है। अन्यथा नहीं ॥६५॥

भूम्याधिपत्यं जातेःस्या-दभिमानो निरन्तरम् ।
क्षत्रियाणान्तदैवात्र जायते च परिस्थितिः ॥६६॥

शारीरिकबलम् ।
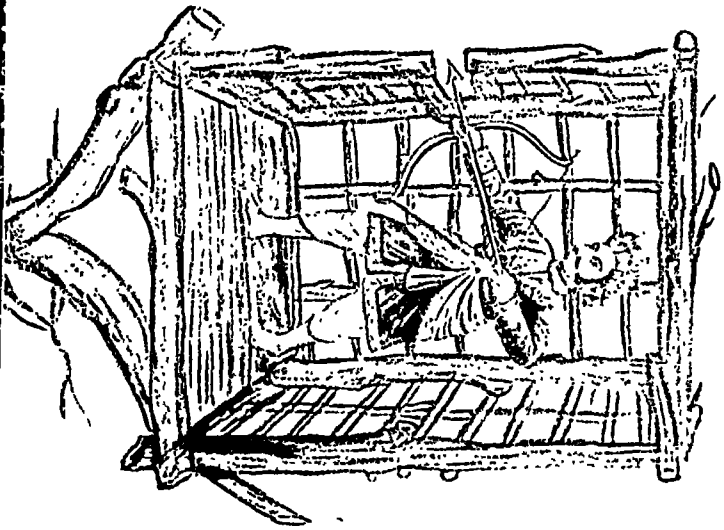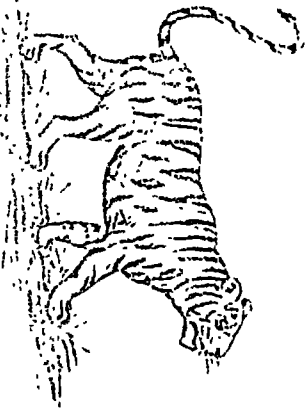
U A.P. PRESS, Ju.

बुद्धिबलम् ।

U.A P PRESS .J..

भावार्थः—भूमि का आधिपत्य और जाति का अभिमान जब हों तब क्षत्रियों की स्थिति होती है ॥६६॥

राज्यस्य परिरक्षार्थं भृत्यसेना सदाऽस्थिरा ।
राज्यवासिक्षत्रियाणां सेना स्यात्फलदा स्थिरा ॥६७॥

भावार्थः—राज्य की रक्षा के लिये नोकर रक्खी फौज सदा अस्थिर है तथा राज्य में रहने वाले क्षत्रियों की सेना ही स्थिर मानी गई है ॥६७॥

जितेन्द्रियत्वमालस्य-राहित्यं सत्यभाषणम् ।
एकपत्नीवृतं शौर्यं रणे धैर्यावलम्बनम् ॥६८॥

दाने बुद्धिं प्रभुत्वं वा निवृत्तिं व्यसनादपि ।
असंगशक्तिं सततं क्षमां सम्यगुपेत्य च ॥६९॥

रक्षां कुर्यान्महीपालो न्यायं धर्मं तथाऽऽचरेत् ।
इष्टप्रीतिस्तथा तेजो ज्ञानतत्वाभिपश्यताम् ॥७०॥

संगतिः स्यात्तदाभूमिः करे तस्याभिजायते ।
यत्नमेतस्य कुर्वीत भूपतिर्मङ्गलेच्छया ॥७१॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय होना, आलस्य न रखना, सत्य बोलना, एक पत्नीवृत, शौर्य (पराक्रम) संग्राम में धैर्य का ग्रहण करना, दान में बुद्धि स्वामिभाव, व्यसनों को छोड़ना, युद्ध में असंग (केवल) शक्ति धारण करना चाहिये, एवं क्षमा को भली भांति प्राप्त करके राजा को रक्षा तथा न्याय और धर्म का आचरण करना चाहिये। अपने इष्ट में प्रेम, तेज और ज्ञान के सार के देखने वालों की संगति इन सब उपरोक्त बातों का आचरण करने वाले के भूमि हस्तगत रहा करती है । इसलिये राजा को इन बातों को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये ॥६८-६९-७०-७१॥

प्रजासम्मेलनं कुर्याद् भूपतिर्हितवाञ्छया।
जायते सर्वसाम्राज्ये राज्यलक्ष्मीस्तदा स्थिरा ॥७२॥

भाषार्थः—राजा अपने कल्याण की इच्छा से प्रजा के साथ मिलता रहे तब संम्पूर्ण राज्य में उस राजा की राज्य लक्ष्मी स्थिरता को प्राप्त करती है ॥७२॥

अन्यायाचरणादेव बान्धवाः सहधर्मिणः।
वैमुख्यं प्राप्नुवन्त्येव राज्यविध्वंसकारणम् ॥७३॥

अन्ये नृपाः प्रजाश्चापि शत्रुतां यान्ति सर्वथा।
अन्यायिनो विनाशं च कुर्वन्त्येव सुनिश्चितम् ॥७४॥

भाषार्थः—अन्याय का आचरण करने से बान्धव और संबन्धी प्रजा सहधर्मी (समान धर्म वाले) ही राज्य को नष्ट करने के कारण विमुखता (शत्रुता) प्राप्त कर लेते हैं इसी प्रकार अन्य राजा तथा प्रजा भी शत्रुता ग्रहण करलेती है तब वे सब उस अन्यायी राजा का निश्चय रूप से नाश कर देते हैं ॥७३-७४॥

राजविद्योपदेशस्य हीनतायां प्रजायते।
शैथिल्य मतिमानित्वं दर्पः पारुष्यमेव च ॥७५॥

निःप्रतापस्य चाज्ञाने माने वृद्धिः प्रजायते।
उपायोस्य तु विज्ञेयो राजविद्यावलम्बनम् ॥७६॥

भाषार्थः—राजविद्या के उपदेश की हीनता होने पर शिथिलता, अभिमानी होना, अहंकार, पारुष्य (कठोरता) आजाती है तब तेजोहीन मनुष्य की अज्ञान तथा मान में वृद्धि हो जाती है इसका उपाय श्रीराजविद्या का ग्रहण करना कहा गया है ॥७५-७६॥

अशुद्धभावेन जनः करोति धनसञ्चयम् ।
आत्ममानी तथा लोके विनाशमुपगच्छति ॥७७॥

भावार्थः—जो मनुष्य अशुद्ध (विकृत) भाव से धन संचय करता है तथा अभिमानी मनुष्य संसार में विनाश को प्राप्त होता है ॥७७॥

शुद्धोच्चैश्वरभावांस्तु यः सदैवावलम्बते ।
जन्म संलभते सैव प्रोच्च योनौ न संशयः ॥७८॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्ध, उच्च और ईश्वरभाव का अवलंबन करता है वह निश्चित् रूप से उच्च योनि में जन्म प्राप्त करता है ॥७८॥

धर्मयुद्धे निजन्देह-मस्त्रैशस्त्रैश्च क्षत्रियः ।
कुर्वन्पुनीतं च तदा मोहं नैवावलम्बते ॥७९॥
सैवराज्यमवाप्नोति भूमिपालः सदा क्षितौ ।
मृतोवा स्वर्गमाप्नोति विचारोऽस्य सदा भवेत् ॥८०॥

भावार्थः—जो क्षत्रिय धार्मिक युद्ध में अपनी देह को अस्त्र तथा शस्त्रों से पवित्र करता है तथा उस समय मोह को प्राप्त नहीं करता वह ही पृथ्वी पर राज्य को प्राप्त करता है तथा मर जाने पर स्वर्ग प्राप्त करता है इस बात का विचार सदा रखना चाहिये ॥७९-८०॥

श्रीशंकर उवाच

पञ्चानामपि तत्वानां प्राणिनामपि सर्वथा ।
पंचावस्था प्रजायन्ते श्रूयतां पार्वति प्रिये ! ॥८१॥

भावार्थः—पंच तत्व (पृथ्वी, अप-तेज, वायु, आकाश) और समस्त प्राणियों की पांच अवस्थायें होती हैं जो हे प्रिये पार्वति उसे तुम सुनो ॥८१॥

पृथिव्यास्तु समाधिक्यात् जन्म संजायते नृणाम् ।
कौमार्यन्तु जलाधिक्यात् वन्ह्याधिक्याश्च यौवनम् ॥८२॥

पवनस्य समाधिक्यात् जरावस्था प्रजायते ।
आकाशस्य समाधिक्यत् मृत्युः संजायते तथा ॥८३॥

भाषार्थः—पृथ्वी की अधिकता से मनुष्यों का जन्म होता है और जल की अधिकता से कुमार अवस्था होती है तथा अग्नी की अधिकता से यौवनअवस्था होती है एवं वायु की अधिकता से वृद्धावस्था और आकाश की अधिकता से मृत्यु होजाती है ॥८२ ८३॥

राज्यरूपे विताने तु रज्जुकीलसमानृपाः ।
आधारस्य विनाशेन चाधेपमपि नश्यति ॥८४॥

भाषार्थः—राज्य रूप वितान (तम्बू) में डोरी और चोवों के समान् नीचे के जागीरदार हैं जागीरदारों के नष्ट होने से राज्य भी नष्ट होजाता है ॥८४॥

राज्यरूपमण्डपे वा स्तम्भास्तस्याश्रिता नृपाः ।
तेषामेव विनाशेन नाशस्तस्यापिनिश्चितः ॥८५॥

भाषार्थः—अथवा राज्यरूप मण्डप स्तम्भरूप उसके आश्रित रहने वाले राजा हैं अतः उन स्तम्भों रूप राजाओं के विनाश होने पर राज्य रूप मण्डप का भी निश्चित रूप से नाश होजाता है ॥८५॥

प्रपोषणं शरीरस्य शिरांत्राभ्यां प्रजायते ।
राज्यस्यापि तथा पुष्टिः स्वाश्रितैर्भूमिपालकैः ॥८६॥

कारणनाशात्कार्यनाशः ।

U. A P. P. J
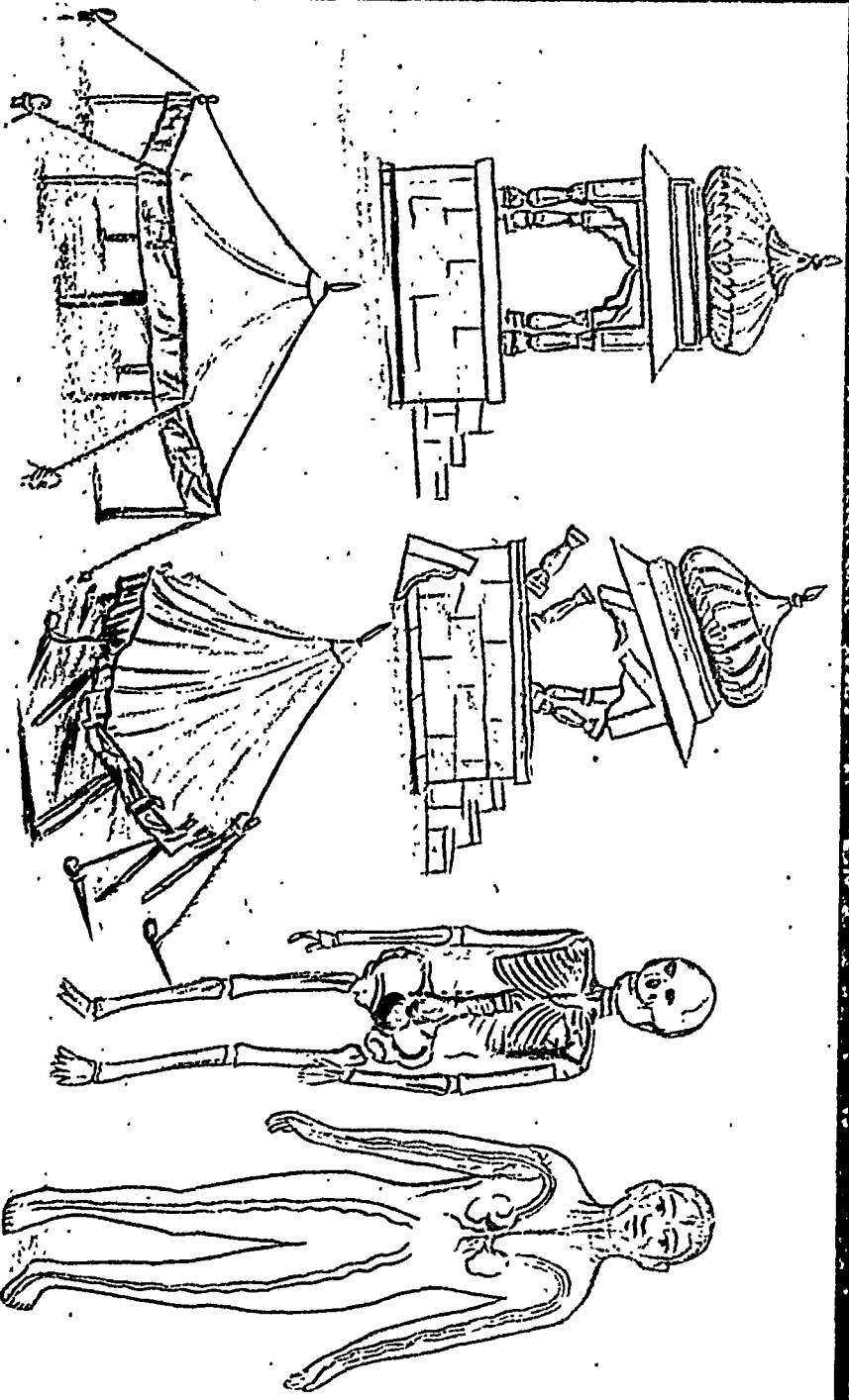
अस्थिभि र्मिश्रिताभिश्च दार्ढ्यमेति वपुर्यथा ।
तथै वैक्यं समाश्रित्य दार्ढ्यंप्राप्नोतिमानवः ॥८७॥

भाषार्थः—जिस प्रकार मिली हुई हड्डियों से शरीर दृढ़ता को प्राप्त होता है उसी प्रकार एकता का आश्रयण करने से मनुष्य दृढ़ता को प्राप्त करता है ॥८७॥

अयोग्यन्यायाधीशः

प्रत्यर्थिनोऽर्थिनोवापि कार्ये तुष्टिर्न जायते ।
एकैकस्य तथाऽऽक्षेपात् विचारो वा मुहु र्मुहुः ॥८८॥
अयोग्यता न्तुजानीया-न्न्यायाधीशस्यसर्वथा ।
अतस्तं शिक्षयेद्वान्यं योजयेत्पृथिवीपतिः ॥८९॥

भाषार्थः—प्रत्यर्थी और अर्थी (मुद्दई मुद्दइले) इन दोनों को कार्यों (मुकद्दमा) में संतोष नहीं होता तथा एक दूसरे के आक्षेप (अपील) द्वारा पुनः २ (वार वार) विचार होना रहता है तो वहां पर राजा को न्यायाधीश (न्याय करने वाले) की अयोग्यता जाननी चाहिये इसलिये या तो उस न्यायाधीश को राजा शिक्षा दे अथवा सर्वथा अयोग्य होने पर उसके स्थान पर दूसरा अधिक योग्य न्यायाधीश नियुक्त करे ॥८८-८९॥

स्वस्य कार्ये यदा प्रीतिं कुर्वन्ति कर्मचारिणः ।
यया प्रजानां भूपस्य मङ्गलं परिजायते ॥९०॥
तदावेतनसंवृद्धिं प्रोचस्थानं निरन्तरम् ।
प्राप्नुवन्ति यतः सर्वे ध्यानं दद्यु र्हितेच्छया ॥९१॥

भाषार्थः—जब राज्य के कर्मचारी अपने कामों में प्रीति करते हैं तथा जिस प्रीति से प्रजा और राजा दोनों का कल्याण होता है तब वे कर्मचारीगण वेतन (तनख्वा) की वृद्धि और उच्चपद को

प्राप्त करने के योग्य है इसलिये प्रजा और राजा के हित की इच्छा वाले कर्मचारी होने चाहिये ॥९०-९१॥

न्यायाधीशस्य यस्यैव कार्येण प्रकृतिर्भवेत् ।
असन्तुष्टा तदा लोके ह्ययोग्यः स प्रजायते ॥९२॥

भाषार्थः—जिस न्यायाधीश से प्रजा असंतुष्ट होती है वह न्यायाधीश अयोग्य जानना चाहिये ॥९२॥

न्यायाधीशप्रमादात्तु कार्येऽन्यायो यदा भवेत् ।
उपेक्षान्तत्रकुर्वीत भूपतिः पञ्चकं शतम् ॥९३॥

अन्यथा दण्डनीयः स्यात् न्यायाधीशस्तु सर्वथा ।
योग्यं सुशिक्षितं तत्र न्यायाधीशं नियोजयेत् ॥९४॥

भाषार्थः—यदि न्यायाधीश (जज न्यायकर्ता) के प्रमाद (गलती) से कार्य (मुकद्दमा) में अन्याय हो तो राजा को चाहिये कि ऐसे न्यायों के प्रति सैकड़ में से पांच मुकद्दमों की उपेक्षा (माफ) करदे अर्थात् सौ में से पांच मुकद्दमों का यदि प्रमाद (भूल) वश न्याय ठीक नहीं हो सका हैं तो उसे माफ करदे शेष पञ्चानवे मुकद्दमें ठीक होने चाहिये । अन्यथा यदि पांच से अधिक मुकद्दमों में न्याय ठीक प्रकार से न हुआ हो तो वह न्याय करने वाला दण्डनीय है तथा राजा को योग्य है कि उसके स्थान पर योग्य अच्छी शिक्षा प्राप्त किये हुये न्यायाधीश को नियुक्त करे ॥९३ ९४॥

स्वसेवकादन्यभृत्या राज्यस्य कार्यकारिणः ।
प्रजानां सेवकाः सन्ति सुखादिवृद्धिहेतवे ॥९५॥

एवं सेना तु रक्षार्थं सर्वदैवाभिजायते ।
कश्चित्स्यादत्र वैकल्प्यं तदा भृत्यान्विशोधयेत् ॥९६॥

भापार्थः—राजा के निजी सेवक से अन्य भृत्य (नोकर) राज्य के कर्मचारी कहे जाते हैं, तथा वे सुख आदि नौ बातों की वृद्धि के लिये प्रजा के सेवक हैं इसी प्रकार सेना सर्वदा रक्षा के लिये समझनी चाहिये यदि इस बात में कही पर विकल्पता (अभाव) हो तो राजा को चाहिये कि उन भृत्य (नोकरों) का शोधन करे। अर्थात् जो नोकर अपने कार्य को ठीक नहीं कर रहे हों उन्हें निकाल दे तथा सुयोगों को नियुक्त करे ॥९५-९६॥

गदार्तानां प्रतिशतं पञ्चनवति साधयेत् ।
सद्वैद्यः स्याच्चिकित्सार्हः विपरीत न्नियन्त्रयेत् ॥९७॥
धार्मिकस्योपदेशस्य प्रबन्धे भूमिनन्दनः ।
अनुभवसाध्यकार्ये यज्ञादौ भूपसम्मतौ ॥९८॥
सत्प्राचीनेतिहासानां कार्ये वा सुलभे तथा ।
अन्तः पुरे तथापत्तौ प्रजासभ्यविनिश्चये ॥९९॥
नियोजयेत्पुर्णयोग्यान् वृद्धानेवतुमानवान् ।
तदाराज्यस्य कल्याणं सर्वदा परिवर्द्धते ॥१००॥

भापार्थः—राजा को चाहिये कि यज्ञों में देव पूजा में धार्मिक उपदेशों के प्रबन्धों में अनुभव से सिद्ध होने वाले कार्य में राजाओं की सम्मति में, प्राचीन इतिहासों के काम में, तथा सुगम कार्य में, अन्तःपुर (रनिवास) में आपत्ति के समय में, प्रजा की ओर से सभ्य (सभासद्) निश्चय करने में पूर्ण योग्यता प्राप्त किये हुये वृद्ध मनुष्यों को नियुक्त करे तब राज्य का कल्याण वृद्धि को प्राप्त होता है ॥९७-९८-९९-१००॥

कदाप्यावश्यकं कार्य-विना भूनायकः क्वचित् ।
भूवाय्वग्निजलानाञ्च यानेषु न समारूहेत् ॥१०१॥
सजवैर्वाहनैर्वापि न गच्छेदपि नित्यशः ।
सप्तमांशस्य हानिः स्या-दायुपः श्वाससंक्षये ॥१०२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि कभी भी आवश्यकीय काम के विना भूमि, वायु, अग्नि और जल के यान (सवारी) में न वैठे। तथा अतिवेगवान वाहनों से नित्यप्रति न गमन करे क्योंकि ऐसा करने से श्वास क्षीण होने के कारण आयु (उमर) के सातवें भाग की हानि होती है ॥१०१-१०२॥

तीव्रालोकेऽतिकार्याणां साधनेनैव सर्वथा।
दृष्टिश्च संक्षयं याति सर्वदैतद्विचार्यताम् ॥१०३॥

भावार्थः—अति तीव्र प्रकाश में काम करने से दृष्टिशक्ति क्षीण होती है इस वात का ध्यान रहना चाहिये ॥१०३॥

भोजनस्याति पाकेन सारभागोविनश्यति।
वैरस्यं जायते तस्मा-दपुष्टि र्वपुषः स्तथा ॥१०४॥

भावार्थः—भोजन के अतिपाक होने से भोजन के सार भाग की हीनता होजाती है तथा भोजन में विरसता होजाती है और ऐसे भोजन को सेवन करने से शरीर पोषण भी ठीक नहीं होता ॥१०४॥

सत्संगतिसुमतिमाहात्म्यकथनम्

पञ्चमः पाठः

सम्मतिदान विज्ञानां गुणान्वा पार्श्ववर्तिनाम् ।
विलोकयेन्महीनाथो स्वराज्यमंगलेप्सया ॥१॥

भाषार्थः—राजा को सम्मति (सलाह) देने वाले तथा समीप में रहने वाले मनुष्यों के गुणों को राजा शुभ इच्छा से देखता रहे, उनका यहां पर वर्णन होता है ॥१॥

लोकानां व्यवहारज्ञा निःस्वार्था दूरदर्शिणः ।
न्यायसत्यानुरक्ताश्च सुपात्राः सुकुला अपि ॥२॥

बुद्धिमन्त स्तथा धीराः पवित्राचारिणस्तथा ।
विश्वगर्हाविमुक्ताश्च स्वस्वामिहितचिंतकाः ॥३॥

पण्डिताः परभावज्ञा वीरा युद्धविशारदाः ।
अस्त्रशस्त्रराजविद्या-विज्ञाश्च स्वीयदेशजाः ॥४॥

मानवा राज्यकार्यार्थं भवन्तु कर्मचारिणः ।
सम्मतिदातृणो वापि तदा राज्यं दृढं भवेत् ॥५॥

भाषार्थः—संसार के व्यवहार को जानने वाले स्वार्थ की अधिकता से रहित दूरदर्शी न्याय और सत्य के प्रेमी राज्य के हितैषी सुपात्र, अच्छे कुल वाले, पवित्र, शुद्ध आचरण वाले, अनुभवी, चतुर, बुद्धिमान, धीर, लौकिक निन्दा से रहित, अपने स्वामी के हितचिन्तक, पण्डित, दूसरे के भावों को जानने वाले, युद्ध विद्या में

चतुर वीर ऐसे गुणों से युक्त मनुष्य ही राज्य के कर्मचारी तथा सम्मति देने वाले होने चाहिये ॥२-३-४-५॥

यथासाध्यं स्वदेशीयान् निर्दोषान्कर्मचारिणः ।
स्वदेशानुभवैर्युक्तान् राज्यकर्मणि योजयेत् ॥६॥

भापार्थः—राजा को चाहिये कि जहां तक हो सके अपने देश के ही रहने वाले तथा दोष रहित अर्थात् जिनमें किसी प्रकार लोभ पक्षपात आदि दोष न हो एवं अपने देशवासियों के व्यवहार के अनुभव से युक्त कर्मचारी गणों को ही राज्य के कार्यों में नियुक्त करे ॥६॥

एतैः सम्मतिदातृभिः क्षितिभुजां भृत्यैस्तथावानिशम्
देशस्यास्ति हितं कदाचिदपिनो राज्यस्य हानिर्भवेत् ।
नोवान्ये ऽखिलमण्डलाधिपतयो वाञ्छन्ति युद्धादिकं
तस्मात्सर्वमिदं विविच्य नृपतिः कुर्यात् स्वकं शासनम् ॥७॥

भाषार्थः—उक्त लक्षणों से युक्त सम्मति देने वाले तथा कर्मचारियों से निरन्तर देश का हित होना है और कभी भी हानि की सम्भवना नहीं होती तथा अन्य मण्डलाधिपति (राजा) भी युद्ध करने की इच्छा नहीं करते इसलिये इस बात को पूर्णतया विचार कर उत्तमरीति से शासन (राज्य) करना चाहिये ॥७॥

सौख्यस्य वर्तमानस्य साहाय्यमेत्य भूपतिः ।
वर्द्धयेत् परलोकस्य सौख्यस्य कारणं सदा॥८॥

भाषार्थः—वर्तमान् समय में होने वाले सुख की सहायता से मनुष्य परलोक में होने वाले सुखों के कारणों को वड़ा सकता है अर्थात् वर्तमान समय में होने वाले सुखों से सदा परलोक को सुधारना चाहिये ॥८॥

सुकृतस्य समुत्पत्तिः सत्संगत्यैव जायते ।
एकस्मिन्तु जने नैव गुणाः सर्वे वसन्ति हि ॥९॥

भाषार्थः—सुकृत (अच्छा काम) की उत्पत्ति भली संगति से होती है । तथा एक ही मनुष्य में सम्पूर्ण गुण नही रहा करते हैं ॥९॥

वृद्धाद्वृद्धतरेष्वेव सदा दोषा भवन्ति हि ।
अतो लघ्वपराधंतु वीक्ष्यकुर्यात् क्षमां नृपः ॥१०॥

भाषार्थः—बड़े से बड़े अथवा बुड्ढे से बुड्ढे मनुष्यों में भी निश्चित् रूप से दोष हुआ करते हैं इसलिये थोड़े अपराध को देख कर राजा को चाहिये कि उसे क्षमा करदे ॥१०॥

सत्कार्याणि मनुष्याणां वीक्ष्य मोदः प्रशस्यते ।
कुर्यात्संशुद्धचित्तेन व्यवहारं महीपतिः ॥११॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि मनुष्यों के अच्छे कामों को देखकर हर्ष प्राप्त करे तथा ऐसा वर्त्ताव शुद्ध चित्त वालों के साथ रखे ॥११॥

न धूर्तक्रूरमूर्खेषु मिथ्यावादिषु सर्वथा ।
प्रीतिं कुर्यात् तु भूपालः पृथक् कुर्यात्पदादपि ॥१२॥

आचारस्याद्यदातेषां तदैव क्षितिनन्दनः ।
कृत्वा परीक्षां कार्येषु विशुद्धान्विनियोजयेत् ॥१३॥

भाषार्थः—धूर्त, (शठ) क्रूर (बुरा) मूर्ख (उजड्ड) और मिथ्या (असत्य) बोलने वालों से कभी भी प्रेम नहीं करना चाहिये तथा राजा को योग्य है कि उन्हें नियुक्त पद से च्युत भी करदे । किन्तु जब उनका आचरण शुद्ध हो जाय तब उन कर्मचारियों की

परीक्षा करके यदि वे विशुद्ध होगये हैं तो उन्हें उसी या अन्य किसी कार्य पर नियत करदे ॥१२-१३॥

सर्वे इमे तु गुणाः प्रभवंति
न्यूना वाप्यधिकाः पुरुषेषु ।
एकैकः पुरुषश्च गुणानां
ज्ञातास्यादितिनिश्चतवाक्यम् ॥१४॥

भाषार्थः—उपरिलिखित सम्पूर्ण गुण न्यून अथवा अधिकता से मनुष्यों में रहा करते हैं अर्थात् किसी में अधिक किसी में न्यून गुण होते हैं प्रत्येक मनुष्य किन्हीं न किन्ही गुणों का ज्ञाता होता ही है यह बात निश्चित् हैं ॥१४॥

येषामेव नृणां कथितोऽत्र
सत्संगस्तु नृपैः किलकार्यः ।
येन भवेत् किलशासनमध्ये
सौख्यसुधारसवृष्टिरनन्ता ॥१५॥

भाषार्थः—जिन मनुष्यों की यहां पर संगति कही गई है उन्ही की संगति राजा को करनी चाहिये जिससे निश्चय रूप से शासन में सुखरूप सुधारस की अनन्त वृष्टि हो ॥१५॥

स्वरक्ष्यादिकृत्यर्थं न्यायमर्यादा

प्रबन्धनिरूपणम्

षष्ठः पाठः

स्वस्याधिकारो रक्षणस्य तु विद्यते दोषं विना ।
सम्पूर्णमानवहेतवेऽस्य च वर्णनं क्रियतेऽधुना ॥१॥
धार्मिकजनस्य तु पक्षपाती जायते धर्मप्रियः ।
एवं त्वधार्मिकपक्षपाती सर्वदाऽधर्मप्रियः ॥२॥

भावार्थः—अपनी रक्षा करने का अधिकार सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये है इसमें कोई दोष नहीं, अतएव संपूर्ण मनुष्यों के हित के लिये इसका वर्णन किया जाता है। जो मनुष्य धर्म प्रिय है वही मनुष्य धार्मिक मनुष्य का पक्षपाती होता है इसी प्रकार अधर्म प्रिय मनुष्य आधार्मिक का पक्षपाती होता है ॥१-२॥

न्यायस्य समये भूमिपालो ज्ञानमेवमिहाचरेत् ।
मनसस्तथैव सदात्मनः शुद्धिं सुधीः प्रविलोकयेत् ॥३॥
अज्ञानपूर्वककार्यमत्राज्ञेन शिशुना वा कृतम् ।
मत्तेन वा परिपीतमद्येऽनापि नो दोषावृतम् ॥४॥

भावार्थः—बुद्धिमान राजा को चाहिये कि न्याय करने के समय विशिष्ट ज्ञान का आचरण करे तथा न्याय में मन और आत्मा की शुद्धि को देखना चाहिये, यदि अज्ञ (बेसमझ) तथा बालक ने कोई काम अज्ञानता से किया हो तथा मत्त (पागल) मद्य (नसा) पिये हुई अवस्था में अज्ञानता का काम किया हो तो वह अधिक दोषयुक्त नहीं समझना चाहिये। अर्थात् अज्ञानता से काम करने वाला अधिक दण्डनीय नहीं है ॥३-४॥

अधर्मेणैव सम्पत्तिर्विनाशमुपगच्छति ।
धर्मेणसुस्थिरा पुंसां जायते नात्र संशयः ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों की सम्पत्ति अधर्म का आचरण करने से विनाश को प्राप्त हो जाती है तथा धर्म का आचरण करने से सर्वदा स्थिर रहा करती है। अर्थात् यदि अधर्म से सम्पत्ति कोई संचित भी करले तो परिणाम में नष्ट हो जाती है ॥५॥

उद्वाह एकः श्रेष्ठ उक्तो धार्मिकस्तु महीतले ।
एवं द्वितीयो वा तृतीयो जायते नियमस्थले ॥६॥

तारुण्ये बहुकालेन वियोगे त्युपदिष्यते ।
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि स्वजातौ स्वमतेन वा ॥७॥

भावार्थः—सांसारिक प्राणियों के लिये एक ही विवाह करने का धर्म पूर्वक उपदेश किया गया है। किन्तु शास्त्र के नियमानुसार (अन्धी, लूली, अपाज सन्तान वा निःसन्तान होने की अवस्था में) दूसरा तथा तीसरा विवाह भी कर लेना चाहिये यदि तरुणावस्था में स्त्री या पुरुष में से एक का वियोग (मृत्यु आदि) हो जाय तो अपनी ही जाति में नियोग (पुनर्विवाह) करने का भी अधिकार है ॥६-७॥

शुभेच्छां मानसे कृत्वा हिताय नियमं तुयः ।
प्रचारयति भूपालो मर्यादा सा निगद्यते॥ ८॥

भावार्थः—अपने मन में शुभ इच्छा करके संसार के हित के लिये जिस आज्ञा का राजा प्रचार करता है उसे ही मर्यादा कहते हैं अर्थात् शुभेच्छा से चलाये हुये नियम को मर्यादा कहते हैं ॥८॥

स्वस्त्यादीनां प्रचारेण राज्यस्थैर्यं प्रजायते ।
एतेषां प्रविकारेण नश्यति राज्यसंस्थितिः॥९॥

भावार्थः—प्रजा के मध्य में स्वस्ति आदि नौं बातों के होने से ही राज्य स्थिति रहती है। तथा इन के विगडने से ही राज्य की स्थिति भी नष्ट होजाती है ॥९॥

स्वस्त्यादिनवकान्येव विकारं प्राप्नुयुर्यदा ।
प्रजामतेन तामाज्ञां नवीनां तत्र चालयेत् ॥१०॥

भावार्थः—प्रजा की स्वस्त्यादि नौं बातों में विकृति (बिगाड़) होता हो तो प्रजा की प्रवृत्ति के अनुसार राजा नई आज्ञा को चलावे। अर्थात् प्राचीन आज्ञा का परिवर्तन कर देना चाहिये ॥१०॥

विनिश्चतः स्यात्समयो नृपस्य
स्वराज्यसाधारणकार्यहेतोः ।
यदा च कुर्यान्नियमप्रचारं
तदा विदध्यात्सुविमर्षबुद्धिम् ॥११॥

भावार्थः—अपने राज्य के साधारण कार्यों के लिये राजा का समय निश्चित् होना चाहिये तथा जब राजा कोई नया नियम प्रजा में प्रचलित करे या चलते हुये नियम का परिवर्तन करे तब उसे विमर्ष बुद्धि से निम्न बातों पर विचार करना चाहिये ॥११॥

अग्रेकार्यसमापन्ने भविष्यति फलं च किम् ।
अन्यैश्चलायमानः स्यात् मह्यं किं रोचतेन वा ॥१२॥

अन्येषु भूपेष्वथवाप्रजासु
को वा प्रभावोस्य भविष्यतीति ।
विविच्य सम्यक् नियमस्य पश्चात्
कुर्यात् प्रचारं किल तत्वदृष्ट्या ॥१३॥

भावार्थः—आगे काम पड़ने पर इसका क्या फल होगा यदि कोई अन्य ऐसा नियम चलावे तो मुझे अच्छा लगेगा या नहीं, अन्य

(अपने से छोटे या बड़े) राजाओं तथा प्रजा पर इस नियम का क्या प्रभाव पड़ेगा इन सब बातों का तात्त्विक दृष्टि से विचार कर के ही अपने नियम को प्रजा में चलाना चाहिये ॥१२-१३॥

साधारणं यत्किल कार्यजातं
तत्ते प्रजानिश्चितमानवास्तु ।
कुर्वन्तु चैतेन समस्तराज्ये
सुखं तथा मंगलमेति वृद्धिम् ॥१४॥

भाषार्थः—जो कार्य (न्यायादि) साधारण हो उस कार्य को प्रजा से निश्चित किये हुये मनुष्य ही करें ऐसा करने से सम्पूर्ण राज्य में सुख होता है तथा कल्याण की वृद्धि होती है ॥१४॥

धर्मस्याश्रयणं यस्मिन् प्रजाप्रीतिकरश्च यः ।
न्यायः प्रजाप्रियः प्रोक्तः सर्वेषां रुचिकारकः॥१५॥

भाषार्थः—जिस न्याय में धर्म का आश्रयण हो तथा जो न्याय प्रजा को प्रसन्न रखने वाला हो उसे प्रजा प्रिय न्याय कहते हैं तथा ये सब मनुष्यों को प्रसन्न रखने वाला है ॥१५॥

जगतः सौख्यशान्त्यर्थं स्वस्त्यर्थं स्थितिहेतवे ।
जगद्धितार्थं सम्प्रोक्तो न्यायोऽसौ पारमार्थिकः ॥१६॥

भाषार्थः—संसार की सुख, शांति, नैरोग्य और स्थिति के लिये जो न्याय हो वह पारमार्थिक न्याय जगत् हितार्थ कहा गया है ॥१६॥

प्रजानां परिवृद्ध्यर्थं न्यायस्तु सत्विकः स्मृतः ।
निक्षेपवच्चाधिकारं कुर्यात्तत्रमहीपतिः ॥१७॥

न्यायः
स्वार्थिक न्यायः
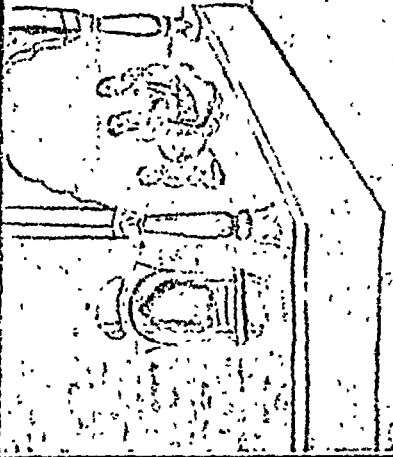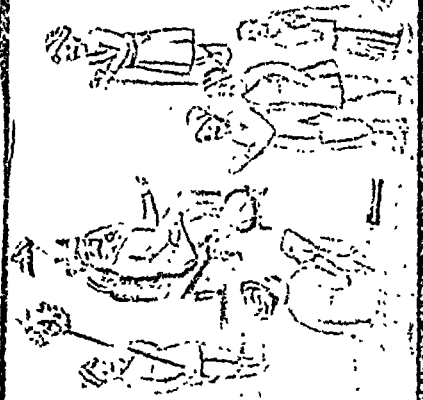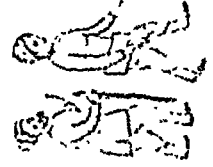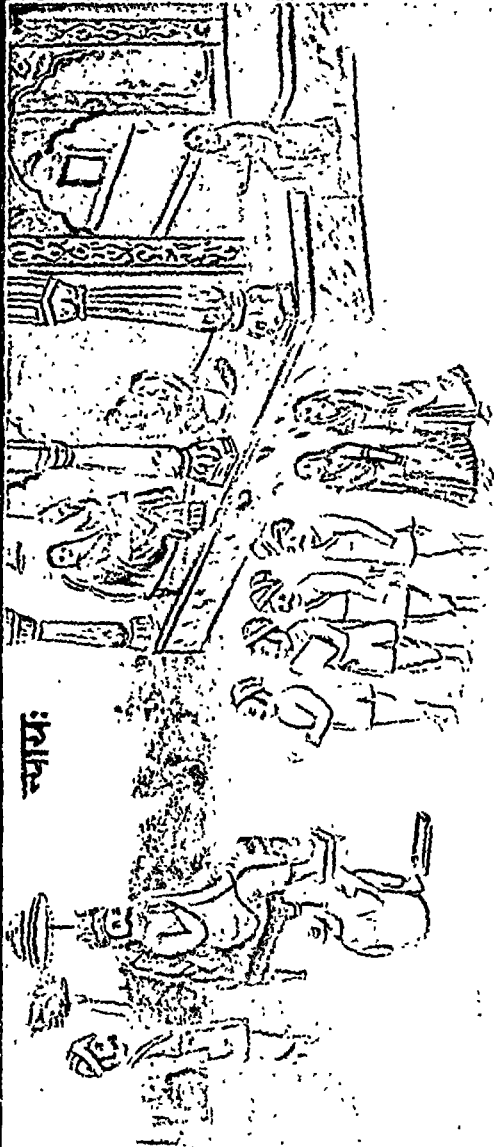
भावार्थः—सात्विक न्याय प्रजाओं की वृद्धि के कारण से किया जाता है इसमें राजा, प्रजा को धरोहर की भांति अधिकार में रक्खे ॥१७॥

न्यायो राजसिकश्चायं प्रजावृद्ध्यादिहेतवे।
प्रकाशोऽस्मिन् प्रजायेत राज्यस्य वैभवोऽधिकः ॥१८॥

भावार्थः—राजसिक न्याय राजा और प्रजाओं में सुख शांति के प्रयोजन से हो इस न्याय में राजविभव अधिक २ प्रकाश किया जाता है ॥१८॥

यथार्थनिर्णयं कृत्वा पक्षपातं विहाय वा।
प्रकृत्यै यः सदादेशः सत्यन्यायः स उच्यते ॥१९॥

भावार्थः—यथार्थ (जैसा योग्य हो वैसा) निर्णय करके तथा पक्षपात को छोड़कर प्रजा के लिये जो उत्तम आदेश (आज्ञा) दिया जाता है उसे सत्यन्याय कहते हैं ॥१९॥

स्वार्थप्राधान्यमाश्रित्य न्यायो भवति यः सदा।
स्वार्थिकः स समाख्यातो गुणस्तामसिकस्तथा ॥२०॥

न्यायो यन्नाममात्रस्य स्वार्थसीमाश्रयङ्गतः।
प्रजाभ्यो भूमिपालेभ्यः सर्वदा दुःखदायकः ॥२१॥

अप्रबन्धः स्थित्यभावः शान्ति रस्मिन् विनश्यति।
राज्यस्यापि विनाशेन भूपति र्दुःखमश्नुते ॥२२॥

भावार्थः—स्वार्थ की अधिकता को प्राप्त कर जो न्याय किया जाता है वह स्वार्थिक न्याय कहा गया है तथा इस न्याय का तामसिक गुण है। तथा यह न्याय केवल नाम मात्र का ही है स्वार्थ की सीमा

(हद) का आश्रयण करने वाला है तथा प्रजा और राजाओं को सब प्रकार से दुःख देने वाला है। इस न्याय से प्रबन्ध ठीक नहीं रहता एवं राज्य की स्थिति नष्ट हो जाती है तथा इस न्याय से शांति नष्ट हो जाती है। अतएव राज्य के विनाश से राजा अत्यन्त दुःख प्राप्त करता है ॥२०-२१-२२॥

हानिः स्वार्थानुरक्तस्य काले काले विजायते ।
परमार्थाऽभिलग्नस्तु लभते स्थानमुन्नतम् ॥२३॥

भावार्थः—स्वार्थ में लगे हुए मनुष्य की समय २ पर हानि होती रहती है तथा परमार्थ में लगा हुआ मनुष्य उन्नत स्थान प्राप्त करता है ॥२३॥

विभागे कलहोत्पत्ति-र्दायादेषु यदा भवेत् ।
गुणानष्टतदाभूपः तेषु सम्यग् विलोकयेत् ॥२४॥

भावार्थः—विभाग (बटवारा) में यदि दायादों (पुत्र पौत्रादिकों) में कलह (लड़ाई) उत्पन्न हो जाय तो राजा को चाहिये कि उन विभाग पाने वालों के आठ गुणों को देखे ॥२४॥

प्रजानिश्चितसभ्यानां भूपानाञ्चापि सम्मतिः ।
यत्र स्यादधिका सैव न्यायोमान्यो भवेत्सदा ॥२५॥

भावार्थः—प्रजा से निश्चित् किये हुये सभासद् तथा भूपों (जागीरदार) की सम्मति जिधर अधिक सम्मत्ति हो वह ही न्याय माननीय होना चाहिये ॥२५॥

बलबुद्ध्योः समाधिक्या-द्विभागो दीयतेऽधिकः ।
तत्र श्रीराजविद्यायाः ज्ञाने बुद्धिपरिक्षणम् ॥२६॥

भाषार्थः—बल तथा बुद्धि की अधिकता को देखकर अधिक विभाग देना चाहिये । अर्थात् जिसमें बल तथा बुद्धि अधिक हो उसे अधिक विभाग दिया जाय । उसमें बुद्धि की परीक्षा श्रीराजविद्या के ज्ञान में करनी चाहिये ॥२६॥

असिप्रहारेणैकेन कवचच्छेदने तथा ।
सारज्ञाने तथा दाने क्रोशेन लक्ष्यभेदने ॥२७॥

सन्ततीनां समाधिक्ये वीरत्वे विनये तथा ।
कृतज्ञोदारसाहाय्ये धेनुकाहरिमारणे ॥२८॥

परीक्षेत बलं भूपस्तदा भागं प्रदापयेत् ।
बलाधिक्येऽधिकोभागो न्युने न्युनः समीरितः ॥२९॥

भाषार्थः—असि (तलवार) के एक ही वार से कवच को छेदन कर देने में, सार ज्ञान तथा दान में, एक कोस से लक्ष्य को भेद देने में, सन्तान की अधिकता में, वीरता तथा विनय में, कृतज्ञ (किये हुये उपकार को मानने वाला) और उदार मनुष्यों की सहायता में, धेनुका (छोटा शस्त्र) से सिंह को मारने में राजा बल की परीक्षा करे तब उसके अनुसार भूमि का विभाग दिलावे । बल की अधिकता में अधिक भाग तथा कम बल वाले को कम विभाग देना कहा गया है ॥२७-२८-२९॥

तत्वहीनो दुराचारी दुष्टः क्रोधी च नास्तिकः ।
विभाग मधिकंप्राप्तुं जायते न क्वचित्क्षमः ॥३०॥

भाषार्थः—तत्व से हीन, दुराचारी, दुष्ट, क्रोधी और नास्तिक ऐसे मनुष्य अधिक विभाग प्राप्त नहीं कर सकते ॥३०॥

विभागेऽस्मिन्सदा न्यायः पक्षपातं विना भवेत् ।
अन्यथाऽन्यमनुष्याणा-माश्रयं याति निश्चिनम् ॥३१॥

भाषार्थः—इस विभाग में विना पक्षपात के न्याय होना चाहिये नहीं तो वह न्याय दूसरे मनुष्यों के हाथ में निश्चय चला जाता है ॥३१॥

वीरेभ्यः सुभटेभ्यश्च वान्धवेभ्यो निरन्तम् ।
भूदानेन राज्यदार्ढ्यं सन्तति वृद्धिमेत्यपि ॥३२॥

भाषार्थः—वीर, भट क्षत्रिय वान्धवों को भूमि का भाग देने से राज्य दृढ़ता को प्राप्त होता है तथा सन्तति भी वढ़ती है ॥३२॥

बान्धवेभ्यो विभागस्तु दीयते योग्यतानुगः ।
राजविद्यापरित्यागा-दन्यायोवर्द्धते क्षितौ ॥३३॥

येन राज्यं नाशमेति समायात्यपि लाघवम् ।
न्यायेनास्मद् भू विभागं दद्याद् भूपो हितेच्छया ॥३४॥

भाषार्थः—अपने वान्धवों को जो विभाग दिया जाता है वह योग्यतानुसार ही देना चाहिये । जव श्री राजविद्या का क्षत्रिय लोग परित्याग कर देते हैं तो संसार में अन्याय की वृद्धि होती है जिससे राज्य विनाश अथवा छोटेपन को प्राप्त होता है इसालेये हितेच्छा से न्याय पूर्वक भूमिका विभाग देना चाहिये ॥३३-३४॥

स विभागोऽर्द्धभागात्तु दातव्योऽत्र शतांशकः ।
चरद्रव्येषु वा सम्यक् योग्यतां वीक्ष्य दीयते ॥३५॥

भाषार्थः—वह विभाग आधे हिस्से से लेकर सौ भाग तक दिया जाता है किन्तु चरसम्पत्ति में से योग्यतानुसार ही दिया जाता है ॥३५॥

कन्यासुतं भागिनेयं स्वगोत्रजाति सम्भवम् ।
ग्रहीयाद्दत्तकम्पुत्रं राज्यस्थैर्याय भूपतिः ॥३६॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि जब उसके सन्तान न हुई हो तो राज्य की स्थिति के निमित्त कन्या के पुत्र, भगिनी के पुत्र अपने गोत्र (भाई आदि) या जाती के पुत्र को दत्तक (गोद) लेले ॥३६॥

पोषणाय तु मातृभ्यः भागोदेयोऽस्ति सर्वथा।
प्रथमायै द्वितीयायै तृतीयायै यथाक्रमम् ॥३७॥

चरसम्पत्तिभागस्य योग्यं कुर्याच्चलाघवम्।
स्वसम्पत्यनुसारेण मातृसेवाऽभियुज्यते ॥३८॥

भाषार्थः—जिसके जितनी भी मातायें हों उन सब का भली भांति पोषण हो जाय इतना भाग तो उन्हें देना ही चाहिये। किन्तु प्रथम, द्वितीय और तीसरी माता के लिये अपनी चर सम्पत्ति में से अपनी सम्पत्ति जितनी हो उसके अनुसार उन तीनों माताओं के भाग में यथाक्रम कमी कर देनी चाहिये अर्थात् प्रथम माता के लिये सब से अधिक भाग, दूसरी के लिये उससे कम तीसरी के लिये उससे कम भाग देना चाहिये। अथवा अपनी सम्पत्ति के अनुसार माताओं की सेवा करना प्रत्येक का धर्म है ॥३७-३८॥

भगिन्यै निजकन्यायै चरद्रव्येषु दीयते।
अर्धावधिविभागस्तु कल्याणवृद्धिवाञ्छया ॥३९॥

भाषार्थः—अपनी बहन और कन्या के लिये चर सम्पत्ति में से मंगल और वृद्धि की इच्छा से आधा भाग तक देना चाहिये ॥३९॥

न नाशयेद् भूमिपालः सीमाचिन्हं तु कस्यचित्।
न्यायरक्षाभिसंलग्नं राजानन्नाक्रमेत्कचित् ॥४०॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि किसी अन्य राजा के सीमा चिह्नको नष्ट न करे। तथा न्याय और रक्षा करने में लगे हुए राजा पर कभी भी आक्रमण न करे ॥४०॥

नारीणां न्यूनदोषे तु ताडनं पापमुच्यते ।
कलहस्याभिवृद्धया तु वंशनाशोपिजायते॥ ४१॥

भाषार्थः—स्त्रियों के थोड़े से दोष पर उन्हें ताड़ना देना पाप कहा गया है, ऐसा करने से तथा अन्य किसी कारण से कलह बढ़ जाने से वंश तक का नाश हो जाता है ॥४१॥

नारीभ्यः शिक्षणस्यात्र प्रबन्धः सुतरां भवेत् ।
इच्छानुसारं तारुण्ये सुयोग्यं वरमीक्ष्य च ॥४२॥
बुद्धयादिबलसयुक्तं रूपयौवनसयुतम् ।
कुर्याद्विवाहं कन्यायाः योग्यसन्ततिहेतवे ॥४३॥
यथानरस्यादरःस्या-त्तथानार्यःसमीरितः ।
न्यायेन वंशसंवृद्धिः स्थानमुच्चमुपैति ना ॥४४॥

भाषार्थः—स्त्रियों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध भलीभांति होना चाहिये । तथा कन्या की इच्छानुसार बुद्धि, विद्या, सम्पत्ति आदि बलों से युक्त तथा रूप और यौवन से संयुक्त सुयोग्यवर को देखकर योग्य संतान पैदा हो ऐसी इच्छा से विवाह करना चाहिये । तथा जिस प्रकार मनुष्य का आदर किया जाता है उसी प्रकार स्त्री का भी आदर करना चाहिये, इस भांत स्त्री जाति के साथ न्याय पूर्वक व्यवहार करने से वंश की वृद्धि होती है तथा मनुष्य उन्नत स्थान प्राप्त करता है ॥४२-४३-४४॥

शिक्षितसेनारक्षणप्रकारनिरूपणम्

सप्तमः पाठः

वीरैर्भटैश्च संयुक्ता युद्धविद्याविशारदा ।
क्षत्रियाणाम्महीपानां सेना स्यात्स्ववशे सदा ॥१॥
एवं स्यात्तु भृत्यसेना नृपस्याज्ञानुकारिणी ।
राज्यस्य परिरक्षार्थं सर्वदैव प्रशस्यते ॥२॥
पुराणामपि राज्यस्य सेनारक्षार्थमीरिता ।
राज्यस्य रक्षकाणाञ्च साहाय्यार्थं प्रजायते ॥३॥
शिक्षितांश्च तथा सभ्यान् सेनागुणसमन्वितान् ।
भूमिपान्क्षत्रियान्भूपः वर्द्धयेन्मङ्गलेच्छया ॥४॥

भाषार्थः—वीर योधाओं से युक्त युद्ध की विद्यामें कुशल प्रति दिन अस्त्रशस्त्रों का अभ्यास पाये हुये ऐसे क्षत्रिय महीपों (जागीरदारों) की सेना अपने वश में हो तथा इसी प्रकार के गुणों से युक्त और राजा की आज्ञा के अनुसार काम करने वाली नोकर रक्खी हुई सेना राज्य की रक्षा के निमित्त प्रशंसनीय कही गई है। तथा वह सेना नगर और राज्य की रक्षा के लिये होती है। एवं राज्य के रक्षकों (सिपाईयों) की सहायता करने के लिये और उपरीराज्य की रक्षा के लिये वह सेना होनी चाहिये, शिक्षित सभ्यसेना के गुणों से युक्त, तथा भूमि के स्वामी क्षत्रियों को राजा कल्याण की इच्छा से बढ़ावे ॥१-२-३-४॥

बलं स्वस्य च बन्धूनां न्यूनं कार्यन्न कर्हिचित् ।
एतेन राज्यदार्ढ्यं स्यात् तत्स्याच्छस्त्रास्त्रसज्जितम् ॥५॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपना तथा अपने बान्धव सम्बंधियों के बल को कम नहीं करे और वह बल (सेना) अस्त्रशस्त्रों से शिक्षित होना चाहिये इसी से राज्य की दृढ़ता होती है ॥५॥

भृत्यानामपि या सेना तस्याः संरक्षणं भवेत् ।
वीराणां क्षत्रियाणाञ्च कुलीनानां तथाश्रये ॥६॥

भावार्थः—नौकर रक्खी हुई जो फौज हो उसका वीर कुलीन और बुद्धिमान क्षत्रियों के अधिकार में संरक्षण (देखभाल) होनी चाहिये ॥६॥

क्षत्रियाणां प्रतिष्ठार्थं पृथक् न्यायालयस्तथा ।
दण्डस्यापि विधानंस्यात् न च संमिश्रितं क्वचित् ॥७॥

अन्यथा क्षत्रिणान्तु मानहानि र्विजायते ।
धर्मस्यापि विनाशेन विरुद्धमा चरंतिते ॥८॥

भावार्थः—क्षत्रियों की प्रतिष्ठा और मान के निमित्त न्याया-लय और मर्याद पृथक् होने चाहिये तथा दण्ड का विधान भी पृथक् ही हो एवं साधारण प्रजा के समान मिश्रित नहीं होना चाहिये । यदि ऐसा न किया जाय तो क्षत्रियों के मान और धर्म की बड़ी हानि होती है और फिर उनके क्षात्र धर्मोचित वीरता तथा उत्साह की हानि हो जाती है । राज्य के विपरीत आचरण करने लगते हैं, अतः राज्य स्थिति नष्ट हो जाती है ॥७ ८॥

मानादीनां विनाशेन क्षत्रियाणां निरन्तरम् ।
वीरता च तथोत्साहः जातिमानश्च हीयते ॥९॥

यदा साधारणीं वृत्तिं प्राप्नुवंति च ते सदा ।
तदा बलस्यनाशेन राज्यंचापि विनश्यति ॥१०॥

भापार्थः—क्षत्रियों की मान प्रतिष्ठा आदि के विनाश होने पर उन क्षत्रियों की वीरता उत्साह और अपनी जाति का मान भी कम पड़ जाता है जब वे साधारण वृत्ति को प्राप्त कर लेते हैं तब बल के नाश होने से राज्य भी नष्ट हो जाता है ॥९-१०॥

योग्यतायाः वीरताया ह्यनुसारेण दीयते ।
भूपतित्वं क्षत्रियेभ्यः राज्यस्य स्थितिहेतवे ॥११॥

भापार्थः—राज्य की स्थिति के ही लिये क्षत्रियों को योग्यता और वीरता के अनुसार भूमि का अधिकार देना चाहिये ॥११॥

अचिराय भृत्यसेना भवत्येवोपयोगिनी ।
चिराय भूपतीनाञ्च महत्कार्याय सर्वथा ॥१२॥

भापार्थः—नौकर रक्खी हुई सेना थोड़े समय के लिये उपयोगी होती है किन्तु भूपति (जागीरदारों) की सेना बड़े कार्यों को सिद्ध करने के लिये तथा चिरकाल (अधिकसमय) के लिये उपयोगी होती है ॥१२॥

अतोऽहि स्वामिभावेन दद्याद्भूमेश्चशासनम् ।
योग्यताम्वीक्ष्यदायाद-विभागश्चप्रदापयेत् ॥१३॥

भापार्थः—इसीलिये योग्यता को देखकर स्वामिभाव से भूमि का शासन योग्य को देखकर ही दायाद विभाग (हक) देना चाहिये ॥१३॥

संग्रामसमयेभूपो रक्षास्थानं समाश्रयेत् ।
समस्थले पर्वते च नद्यां वा विषमस्थले ॥१४॥

भापार्थः—राजा को चाहिये कि संग्राम के समय, समानभूमि पर्वत, नदी या विषम स्थान में रक्षा का स्थान निश्चित करे ॥१४॥

देशं कालं स्वपक्षस्य शत्रोश्चापिबलाबलम् ।
चारोत्साहैर्निरीक्षेत भूपतिर्विजयेच्छया ॥१२॥

भाषार्थः—देश, काल तथा अपने पक्ष और शत्रु के बल और अबल को विजय की इच्छा रखकर राजा चारों (गुप्तदूतों) के उत्साह से जान ले ॥१५॥

सहस्रसंख्यकाः युद्धे सैनिकाः धर्मपालकाः ।
पंक्तिसहस्रभटकान् विजयन्ते च दुष्कृतान् ॥१६॥

भाषार्थः—धर्म का पालन करने वाले एक हजार सैनिक, दश हजार दुरात्मा योधाओं को संग्राम में जीत लेते हैं ॥१६॥

रणे रिपूणां साहाय्यं भोजनाच्छादनदिकम् ।
उपयोगिपदार्थान्वा रुन्ध्याद्विजयवाञ्छकः ॥१७॥

भाषार्थः—संग्राम में शत्रुओं की सहायता, तथा भोजन, वस्त्रादि एवं उपयोग (काम) में आने वाले पदार्थों को विजय की इच्छा से रोक देना चाहिये ॥१७॥

रणे समन्ताद् विजयाभिलाषो-
विज्ञःसदैवाक्रमणं सपत्ने ।
दशां समन्तात्प्रविलोक्य कुर्या-
त्तदास्त्ववश्यं विजयोपलब्धिः ॥१८॥

शस्त्रैस्तथास्त्रैः परिसज्जिताः स्यु-
र्महद्बलं धार्मिकमेत्य वीराः ।
कृशानुरूपाश्च बले तु यस्य
तस्यास्त्ववश्यं विजयः समित्याम् ॥१९॥

संग्रामविधिः (१)

U.A.P.P.J

संग्रामविधिः (२)

U.A.P.P.J

भापार्थः—विजय प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला चिद्र राजा युद्ध की अवस्था को सब प्रकार देखकर संग्राम के मध्य में शत्रु पर सम्पूर्ण दिशाओं से आक्रमण करे तब उसके लिये विजय की प्राप्ति हो सकती है। तथा जिस राजा की सेना में शस्त्र तथा अस्त्रों से सजे हुए और पूर्ण अभ्यासी हों वे धर्म के बड़े भारी बल को प्राप्त करके अग्नि के समान तेज वाले वीर योधा होते हैं उस राजा की अवश्य ही संग्राम में विजय होती है ॥१८-१९॥

समाक्रान्ताः शत्रुभिर्वै धार्मिकाः स्यूरणस्थले ।
कृत्वाधातैर्बलैः पूर्णैः संस्थानं यान्तु रक्षितम् ॥२०॥
राजविद्यानुसारेण पुनः कुर्वन्तु ते रणम् ।
विजयं राजलक्ष्मीश्च तदा संप्राप्नुवन्तु हि ॥२१॥

भापार्थः—जो धार्मिक वीर आक्रन्त शत्रुओं से किये जाय और गिर जाय तब उन्हें चाहिये कि एक बार अपने पूर्ण बल से आघात करके सुरक्षितस्थान पर चले जाय तथा फिर दुवारा श्रीराज-विद्या के अनुसार उन्हें युद्ध करना चाहिये तब उन्हें विजय तथा राज्य लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है ॥२०-२१॥

वहुभिर्मिश्रिते शत्रौ भेदनीतिः प्रशस्यते ।
दत्वा द्रव्यस्य लोभन्तु प्रकुर्यात्तान्पृथक् नृपः ॥२७॥

भापार्थः—वहुत आदमियों से मिले हुए शत्रु पर भेदनीति का प्रयोग करना प्रसंशनीय है तथा राजा को चाहिये कि उन मनुष्यों को धन का लोभ देकर उन्हें पृथक् करदे ॥२७॥

शत्रोर्यैस्तुभवेद्वेषः प्रथक् तान्परिकारयेत् ।
स्वपक्षे वा महीपालः-कुर्याद्विजयवाञ्छकः ॥२८॥
सहानुभूत्या मानेन वीरसम्बोधनैरपि ।
संतोषयेत्सदाभूपः विजयस्तस्य जायते ॥२९॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों के साथ शत्रु का वैर हो उन मनुष्यों को विजय प्राप्त करने की इच्छा वाला राजा पृथक् करदे या उन्हें अपने पक्ष में मिलाले तथा उनको सहानुभूति से मान से और वीर शब्द के सम्बोधनों से संतुष्ट करे तब उस राजा की विजय होती है ॥२८-२९॥

रक्षास्थानं द्विधाप्रोक्तं सहजं कृत्रिमन्तथा ।
उभयोः संचयं कुर्यात्-राजा रक्षणहेतवे ॥३०॥

भावार्थः—रक्षा स्थान दो प्रकार से कहा गया है एक प्राकृत तथा दूसरा कृत्रिम (अपना बनाया हुआ) इन दोनों प्रकार के स्थानों को राजा रक्षा के लिये संचित करे (निश्चित करे) ॥३०॥

राज्यसौकर्यार्थं राज्याङ्गनिरूपणम् ।

अष्टमः पाठः

अतोऽग्रे संप्रवक्ष्यामि राज्याङ्गानां प्रवर्णनम् ।
उमे ! तन्निखिलं प्रेम्णा श्रूयतां जगद्धेतवे ॥१॥

भाषार्थः—श्रीशंकर भगवान् बोले कि संसार के हित के लिये राज्य के अंगों का वर्णन करूंगा सो हे उमे ! उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥१॥

शासकः शासनस्यात्र सदाष्टाङ्गानि धारयेत् ।
मन्त्रिणोऽधिकृताः सन्तु प्रत्येकाङ्गस्य, भूपतेः ॥२॥

तेऽधिकारे भवन्त्वेव प्रधानस्यात्र मन्त्रिणः ।
तदा साधु व्यवस्था स्यात् राज्यस्य परिमङ्गलम् ॥३॥

भाषार्थः—शासन करने वाला राजा शासन करने के आठ अंगों को सदा ग्रहण करे, तथा प्रत्येक अंग के अधिकारी राजा के मन्त्री होने चाहिये और वे सब मन्त्री प्रधानमन्त्री के अधिकार में रहें । तब ही राज्य की उत्तम व्यवस्था होती है और राज्य में मंगल बना रहता है ॥२-३॥

स्वकीयेष्टे दृढो भूत्वा शरीरमिन्द्रियाण्यपि ।
स्ववशे प्रविधायैव रक्षार्थं पृथिवीपतिः ॥४॥

शुद्धोच्चैश्वरभावैस्तु सेनाभ्यासं विलोकयेत् ।
अस्त्राणामथ शस्त्राणामङ्गं प्रथममीरितम् ॥५॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में दृढ़ता तथा शरीर और इन्द्रियों को वश में रखकर ही रक्षा के निमित्त, शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव से राजा सैना (जागीरदारों की तथा नोकर रक्खी हुई) के अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास को राजा देखा करे। यह प्रथम अंग कहा गया है ॥४-५॥

परमार्थे योग्यदाने समुत्साहो निरन्तरम् ।
पुरुषार्थेन तपसा धृत्या धर्मेण सन्ततम् ॥६॥

आयस्य साधनं नित्यं भूपतिः समुया चरेत् ।
द्वितीयमंगमाख्यातं राज्यस्थैर्यविधायकम् ॥७॥

भाषार्थः—परमार्थ और दान में उत्साह, पुरुषार्थ, तप, धैर्य और धर्म पूर्वक आय (आमदनी) का साधन नित्यप्रति करता रहे राज्य में स्थिति पैदा करने वाला दूसरा अंग कहा गया है ॥६-७॥

विविधानां हि विद्याना-महिंसासत्यविक्रमैः ।
स्थित्याद्यर्थं प्रकुर्वीत प्रचारं क्षितिनन्दनः ॥८॥

धर्मोपदेशस्य तथा प्रबन्धं च समाचरेत् ।
तृतीयमङ्गमेतद्धि जगद्धेतोः समीरितम् ॥९॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि स्थिति आदि नौं वातें संसार में वर्तें इसलिये दया (अहिंसा) सत्य और विक्रम (तेज) का भाव रखकर विविध विद्याओं का प्रचार करे तथा समस्त राज्य में धार्मिक उपदेश का प्रबन्ध भी करे। संसार के हित के लिये यह तीसरा अंग कहा गया है ॥८-९॥

ऐक्यभावाद्विवाहः स्यात् स्वजातै भूपतेः सदा ।
अत्यावश्यक कार्यस्य प्रागुपायः सदा भवेत् ॥१०॥
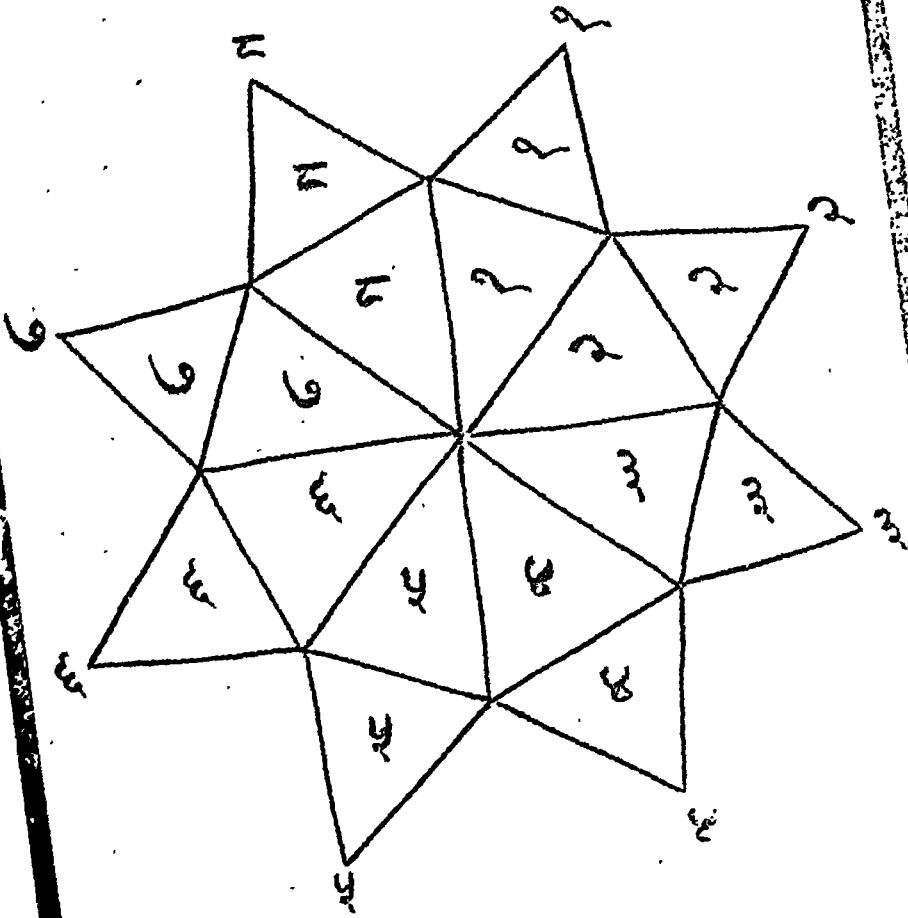
राज्यशासनायाष्टकोंणचक्रम् ।

ईश्वराराधनेभक्तिः-प्रीतिः स्यात्पुण्यधर्मयोः ।
तदासौख्यस्य प्राप्तिस्या चतुर्थमङ्ग मीरितम् ॥११॥

भापार्थः—स्त्री पुरुष में एकता का भाव रखकर अपनी जाति में मर्यादा पूर्वक विवाह तथा परम आवश्यकीय कार्य का उपाय सब से प्रथम करना चाहिये। ईश्वर के आराधन में भक्ति, पुण्य तथा धर्म (यज्ञादि) में प्रीति होनी चाहिये तब दुःख विघ्नादिकों के निवृत्त होने से, समस्त सुखों की प्राप्ति होती है यही चौथा अंग कहा गया है ॥१०-११॥

धार्मिकेषु च कार्येषु प्रीतिः स्यात्तु परस्परम् ।
एकता वापि साहाय्यं प्राणिनां स्यान्निरन्तरम् ॥१२॥
चारैर्वृत्तपरिज्ञानं राज्यमंगलहेतवे ।
रक्षकाणां प्रबन्धस्य वीक्षणं पश्चमं स्मृतम् ॥१३॥

भापार्थः—धार्मिक कार्यों में परस्पर प्रीति, एकता, समस्त प्राणियों की (विशेष कर दीनों की) सहायता, राज्य के कल्याण के लिये गुप्त दूतों द्वारा वृत्तान्त को जानना, सिपाहियों के प्रबन्ध को देखना यह पांचवां अंग कहा गया है ॥१२ १३॥

यथार्थनिर्णयं कृत्वा प्राप्य धर्मं समाचरेत् ।
सुकृतस्य च साहाय्यं दण्डस्तु दुष्कृताय च ॥१४॥
प्रबन्धे रक्षणे न्याये मतिं कुर्याज्जनेश्वरः ।
लोकस्य परिरक्षार्थं षष्ठमत्रांगमीरितम् ॥१५॥

भापार्थः—धर्म पूर्वक जैसा चाहिये वैसा निर्णय करके मनुष्य के अच्छे काम करने पर सहायता तथा दुष्कृत (खोटे काम) पर दण्ड देना चाहिये एवं संसार की पालना के लिये प्रबन्ध रक्षा और न्याय में राजा को बुद्धि रखनी चाहिये यह छठा अंग कहा गया है ॥१४-१५॥

शुद्धधारणया वापि निर्भीकत्वमुपेत्य च ।
दीनानां रक्षणश्चापि यज्ञानुष्ठानमेव च ॥१६॥
अन्यभूपतिभिर्मैत्री धर्मन्यायसमन्विता ।
लोकानां परिवृद्ध्यर्थं व्ययस्यायस्य वीक्षणम् ॥१७॥
अंगं सप्तमकं चैतत् राज्य हेतो रूदीरितम् ।
एतस्या चरणेनैव राज्ये भवति मंगलम् ॥१८॥

भाषार्थः—शुद्ध धारणा से तथा निर्भय होकर दीनों की रक्षा यज्ञों का अनुष्ठान, धर्म और न्याय पूर्वक अन्य राजाओं से मैत्री संसार (जनता) की वृद्धि के लिये आय और व्यय का देखना, राज्य की हित की इच्छा से यह सातवां अंग वर्णन किया गया है इसका अवलम्बन करने से राज्य में हमेशा मंगल होते हैं ॥१६-१७-१८॥

यथायोग प्रयुक्त्यैव पदार्थस्योपयोगिनः ।
ईक्षणं शोधनश्चैव रक्षणञ्च समाचरेत् ॥१९॥
पंग्वन्धविधवादीना–मशक्तानाञ्च पोषणम् ।
शिल्पालयादिनिर्माणं कुर्याद्राज्ये महीपतिः ॥२०॥
स्वास्थ्यरक्षाप्रबन्धांश्च नित्यशो जगद्धेतवे ।
कुर्यात्क्षितीश्वरोऽवश्यमष्टमंगमितीरितम् ॥२१॥

भाषार्थः—सम्पूर्ण काम में आने वाले पदार्थों को यथायोग युक्ति से देखना, शुद्ध करना और उसकी रक्षा करना, लंगड़े, अंधे, विधवा स्त्री अशक्त (अपना पोषण करने में अशक्त) इनका पोषण तथा शिल्पालयों का निर्माण करे । तथा स्वास्थ्य की रक्षा के प्रबन्धों को संसार के हित के लिये करता रहे यह आठवां अंग है ॥१९-२०-२१॥

———

प्रजाकार्याणि ।

U.A.P.P.J
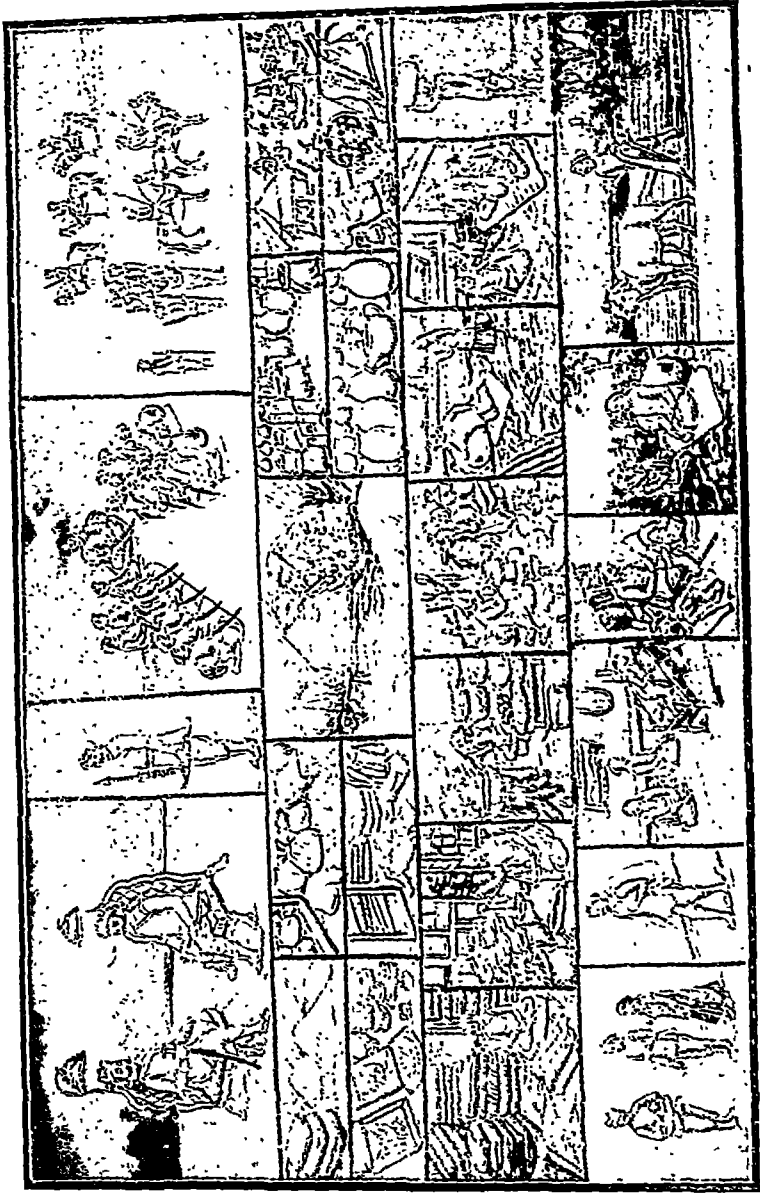
लोकहितधार्मिककार्यसिद्धि-द्रव्य-सदुपयोगनिरूपणम्

नवमः पाठः

श्रमात्तु सर्वद्रव्येषु सम्प्राप्तिर्जायते क्षितौ ।
सर्वोपयोगिवस्तूनां कथ्यते श्रूयतां प्रिये ! ॥१॥

भाषार्थः—परिश्रम से ही सर्व प्रकार के द्रव्यों में सम्पूर्ण उपयोगि वस्तुओं की प्राप्ति होती है सो हे प्रिय पार्वति ! मैं कहता हूं उसे तुम सुनो ॥१॥

द्रव्यं धर्मेण सम्प्राप्य नवकोषान्प्रपूरयेत् ।
अन्नस्य प्रथमः कोषस्तृणानाञ्च द्वितीयकः ॥२॥

वस्त्राणान्तु तृतीयः स्यात् घृतादीनाञ्चतुर्थकः ।
पञ्चमोभोज्यद्रव्यस्य षष्ठः कोषो धनस्य च ॥३॥

शस्त्रादीनां सप्तमः स्यान्मण्यादीनां तथाष्टमः ।
सर्वोपयोगिवस्तूनां कोषोऽयन्नवमः स्मृतः ॥४॥

भाषार्थः—राजा धर्म से द्रव्य को प्राप्त कर नव कोषों को पूरित करे (भरे) जिसमें से प्रथम कोष अन्न का, दूसरा तृणादिकों का, तीसरा वस्त्रों का, चौथा घृतादिकों का, पांचमा खाने की वस्तुओं का, छठा धन का तथा सातवां कोष शस्त्रादिकों का एवं आठवां मणियों का और नवमा कोष सब उपयोगि वस्तुओं का कहा गया है ॥२-३-४॥

यन्त्रादीनान्तु लाभः स्यात् कलाकौशलयोरपि ।
अस्त्रादीनां विमानानां पात्रादीनां च सर्वशः ॥५॥

नवद्रव्यैः प्रजायन्ते लाभाः सर्वत्र भूतले ।
भूपतिर्निजसाम्राज्ये लाभानेतान्प्रचारयेत् ॥६॥

भाषार्थः—नौ द्रव्यों (जल, तेज, वायु, पृथ्वी, आकाश. काल दिग, आत्मा और मन) से यन्त्रादिक (मशीन आदि) कला कौशल. अस्त्रादिक (युद्ध सामग्री) विमान तथा पात्रादिक (उपयोगी अन्य पदार्थ) इन सबों के लाभ होते हैं। अतएव राजा उक्त बातों का राज्य में प्रचार करे ॥५-६॥

पृथिव्यादौ श्रमेणैव कृषिकर्म प्रजायते ।
धान्यखाद्यरसानां च काण्डपल्लवयोस्तथा ॥७॥

शाकतूलप्रबीजानां फलानां पुष्पमूलयोः ।
वनेषु पर्वतेष्वेव-मौषधीनां समुद्भवः ॥८॥

आकरेभ्यश्च धातूनां पाषाणेङ्गालयोरपि ।
मृत्तिकायाश्च जायेत क्षारादीनाञ्चसर्वशः ॥९॥

भाषार्थः—पृथिव्यादि पञ्च तत्वों में श्रम करने से खेती होती है जिसमें प्रत्येक धान्य (नाज) खाद्य, रस, काण्ड और पत्र उनकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार वन और पर्वतों में परिश्रम करने से औषधियों की उत्पत्ति होती है एवं खानों से समस्त धातु पाषाण (पत्थर) कोयला, मिट्टी और क्षारादिकों की उत्पत्ति होती है ॥७ ८.९॥

यथा यस्य भवेत्कार्य-मायश्चापि यथा भवेत् ।
करस्तस्मात्तथा ग्राह्यो भूमिपालेन धीमता ॥१०॥

भाषार्थः—जिस प्रकार का जिस मनुष्य का काम हो तथा जिस प्रकार आमदनी हो उसी प्रकार कम या ज्यादा बुद्धिमान् राजा को लगान वसूल करना चाहिये ॥१०॥

स्वदेशहितयुद्धार्थं कार्यायाकस्मिकाय च ।
प्रजाः शक्त्यनुसारेण दद्युरेव सहायताम् ॥११॥

भाषार्थः—अपने देश के हित के लिये संग्राम के लिये तथा आवश्यकीय काम के लिये अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देनी चाहिये ॥११॥

कालेनैव धनाप्तिः स्यात् व्यर्थो न क्रियते यदा ।
यथेष्टयानलाभः स्यात् दिशाभ्योऽत्र निरन्तरम् ॥१२॥

भाषार्थः—यदि समय को व्यर्थ न व्यतीत किया जाय तो काल (समय) से ही धन की प्राप्ति होती है । दिशाओं से यथेष्ट (मनमाने) गमन की प्राप्ति होती है ॥१२॥

आत्मानन्नाधरीकुर्यात्स्वल्पलाभाय मानवः ।
परमार्थावलम्बेन प्रकुर्यादुन्नतं सदा ॥१३॥

भाषार्थः—मनुष्य स्वल्पलाभ के लिये अपनी आत्मा को नीचा न गिरावे तथा परमार्थ (परोपकार) का अवलम्बन कर निरन्तर अपनी आत्मा को उन्नत बनाता रहे ॥१३॥

मानसिक लाभः

मानसिको समुत्साहो लाभोऽयं सम्प्रशस्यते ।
एतेनैवात्र संसारे मनुष्यो विजयी भवेत् ॥१४॥

भाषार्थः—उत्साह का ग्रहण करना या रखना मानसिक लाभ है इसीसे अर्थात् मन में उत्साह रखने से मनुष्य संसार में प्रशंसा युक्त तथा विजयी होता है ॥१४॥

राजविद्योपदेशेन नैराश्यं स्वार्थमेव वा ।
अपौरुषमश्रद्धाञ्च सर्वथैव परित्यजेत् ॥१५॥

भावार्थः—राजविद्या के उपदेश से निराशा, स्वार्थ, अपौरुषं और अश्रद्धा इन सर्वों को छोड़ देना चाहिये ॥१५॥

रक्षान्यायौ विना भूपः करग्राही यदा भवेत् ।
निःसन्तानः स सञ्जातः विनाशमुपगच्छति ॥१६॥

भावार्थः—यदि राजा रक्षा और न्याय न करता हुआ भी प्रजा से लगान वसूल करता है तो निस्सन्तान होकर विनाश को प्राप्त होता है ॥१६॥

सुप्रबन्धैः प्रजाहिताय, आयव्यय निरूपणम्

दशमः पाठः

आयाद् व्ययो यथाशक्यं न कार्योऽत्यधिकः क्वचित् ।
समये समये द्रव्यं सौख्येन परिशेषयेत् ॥१॥

भाषार्थः—आमदनी से जहांतक हो सके अधिक खर्च मनुष्य को नहीं करना चाहिये । तथा समय समय पर सुख पूर्वक द्रव्य की बचत करना चाहिये ॥१॥

अल्पव्ययेन कुर्वीत बहुद्रव्यस्य रक्षणम् ।
दानं धनस्य विख्याता सर्वथैवोत्तमा दशा ॥२॥

योग्यदानेन भूलोके प्राप्नोति सुखमक्षयम् ।
लोके कीर्तिमवाप्नोति मानवो नाऽत्रसंशयः ॥३॥

भाषार्थः—अल्प व्यय करके अधिक धन की रक्षा करनी चाहिये, तथा दान करना ही धन की उत्तम दशा कही गई है इस प्रकार योग्य दान से संसार में मनुष्य अक्षय सुख तथा यश को प्राप्त करता है ॥२-३॥

भोगस्त्वत्र समाख्यातो धनस्य मध्यमा गतिः ।
एवं द्रव्यस्य जायेत विनाशस्त्वधमा दशा ॥४॥
स्वार्थैश्वर्यविमोहानां भोगस्यातिशयेन वा ।
आयुः संजायते क्षीणं सौख्याधिक्येन वा नृणाम् ॥५॥

भाषार्थः—धन की मध्यमगति भोग है और अधम गति नाश है इसी प्रकार विनाश होना यह धन की अधम दशा है। स्वार्थ, ऐश्वर्य, मोह और भोग की अधिकता से एवं सुख की अधिकता से मनुष्यों की आयु क्षीण होती है ॥४-५॥

प्रकृत्यानियमेनैव पूर्वसंचितकर्मभिः ।
सुखैं दुःखैश्च संयुक्तं जन्म संलभते नरः ॥६॥
शीघ्रं सुखानि योभुंक्ते संचयन्न करोत्यपि ।
तदा तस्य नरस्याशु मृत्युः संजायते ध्रुवम् ॥७॥
दीर्घजीवितमन्विच्छन् भुनक्तवाशुखंतु नो ।
सञ्चिनोतु नरोयस्तु दीर्घायुर्लभते कृतीः ॥८॥
आयुर्वपुर्वृद्धिमेति शेषैः संचितकर्मभिः ।
वर्द्धयेद्यश्च कर्माणि पूर्वस्मात्संप्रवर्द्धते ॥९॥
मनुष्योऽतोमहीलोके कर्तुमेतत्क्षमो भवेत् ।
तस्मात्सर्वं विविच्यैतत् कुर्यात्कार्याण्यहर्निशम् ॥१०॥

भाषार्थः—प्रकृति के नियमानुसार पूर्व जन्म के संचित कर्मों से ही मनुष्य सुख तथा दुःखों से युक्त जन्म प्राप्त करता है किन्तु जो शीघ्रता से सुखों को भोगता है और संचित नहीं करता तब उस मनुष्य की मृत्यु निश्चित करके शीघ्र ही हो जाती है इसलिये दीर्घ जीवन की इच्छा करने वाला मनुष्य सुखों को शीघ्र न भोगे तथा संचित करे वह सर्वथा दीर्घायु प्राप्त करता है। शेष (बचे हुए) और संचित कर्मों से ही आयु की वृद्धि होती है इसलिये जो युक्ति से संचित् कर्मों को बढ़ाता है तो वह मनुष्य पहले से भी अधिक आयुष् वृद्धि को प्राप्त करता है। इस कार्य को संसार में मनुष्य ही कर सकता है। अतः इस सब बात का विचार करके ही मनुष्य को कार्य करना चाहिये।अर्थात् जब तक संचित कर्म बाकी रहता है और वृद्धि को भी प्राप्त होता है तथा तभी तक आयु की वृद्धि होती है ॥६-७-८-९-१०॥

सुखानि नाशु योभुंक्ते योगी स प्रतिपाद्यते ।
आयुस्तस्य वृद्धिमेति योगोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ॥११॥

भापार्थः—जो मनुष्य सुखों को शीघ्र नहीं भोगता वह योगी कहा जाता है और उस योगी की आयु वढ़ती है इसलिये ही योग सर्व श्रेष्ठ कहा गया है ॥११॥

पथ्यै र्योगैः संयमैश्च सिद्धिः संजायतेऽक्षया ।
अतः प्रवृत्या चैतेषु मनुष्योऽमरतां लभेत् ॥१२॥

भापार्थः—पथ्य, नियम और योगाभ्यास से अक्षय सिद्धि होती है । अतः इन पथ्यादि को प्रवृत्ति रखने में मनुष्य देवता की पदवी को प्राप्त कर लेता है अर्थात् अमरपद प्राप्त करना है ॥१२॥

सम्भावाधिकसौख्यस्य वाञ्छाकरणमेव वा ।
सुखाय सुखकार्याय विचाराधिक्य मस्तु चेत् ॥१३॥
स्वपोषणातिरिक्तं तु द्रव्योपार्जनचिन्तनम् ।
प्रत्येककार्येऽतिरतिस्त्वन्यायान्नोऽभिपीडनम् ॥१४॥
न्यायेनैवाशिषः प्राप्तिः युक्त्याजागृति भाषणे ।
विहाराशनस्वप्नानि रतिः श्वासव्ययस्तथा ॥१५॥
एतैर्ना दीर्घजीवी स्यात् मङ्गलैरन्वितः क्षितौ ।
उपायं साधयेदस्मात् जन्माप्तौमानवः कृति ॥१६॥

भाषार्थः—सम्भाव से अधिक सुख की इच्छा करना, सुख तथा सुखके कार्य के लिये अधिक विचार में पड़ना अपने पोषण से भी अधिक धन पैदा करने की चिन्ता करना, प्रत्येक कार्य में अधिक अनुराग रखना, अन्याय द्वारा किसी को न सताना, न्याय से आशीर्वाद की प्राप्ति करना, तथा युक्ति से जगना, युक्ति से बोलना, विहार (रहन सहन) भोजन और शयन यह युक्ति से करना, भोग एवं श्वासों का व्यय भी

युक्ति पूर्वक करना, इन सव उपरोक्त वातों के होने से मनुष्य दीर्घ-जीवी हो सकता है तथा कल्याण प्राप्त करता है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि जन्म प्राप्त करके उक्त उपायों का साधन करे ॥१३-१४-१५-१६॥

प्रजा संघ

प्रजानां प्रतिशतं स्या–देको धर्मोपदेशकः ।
एको वैद्यस्त्रयः प्रोक्ताः शिल्पविद्यविशारदाः ॥१७॥

दश रक्षकाः पञ्च भृत्याः चत्वारः पण्डिताः स्मृताः ।
कृषिकादि वणिजश्चत्वारिंशत्समीरिताः ॥१८॥

आवश्यकीय कार्यार्थं षट्त्रिंश त्सन्तु मानवाः ।
प्रजासंघ इति प्रोक्तो राज्यकल्याणसूचकः ॥१९॥

भाषार्थः—प्रजा के प्रति सैकड़े में एक धर्मोपदेशक, एक वैद्य. तीन शिल्पकार, दश रक्षक (क्षत्रिय सिपाई) पांच नौकर (सेवक, शूद्र) चार पण्डित (सर्वशास्त्रवेत्ता) चालीस कृषिकर्म करने वाले, वैश्य (गो सेवा और वाणिज्यादि कार्य करने वाले) और छत्तीस मनुष्य आवश्यकीय कार्य (खान खोदने वाले, धातु शोधक, वस्त्रादिकों में कार्य करने वाले) के लिये नियुक्त हो तो उसे प्रजासंघ कहते हैं तथा यह प्रजा संघ राज्य के कल्याण का सूचक है। अर्थात् जिस राजा के राज्य में प्रजा का समुदाय इस प्रकार संगठित है उसके राज्य में न तो शत्रु ही सहमा आक्रमण कर सकता है और न ऐसा राज्य किसी अन्य राजा के आश्रित हो सकता है न ऐसे राज्य में विधर्मियों का आक्रमण हो सकता है तथा स्वस्त्यादि नौ वातें सदा ऐसे ही राज्य में रहा करती हैं तथा इसी प्रकार के राज्य संघ की प्रशंसा होती है अतएव प्रजा संघ राज्य के कल्याण का सूचक कहा गया है ॥१७-१८-१९॥

पोषणान्तं च भूभोक्ता क्षत्रियः स्वोच्चभूपतेः ।
सैनिकं च बलं तस्य यद्देशे निवसत्यसौ ॥२०॥

यः पञ्चशत मुद्राणां भूमेरायस्तु वार्षिकः ।
एत्युच्चराज्यरक्षार्थं मश्वारूढं च रक्षयेत् ॥२१॥

एतत्क्रमानुसारेण सदाश्वारूढका मताः ।
विस्तारेण कला मध्ये प्रेक्ष्यमायेऽस्य वर्णनम् ॥२२॥

भाषार्थः—पोषण पर्यन्त भूमि की आमदनी से निर्वाह करने वाला वह क्षत्रिय अपने ऊपर के राजा की रक्षार्थ सैनिक बल है जिसके देश में यह सदा रहता है तथा जो क्षत्रिय भूमि की आमदनी में से ५००) पांच सौ रुपया वार्षिक प्राप्त करता है उसे अपने ऊपरी राज्य की रक्षा के लिये एक घुड़सवार रखना चाहिये इसी क्रम के अनुसार ही अर्थात् जिसकी जितनी आमदनी है उसे उक्त क्रमानुसार अश्वारूढ़ (सवार) रखने चाहिये । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन कला के मध्य आय संज्ञा में देखना चाहिये ॥२०-२१-२२।

सत्यत्रेता भूमिपालाः विनिलाभा भवन्ति हि ।
ईश्वराराधने लग्नाः श्रेष्ठाश्च दीर्घजीविनः ॥२३॥
नातिभोगेऽपि संलग्ना योगिनो दूरदर्शिनः ।
त्रिकालज्ञाश्च जायन्ते केचित्तेषु महीभुजः ॥२४॥

भाषार्थः—सत्ययुग और त्रेतायुग के राजा लोग निर्लोभी, ईश्वरोपासक, श्रेष्ठगुण वाले, दीर्घजीवी, अतिभोग में नहीं लगने वाले योगी और दूरदर्शी होते हैं उनमें कोई २ राजा त्रिकालज्ञ भी होते हैं ॥२३-२४॥

श्वासव्ययं नाशुतिकुर्यात् योगयुक्तो भवेदपि ।
येन स्यादायुषो वृद्धिः मुक्तिर्वा जगतो भवेत् ॥२५॥

भाषार्थः—मनुष्य को चाहिये कि श्वासों का शीघ्र व्यय न करे तथा योग (चित्त वृत्ति निरोध) योग्यता का साधन रक्खे जिससे आयु की वृद्धि हो तथा योग, सत्य, अहिंसा न्यायादि पालने से संसार में अक्षयसुखों की प्राप्ति हो ॥२७॥

प्रजास्वास्थ्यरक्षानिरूपणम्

एकादशः पाठः

स्वास्थ्यस्य परिरक्षार्थं कलाकौशलहेतवे ।
पंग्वंधविधवादीनां पोषणाय निरन्तरम् ॥१॥

पश्वादीनां चिकित्सार्थं निर्बाधकार्यहेतवे ।
करस्य दशमंभाग प्रदद्याद् भूमिनन्दनः ॥२॥

भावार्थः—स्वास्थ्य की रक्षा, कलाकौशल, पंगु, अंध, विधवादिकों का पोषण, पशुआदि की चिकित्सा और अनिवार्य कार्य इन सब के लिये राजा कर का दशमा भाग देवे ॥१-२॥

एषामेवहि निर्माणे दार्ढ्यं सम्यगुपेक्षते ।
वस्तूनि तानि भूपालः दृढानि परिकारयेत् ॥३॥

भावार्थः—जिन वस्तुओं के बनाने में दृढ़ता (मजबूती) की आवश्यकता है उन वस्तुओं को दृढ़ (मजबूत) बनावे ॥३॥

शिल्पस्य स्वास्थ्यलाभस्य दीनानां प्राणिनामपि ।
न्यायस्याऽप्यालयान् राजा, कुर्याद्राज्ये नवान्सुधीः ॥४॥

एतदर्थं त्विहायस्य राजकीयस्य सर्वथा ।
प्रदद्याद्दशमं भागं कार्याय सुहिताय च ॥५॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपनी राजकीय आमदनी में से दशवें भाग से शिल्प (कारीगरी) के स्थान, स्वास्थ्य लाभ

उठाने के स्थान (चिकित्सालय औषधालय, रसायनशाला, पशु चिकित्सादि, जलवायु शुद्धि, पुरस्वच्छता) दीन प्राणियों के हितार्थ स्थान (अन्ध, पंगु, अनाथवालक, विधवा स्त्री आदि अपने पोषण में असमर्थों के हितार्थ कार्य) अपने राज्य में स्थापित करे तथा न्यायालय, शुल्कादि मकान वनावे और वने हुवों की मरम्मत करावे इसी दशमें भाग में से हित कर आवश्यकीय कार्य के लिये भी लगावे॥४-५॥

साहाय्यार्थन्तु वैद्यानां तथा शिल्पादि हेतवे ।
द्रव्यं दद्यान्महीनाथ स्तथा कुर्याज्जलाशयान् ॥६॥

भाषार्थः—कलाकौशल आदि शिल्प विद्या के प्रचार के लिये तथा वैद्यों की सहायता के लिये तथा प्रजा की आवश्यकता अनुसार जलाशयों का निर्माण करना वा वने हुवों की मरम्मत वा सफाई आदि करना और योग्य शिल्पकार तथा वैद्य स्थापित करना और इसी तरह इन सव की देखभाल रखना ये राजाओं का परमधर्म है ॥६॥

निर्माणजीर्ण भागस्य प्रकुर्याचापिशोधनम् ।
सेतून् मार्गेषु कुर्वीत तथा तान्प्रविलोकयेत् ॥७॥

भाषार्थः—निर्माण (वने हुए स्थानों) के जीर्ण (पुराने, कमजोर, फटे टूटे, भागों का शोधन करावे अर्थात् उक्त प्रकार के स्थानों को उतरवा दे या नया वनवादे । मार्गों में (जहां आवश्यकता हो) सेतु (पुल, पक्के रास्ते) वनवावे तथा समय २ पर उनको देखता रहे ॥७॥

मार्गेपतनशीलानां भागानां परि शोधनम् ।
शिल्पाध्यक्षः प्रकुर्वीत सम्यक् तान्प्रविलोक्य च ॥८॥

भाषार्थः—मार्ग में गिरने योग्य (पर्वतादि के झुके हुए खण्ड) भागों को भलीभांति देखकर शिल्पाध्यक्ष उन्हें ठीक करे ॥८॥

पत्तनेष्वथ ग्रामेषु त्यागार्थं मलमूत्रयोः ।
अप्सुकानि च खातानि प्रकुर्याच्छिल्पपण्डितः ॥९॥

नवीनानां विनिर्माणं प्राचीनानां प्रपूरणम् ।
विशोधनं च कुर्वीत प्रतिसप्ताह मेव सः ॥१०॥

भापार्थः—ग्राम और नगरों में मलमूत्र (पाखाना, पेशाब) त्याग ने के लिये शिल्पशास्त्र का पण्डित ढालदार खात (गड्ढे) बनवावे तथा प्रत्येक सप्ताह में पुराने गड्ढों को नई धूलि से भरदे और उनके स्थान पर नये बनवाले एवं उनकी शुद्धि करे । अर्थात् दुर्गंध युक्त धूली खेतों में डाल देनी चाहिये जिससे खेतों में खात का काम दे और ग्राम नगरों में दुर्गन्ध से रोग पैदा न हों ॥ ॥९-१०॥

वस्त्रसंशोधनस्थानात् स्नानस्थानं पृथक् भवेत् ।
एवं पानीयपानीयात् संसर्गः स्यान्न कर्हिचित् ॥११॥

भापार्थः—कपड़े धोने की जगह से स्नान करने का स्थान पृथक् होना चाहिये तथा पीने के पानी से कपड़े धोने वाले तथा स्नान करने के स्थान से पीने के पानी से संसर्ग (छींटे आदि लगने से) न हो सके ॥११॥

भेषजेषु च खाद्येषु संयोगः स्यान्न वैकृतः ।
विशुद्धभाजनानि स्युः शुद्धधातुमयानि च ॥१२॥

भापार्थः—औपधि तथा भोजन के द्रव्यों में किसी प्रकार का विकृत (खराब) मेल नहीं होना चाहिये तथा भोजन के पात्र शुद्ध और शुद्ध धातु से बने होने चाहिये । यह उपदेश प्रजा के नैरोग्यार्थ है ॥१२॥

फलादिखाद्यद्रव्याणां स्वच्छतां च विलोकयेत् ।
मृतजीवोच्छेदनार्थं स्थानं स्याद्वसतेः पृथक् ॥१३॥

भाषार्थः—फल शाक मिठाई आदि खाने के द्रव्यों की स्वच्छता देखते रहना चाहिये अर्थात् यह देखना चाहिये कि कोई वस्तु सड़ी गली दुर्गन्ध युक्त तो नहीं है यदि हो तो उसे पृथक् करा देनी चाहिये। मरे हुए जानवरों को काटने के लिये अर्थात् उनका चमड़ा निकालने के लिये प्रजा के रहने के स्थानों से पृथक् होना चाहिये ॥१३॥
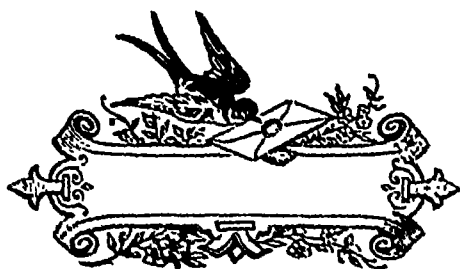
राज्यस्थैर्यार्थ विविधक्रिया प्रकार

धर्मोपदेश निरूपणम्

द्वादशः पाठः

प्रजानां परिशिक्षार्थं सर्वत्र निजशासने ।
स्थापनं पाठशालानां कुर्यात् साहाय्य मेव वा ॥१॥

धार्मिकस्योपदेशस्य प्रचाराय महीपतिः ।
धर्मोपदेशकान् विज्ञान् योजयेदपि सर्वशः ॥२॥

यथासाध्यं प्रजानाञ्च दुःखानि विनिवारयेत् ।
राजधर्मोऽयमाख्यातो राज्यमङ्गलकारणम् ॥३॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रजा की शिक्षा के लिये पाठशालाओं की स्थापना तथा उनकी सहायता करे और धार्मिक उपदेश के प्रचार के लिये पण्डित धर्मोपदेशकों को नियुक्त करे, जहां तक हो सके प्रजा के दुःखों को निवारण करता रहे यह ही राज्य के कल्याण के लिये राजा का धर्म कहा गया है ॥१-२-३॥

यत्रप्रजाः दूरदेशेतत्र धर्मोपदेशकान् ।
सर्वथा शिक्षणार्थन्तु भूपतिर्विनियोजयेत् ॥४॥

नैतेन शत्रुतामेत्य विधर्मं प्राप्य वा क्वचित् ।
समाक्रामति स्वं राज्यं दृढश्चास्मात्प्रजायते ॥५॥

भावार्थः—दूर देशों में जहां २ मनुष्य समुदाय रहता हो वहां पर सब प्रकार की शिक्षा देने वाले धर्मोपदेशकों को प्राचीन राजा भेजा करें। इससे वह समुदायाय अन्यान्य मत ग्रहण करके शत्रुता नहीं कर सकता अतः राज्य पर आक्रमण भी नहीं होता तथा प्राचीन राज्य दृढ़ता प्राप्त करता है अर्थात् राज्य में उपदेशकों द्वारा शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध हो जाने से राज्य की उन्नति होती है प्रजा अपने राजा की कृतज्ञ तथा भक्त बनी रहती है अतएव राज्य दृढ़ होता है और प्राचीन राजाओं का पुण्य प्रताप बढ़ता है और सब जनसमूह पर उनका सदा प्रभाव बना रहता है ये प्राचीन राजाओं की स्थिति है ॥४५॥

विज्ञाननेकशास्त्राणां पंडितानुपदेशकान् ।
योजयेत्सत्प्रचारार्थं सत्कारैस्तांश्च तोषयेत् ॥६॥

भावार्थः—अनेक शास्त्रों के ज्ञाता पण्डितों को धर्म प्रचार के लिये नियुक्त करे तथा उन्हें यथायोग्य सत्कारों से सन्तुष्ट करे ॥६॥

सम्यक्तु संयमत्वस्य व्यायामश्रमयोरपि ।
स्वदेहपरिरक्षार्थ-मभ्यासस्यास्त्रशस्त्रयोः ॥७॥
सर्वेभ्योऽत्राधिकारोऽयं मनुष्येभ्योऽभि विद्यते ।
प्रतिबन्धो महीपस्य नास्मि न्स्याद्विषये क्वचित् ॥८॥

भावार्थः—जितेंद्रियत्व (इन्द्रियों को वश में करना) व्यायाम और परिश्रम का तथा अपनी देह की रक्षा करने के निमित्त अस्त्र तथा शस्त्रों के अभ्यास का सम्पूर्ण मनुष्यों को अधिकार है इस विषय में राजा का कोई प्रतिबन्ध (रोक) नहीं होना चाहिये ॥७-८॥

पुष्टे वपुषि तारुण्ये विवाहस्य निरन्तरम् ।
अधिकारो मनुष्याय दुर्बले न कदाचन ॥९॥

भावार्थः—शरीर पुष्ट होने पर तथा तरुण (जवान) अवस्था में मनुष्य को विवाह करने का अधिकार है शरीर अपुष्ट होने पर नहीं ॥९॥

संशुद्धधारणाश्चापि सदाचारंनिरन्तरम् ।
शिक्षयेत्स्वप्रजाभ्योवा जगतोहितवै नृपः ॥१०॥

राजविद्योपदेशस्य क्षत्रियेभ्यः सदा भवेत् ।
प्रारम्भशिक्षणन्तेन राजन्यानान्तु मंगलम् ॥११॥

भापार्थः—संसार के हित के लिये राजा शुद्ध धारणा तथा सदाचार अपनी प्रजा और अपनी संतति को सिखावे। राजविद्या के उपदेश की प्रारम्भ शिक्षा क्षत्रियों को मिलनी चाहिये इससे क्षत्रियों की सदा स्थिति और मान प्रतिष्ठा आदि बढ़ती रहती हैं ॥१०-११॥

प्राचीनभूपा ह्यविलोक्यदोषान्
　　परस्परं नम्रतयैवकार्ये ।
कुर्युश्च दार्ढ्येन सुधर्मयुक्ते
　　सहायता न्न्यायमथापि रक्षाम् ॥१२॥

भापार्थः—प्राचीन राजा परस्पर के दोषों को न देखकर विनय भाव के साथ धर्मयुक्त कार्यों में सहायता सब प्रकार से देते रहें और दृढ़ता के साथ न्याय और रक्षा का पालन करें यहीउन की सदा स्थितिहै ॥१२॥
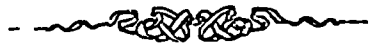
अन्यनृपैः सह व्यवहारनिरूपणम्

त्रयोदशः पाठः

स्वराज्यस्यान्यराज्यानां चारैर्वृत्तं निरन्तरम् ।
जानीयात् तु सदा भूपः तैः प्रीतिः स्यान्निरन्तरम् ॥१॥
अन्यैर्भूपतिभिः सार्द्धं कुर्यात्कार्याणि भूपतिः ।
प्रेम्णा न्यायेन धर्मेण शुद्धभावोद्गमेन च ॥२॥
प्राचीनान्युपयोगीनि वस्तूनि रक्षयेन्नृपः ।
जगतो हेतवे कुर्यात् सम्मतिश्च परस्परम् ॥३॥

भावार्थः—अपने राज्य तथा अन्य राजाओं के राज्य का वृत्तान्त गुप्तदूतों द्वारा राजा जानता रहे तथा उनके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार रक्खे । अन्य राजाओं के साथ राजा प्रेम, न्याय, धर्म और शुद्ध भाव पूर्वक कार्य करे प्राचीन समय की उपयोग में आने वाली तथा स्वाभाविक वस्तुओं की राजा रक्षा, देखभाल और सुधार करे तथा संसार के हित के लिये आपस में सम्मति भी प्राप्त किया करे ॥१-२-३॥

प्रत्युपकारलग्नः स्यात् दीनानां गोश्च रक्षणम् ।
सकार्यायास्त्वविद्याया विनाशाय हरिं भजेत् ॥४॥
येन नो वैमनस्यं स्यादेतत्कार्यं समाचरेत् ।
धार्मिकेषु च कार्येषु प्रीतिं कुर्यात्सहायताम् ॥५॥
नाधर्माचरणं कुर्यात् स्वस्यमङ्गलहेतवे ।
स्वस्यैव बलवुद्ध्योश्च भेदं नत्र प्रकाशयेत् ॥६॥

देवर्षिमनुजानां च रुन्ध्यान्नैव महीपतिः ।
जलाकाशमहीनागलोकानां सुपथान् क्वचित् ॥७॥

अन्यराज्यप्रजाभिश्च वाणिज्यं नावरोधयेत् ।
सहायतां न कुर्वीत अन्यराज्यापराधिनः ॥८॥

यत्रत्योयोऽपराधी स्यात् तन्तत्रैव तु प्रेषयेत् ।
अन्यभूपतिभिः सार्द्धं युद्धं संजायतेऽन्यथा ॥९॥

भावार्थः—प्रत्युपकार में लगा रहना तथा दीन और गौओं की रक्षा करना चाहिये । अविद्या उत्पन्न होने के कारणों के साथ २ वर्तमान अविद्या का विनाश करने के निमित्त भगवान् का चिन्तन करना चाहिये । जिससे आपस मे द्वेष पैदा न हो ऐसे कामों को करना चाहिये धर्म कार्यों में परस्पर (आपस) की सहायता तन, मन, और धन से करनी चाहिये अपनी बल बुद्धि के भेद को दूसरों में प्रकाश न करे और अपने कल्याण के निमित्त अधर्म का आचरण कभी न करे । देवर्षि और मनुष्यों के मार्ग को न रोके । जल, आकाश, पृथ्वी, और नाग (पाताल) लोक के मार्गों को कभी न रोके । अन्यराज्य की प्रजा के साथ वणिज्य (व्योपार) को भी राजा न रोके । अन्य राज्य के अपराधी की राजा सहायता कभी न करे किन्तु जहां का जो अपराधी हो उसे मांगने पर उसी स्थान पर भेजदे । अन्यथा अन्य राजाओं के साथ युद्ध की सम्भावना रहा करती है ॥४-५-६-७-८-९॥

संग्रामे सन्धिप्रस्तावः यदा स्या न्निश्चितस्तदा ।
रात्रौ वासैन्य प्रस्थाने सावधानो भवेन्नृपः ॥१०॥

यावत्तूभयपक्षस्य सेना स्वं स्वं च मण्डलम् ।
संप्राप्नुयादतस्तावत् सन्धिःस्यात्सुखशान्तिदा॥११॥

विधर्मी दुष्टभूपालो धार्मिकं सज्जनं नृपम् ।
आक्रमेत्तु तदायोग्यं संयशात्कृत्यावरोधनम् ॥१२॥

पश्चात्तस्य सर्वनाशं कुर्याच्च धार्मिकोनृपः ।
तद्राज्ये शासकं योग्यं धार्मिकं विनियोजयेत् ॥१३॥

भावार्थः—यदि संग्राम के मध्य में सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित हो जाय तो राजा को विशेषकर रात्रि और सेना के प्रस्थान के समय में सावधान हो जाना चाहिये। यह सावधानी तबतक रखनी चाहिये जबतक दोनों पक्षों की सेना अपने २ राज्य मण्डल में पहुंच जाय । क्योंकि सन्धि दोनों दलों की प्रजा में सुख और शान्ति करती है। यदि विधर्मी दुष्ट राजा सज्जन धार्मिक राजा पर आक्रमण करे उस समय धार्मिक राजा को चाहिये प्रथम तो अपनी संयुक्त शक्तिद्वारा उसे रोकदे फिर उस अधर्मी का उसी संघ शक्ति द्वारा सर्वथा नाश करदे और उस के राज्य में धार्मिक शासक को नियुक्त करदे ॥१०-११-१२-१३॥

प्रजाहितार्थ नृपतिमानधननिरूपणम्

चतुर्दशः पाठः

वीराणां सुभटानाञ्च पण्डितानाञ्च नित्यशः।
परोपकारलग्नानां जनानां गुणिनामपि ॥१॥

सत्कारार्थं भवेद् द्रव्यं भूपतेर्मानमेव च ।
दीनप्रजाप्ररक्षार्थं कार्याय धार्मिकाय च ॥२॥

प्रजाहितविधाने वा परार्थसाधने तथा ।
द्रव्यलोभन्न कुर्वीत भूमिपालः कदाचन ॥३॥

जनानां मानयोग्यानां कुर्यात् मानं यथोचितम् ।
मानं द्रव्यं वृद्धिमेति तदा तस्य महीतले ॥४॥

भाषार्थः—वीर, सुभट (योधा) पण्डित, परोपकारी और गुणी मनुष्यों के सत्कार के लिये राजा का धन तथा मान होना चाहिये । तथा दीन प्रजा की रक्षा (पालना) के लिये, धार्मिक कार्य के लिये, प्रजा हित के लिये और उपयोगी विषयों (कार्यों) के लिये राजा धन का लोभ कभी न करे। इसी प्रकार राजा को चाहिये कि मान के योग्य मनुष्यों का यथोचित मान करे तब उस राजा का मान और धन वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१-२-३-४॥

कश्चिद्भवेदुच्चपदाधिकारी
तस्मै ह्युपालम्भमपि क्षितीशः ।
दुर्वाक्यमेवं रहसि प्रदद्यात्
नो वा कदाचिज्जनतासमक्षे ॥५॥

मानयोग्यमनुष्याय दद्याद् मानं महीपतिः ।
इष्टाद् भ्रष्टोऽन्यथा स स्यादुपायस्त्विष्टधारणा ॥६॥

भाषार्थः—जो कोई उच्चपदाधिकारी हो उसे यदि राजा उपालम्भ (ओलमा) या खोटे वचन कहे तो उससे एकान्त में ही कहै जनता के सामने कभी नहीं तथा जो मनुष्य मान प्राप्त करने योग्य हो उसे मान दे अन्यथा (मानपात्र को मान न देने से) राजा अपने इष्ट से भ्रष्ट हो जाता है इसका उपाय यह है कि अपने इष्ट को धारण करे अर्थात् इष्ट में दृढ़ता धारण करे ॥५-६॥

त्यक्त्वा हानिन्तथाऽऽपत्तिं सत्यभाषी भवेन्नरः ।
धर्मेण पालयेन्नित्यं प्रतिज्ञामुत्तमश्च सः ॥७॥

भाषार्थः—मनुष्य महान् हानि और आपत्ति काल को छोड़ कर सत्य भाषण किया करे तथा धर्म पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा का पालन करे क्योंकि ऐसे मनुष्य की उत्तम श्रेणी में गणना है ॥७-८॥

सारल्यं निर्भयत्वञ्च कार्येषु धार्मिकेष्वपि ।
भोजनादतिरिक्तन्तु दया जीवेषु युज्यते ॥९॥

भाषार्थः—सरलता, धार्मिक कार्यों में निर्भयता और भोजन करने से इतर प्राणियों पर दया करनी चाहिये । अर्थात् भोजन मात्र के लिये तो यहां पर प्राणियों का वध कहा गया है इससे इतर नहीं ॥९॥

सुपात्रदान उत्साहः सत्यं वीरत्वमेव च ।
धैर्य स्याद् दुष्कृतत्यागः स्वार्थद्रोहविवर्जनम् ॥१०॥

नैर्लज्ज्यस्य परित्यागः कौटिल्यस्य विवर्जनम् ।
परिश्रमेण कार्याणां सदा संसाधनं हितम् ॥११॥

भाषार्थः—सुपात्र मनुष्य को दान देने में उत्साह रखना, सत्य बोलना, वीरता रखनी, धैर्य रखना, खोटे काम का त्याग करना, स्वार्थ और वैरभाव छोड़ना, निर्लज्जता और कुटिलता का त्याग करना तथा परिश्रम पूर्वक कार्यों को सिद्ध करना, ये सब मनुष्य के लिये हितकर हैं ॥१०-११॥

न्याय संरक्षणेज्ञाने योगे श्रद्धासमन्वितः।
स्वदेशस्यापि सेवायां संलग्नः स्यान्महीपतिः ॥१२॥

भाषार्थः—न्याय, रक्षा, ज्ञान, योग में और अपने देश की सेवा में राजा श्रद्धा पूर्वकलगा रहे ॥१२॥

निर्दोषं ताडयेन्नैव राज्ये राजा कदाचन।
चातुर्यं प्राप्नुयाद्वापि सज्जनेभ्यो निरन्तरम् ॥१३॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि राज्य में रहने वाले निर्दोष मनुष्यों को दण्ड न दे तथा सज्जनों से चतुरता निरन्तर सीखता रहे ॥१३॥

स्वमानस्य प्रभुत्वस्य कुर्याद्रक्षां निरन्तरम्।
नातिमानी ह्यमानी वा प्रोच्चभूपस्य लक्षणम् ॥१४॥

भाषार्थः—अपने मान और स्वामिभाव की सदा रक्षा करता रहे न तो अधिक मानी हो और न सर्वथा अमानी (मान के विना) होना चाहिये यह उच्च राजा के लक्षण हैं ॥१४॥

विवाहे क्षत्रियः कुर्यात् प्रजाबान्धवसंमुखे।
प्रतिज्ञां धर्मभावेन न्यायरक्षणयोस्तदा ॥१५॥

न्यायेनासिबलेनापि प्रजाबान्धवपोषणम्।
सर्वथाऽहं करिष्यामि साक्षी भूतोऽत्रमे विभुः ॥१६॥

भाषार्थः—क्षत्रिय को चाहिये कि विवाह के समय प्रजा और बांधवों के सन्मुख धार्मिकभाव से न्याय और रक्षा करने की इस प्रकार प्रतिज्ञा करे कि न्याय से तथा अपनी तलवार के बल से अपनी प्रजा तथा बान्धवों का सब प्रकार से मान पूर्वक पोषण करता रहूंगा इस मेरी प्रतिज्ञा का साक्षी परमात्मा है ॥१५-१६॥
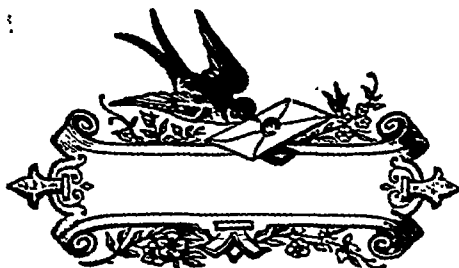
सुमतिप्राप्त्यर्थं पुण्यधर्मप्रकाराश्च निरूपणम्

पञ्चदशः पाठः

मानवानां बुद्धिमध्ये प्रकाशः परमात्मनः।
तेन मायाऽपि संयुक्ता सर्वथा पृथिवीतले ॥१॥
सुकृतं दुष्कृतं पुण्यं धर्मं वा जगदीश्वरः ।
विलोकयन्ति, त्वा भूपो-निर्दयी स्यान्निरर्थकः ॥२॥
परार्थलग्नो दानी स्या-दतः संसारहेतवे ।
तदा भूमौ यशः सौख्यं स्वर्गं चापिमहीपते ॥३॥

भाषार्थः—मनुष्यों की बुद्धि में परमात्मा का प्रकाश रहा करता है उसी प्रकाश से भूलोक में माया भी मिली रहती है। अर्थात् चराचर विश्व उसी माया से व्याप्त है। तथा सुकृत, दुष्कृत, पुण्य और धर्म इन सब बातों को परमात्मा देखा करता है। यदि राजा दया रहित हो तो उसे व्यर्थ समझना चाहिये। पर्मार्थी, दानी और संसार के हित में लगे हुए मनुष्य वा राजा इस संसार में यश, सुख और स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥१-२-३॥

अतितृष्णा महीलोके मिथ्या सम्प्रतिपादिता
अतितृष्णाकरो भूपो दुःखं प्राप्य विनश्यति ॥४॥

भाषार्थः—संसार में अत्यन्त तृष्णा (चाहना) मिथ्या (झूंठी) कही गई है जो राजा अधिक तृष्णा करने वाला है वह दुःखों को प्राप्त करके विनाश को प्राप्त हो जाता है ॥४॥

संयमं परमार्थं च सभ्यताम्मनसाऽऽप्नुयात् ।
प्रजाभ्यो दारुणं दण्डं दद्यान्नैव महीपतिः ॥५॥

प्रजावृत्तपरिज्ञानं महद्बलमुदीरितम् ।
बुभुक्षितजनान्राजा योग्यकार्ये नियोजयेत् ॥६॥

येन सन्ततियुक्तानां तेषां रक्षा भवेत्क्षितौ ।
पापादपि विनिर्मुक्तिः स्यात्स धर्मः समीरितः ॥७॥

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि संयम (अपनी इन्द्रियों को वश में रखना) परमार्थ दूसरों का हित और सभ्यता को अपने मन से प्राप्त करे तथा प्रजा के लिये अति कठिन दण्ड न दे । एवं प्रजा के वृत्तान्त को जान लेना यह बड़ा भारी बल कहा गया है । प्रजा में जो भूखे रहने वाले आदमी हों उन्हें राजा उनके योग्य कार्य पर नियुक्त करे जिससे उनकी तथा उनकी सन्तान की संसार में रक्षा और पाप से मुक्ति (छुटकारा) हो यही धर्म कहा गया है ॥५-६-७॥

क्षत्रियो राजविद्यायाः शिक्षां सम्प्राप्य सर्वथा ।
आस्तिकत्वन्तथैवेत्य प्राप्नोति विजयं यशः ॥८॥

भाषार्थः—क्षत्रिय इस संसार में श्रीराजविद्या की शिक्षा प्राप्त करके तथा आस्तिकता (परमात्मा में श्रद्धा) रख कर ही विजय और कीर्ति को प्राप्त करता है ॥८॥

विभिन्नेन प्रकारेण तपसाऽऽराधनेन च ।
श्रेष्ठा विशुद्धा बुद्धिः स्यात् स्वस्त्यादिनवकं तथा ॥९॥

भाषार्थः—भिन्न २ प्रकार से तप और परमात्मा की आराधना करने से मनुष्यों की बुद्धि उत्तम और विशुद्ध हो जाती है तथा उस विशुद्ध बुद्धि से संसार में स्वस्त्यादि नौ बातें होती हैं ॥९॥

दानिनां ग्रहणे नैव वयोयाति विहीनताम् ।
वीर्यदुरुपयोगेन वयो याति क्षयं ध्रुवम् ॥१०॥

कारणन्तु वयोवृद्धेः न्यायधर्मावलम्बनम् ।
सर्वथाऽत्र महीलोके कीर्तिसम्पत्तिदायकम् ॥११॥

भाषार्थः—जोकि मनुष्य न्याय तथा दान करने वाले हैं उनकी आयु ग्रहण पड़ने पर क्षीण नहीं होती तथा जो वीर्य का दुरुपयोग (अति सम्भोग मिथ्या संभोग आदि) करने से आयु क्षीण होती है तथा न्याय और धर्म का अवलम्बन करना आयु को बढ़ाने का कारण कहा गया है और यह ही सब संसार में कीर्ति तथा सम्पत्ति को देने वाला है ॥१०-११॥

राज्य-सौख्य-सुविधा-प्राप्त्यर्थम्

षोडशः पाठः

परार्थलग्नाः विश्वस्ताः कुलीनाः सत्यभाषिणः ।
धर्मात्मानोऽनुभविनः स्वामिनःशुभचिन्तकाः ॥१॥
कार्यज्ञाः मन्त्रिणः सन्तु राज्यंकर्तुं सदा क्षमाः ।
न स्वयं केवलो भूपो राज्यभारं समुद्वहेत् ॥२॥

भाषार्थः—परमार्थ में लगे हुए, विश्वास पात्र, कुलीन, सत्य बोलने वाले, धर्मात्मा, कार्य को समझने वाले, और अनुभवी और स्वामि का शुभचिन्तक ऐसे मन्त्री उत्तम रीति से राज्य का काम कर सकते हैं अर्थात् ऐसे मन्त्रियों पर ही राज्य का भार सोंपना चाहिये। एवम् अकेला राजा ही सम्पूर्ण राज्य के शासन करने का भार अपने ऊपर न ले ।

उचितेषु च कार्येषु ग्रहीयात्संमतिं शुभाम् ।
सम्मतेश्च प्रदातॄणां मानवानान्निरन्तरम् ॥३॥
प्रजानिश्चितसभ्यास्तु कार्यं साधारणं सदा ।
प्रकुर्वन्तु, तदा राज्ये शान्तिः सञ्जायतेऽनिशम् ॥४॥

भाषार्थः—उचित कार्यों मे राजा सम्मति देने वाली प्रजा की शुभ सम्मति को प्राप्त करे। प्रजा के साधारण कार्यों को प्रजा द्वारा निश्चित किये हुये सभासद (पञ्च) कियाकरें तव राज्य में शान्ति स्थापित रहा करती है ।

प्रजानां येन कार्येण शुद्धभावोविनश्यति ।
हस्ताक्षेपं प्रकुर्वीत चान्यथादुःखकारणम् ॥५॥

भाषार्थः—जिस काम से प्रजा की शुद्ध भावना (शुद्ध धारणा) विगड़ती हो उसकाम में राजा को हस्ताक्षेप करना चाहिये । यदि ऐसा न करे तो राजा तथा प्रजा दोनों के लिये दुःख का कारण है ॥५॥

वृद्धान्वानुभवैर्युक्तान् मन्त्रिणश्च पुरातनान् ।
राज्यगुह्य परिज्ञातृन् तिरस्कुर्यान्न कर्हिचित् ॥६॥
पृथक् प्रदान्नापि कुर्यात् कुर्यादात्मीयमेववा ।
दोषयुक्तान् सदा भृत्यान् कुर्याद् भृत्यान्पृथक् नृपः॥७॥
पुनर्न तान्राज्यकार्ये योजयेत्पृथिवीपतिः ।
यावदाचरणन्तेषां विशुद्धन्नैव जायते ॥८॥

भाषार्थः—वृद्ध, अनुभवी, पुराने मन्त्री, राज्य की गुप्त बातों को जानने वालों का तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिये तथा उनको नौकरी से अलग भी नहीं करना चाहिये किन्तु उन्हें अपना बनाले। जो नोकर दोषी हों उन्हें राजा नोकरी से अलग करदे तथा जबतक उनका दोष निकल न जाय और आचरण शुद्ध न होयतब तक उन्हें राज्य के कार्य में न लगावे ॥६-७-८॥

यादृशी योग्यता यस्य तस्मै कार्यञ्च तादृशम् ।
दद्यादुचितकार्ये तु कर्तुर्भवति योग्यता ॥९॥

भाषार्थः—जिस कर्मचारी की जैसी योग्यता हो उस के लिये वैसाही काम सोंपना चाहिये और उचित काम करने पर करने वाले की योग्यता समझनी चाहिये ॥९॥

अभावे राजविद्यायाः क्षत्रियाणां महीभुजाम् ।
अपूर्णा जायते लोके विचारशक्तिशृङ्खला ॥१०॥
मिथ्यावादी छली स्वार्थी सुयोग्यश्च हितैषिकः ।
नृपसम्मेलनस्यैते साधनं नाशयन्त्यपि ॥११॥

अतो भूमिपतिर्योग्यः सर्वैः साकञ्च संमिलेत् ।
हितं संजायते तस्य न वा नाशोऽभिजायते ॥१२॥

भाषार्थः—श्री राज विद्या के ज्ञान के विना क्षत्रियों, तथा राजाओं की विचार शक्ति अपूर्ण (अधूरी) रहजाया करती है ऐसे समय में झूठ बोलने वाले कपटी स्वार्थी, सुयोग्य तथा हितैषी मनुष्य ये राजा से मिलने तक के साधनों को नष्ट कर देते हैं। क्योंकि कहीं सज्जनों की संगति और सम्मति पाकर राजा अपने भावों को वदल कर हम दुष्टों का शत्रु न वन जाय। इसलिये योग्य राजा को चाहिये कि अपनी इच्छानुसार भवों के साथ मिलता रहै इस से उस राजा का हित होता है। नहीं तो दुष्टों के फन्दे में रहने से उस राजा का नाश हो जाता है ॥१०-११-१२॥

बुद्धिमतां परीक्षा (बुद्धिमानों की परीक्षा)

स्वच्छता वापि नैरोग्यं दीर्घजीवनसाधनम् ।
वाग्वायुवेषभोज्यानां शुद्धानां ज्ञानमेव वा ॥१३॥
द्वेषालस्यविराहित्यं शस्त्रास्त्राभ्याससाधनम् ।
वीरवेषोयशः प्राप्तिः बन्धुप्रीत्यवलम्बनम् ॥१४॥
राज्यलोकेशभीतित्वं सदाचारावलम्बनम् ।
संयमित्वोपकारित्वे कामक्रोधादि वश्यता ॥१५॥
लोभेनापिच राहित्यं सत्यन्यायावधारणम् ।
धर्मपौरुषयुक्तत्वंमुत्साहस्यावलम्बनम् ॥१६॥
दुष्टं विहाय सत्यं स्यात् दयाऽहिंसावलम्बनम् ।
सत्संगत्वं च स्वाधैन्यं स्वामिनः शुभचिन्तनम् ॥१७॥
समयस्य सदा वुद्ध्या शुद्धकार्ये नियोजनम् ।
लज्जा धैर्यक्षमावत्वं विद्याप्रेमावलम्बनम् ॥१८॥

भूचक्र गणितज्ञानं गुणाः पुंसु समीरिताः ।
गुणानेतान्परीक्षायां भूपतिः प्रविलोकयेत् ॥१९॥

भावार्थः—शारीरिक स्वच्छता, नीरोगता, दीर्घजीवन का साधन करना, वाणी, वायु, वेष और भोजन इनकी शुद्धता का ज्ञान होना, द्वेष और आलस्य न रखना, अस्त्र तथा शस्त्रों के अभ्यास का साधन करना, वीरवेश रखना, यश को प्राप्त करना, अपनी मातृभूमि बन्धु और जनता से प्रीति रखना, राज्य, लोक और ईश्वर से भय रखना, सदाचार का अवलम्बन करना, इन्द्रियों को वश में रखना, उपकारी होना, काम, क्रोध और लोभ आदि को वश में रखना, सत्य और न्याय का ग्रहण करना, धर्म तथा पौरुषवान् होना उत्साह का अवलम्बन करना, दुष्ट के सिवाय सब जगह सत्य बोलना, दया और अहिंसा का ग्रहण करना, सत्संग और स्वाधीनता रखना, अपने स्वामी का शुभचिन्तक होना, बुद्धि पूर्वक समय को शुद्ध कार्य में लगाना, लज्जा, धैर्य और क्षमावान् होना, विद्या प्राप्त करने में प्रेम रखना, भूगोल और गणित इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना, ये सम्पूर्ण गुण बुद्धिमान् मनुष्यों के कहे गये हैं इसलिये राजा गुणियों की परीक्षा करते समय इन गुणों को देखे ॥१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९॥

उत्साह प्राप्त्यर्थं दानपारितोषिक निरूपणम्

सप्तदशः पाठः

नाति व्ययी नातिलोभी मनुष्यो भूतले भवेत् ।
प्रबन्धेन सदौदार्यं मानसे धारयेत्सदा ॥१॥

सुपात्रदान उत्साहो भूपाय गौरवप्रदः ।
प्रजाकार्याणि जायन्ते भूपतेः स्यात्सुमङ्गलम् ॥२॥

भाषार्थः—मनुष्य को न तो अधिक खर्च करने वाला न अधिक लोभी होना चाहिये किन्तु प्रवन्ध पूर्वक भली भांति उदारता मन में रखनी चाहिये । सुपात्र के लिये दान में उत्साह रखने से राजा का गौरव वढ़ता है तथा ऐसा करने से प्रजा के कार्य सिद्ध होते हैं तथा राजा का कल्याण होता है ॥१-२॥

धनस्य स्यात् पुरस्कारो मानस्य दानमेव हि ।
समानस्तु पुरस्कारो भूमेर्दानन्निगद्यते ॥३॥

केवलं दानमेवात्र द्रव्यदानं प्रजायते ।
वस्त्रादीनाञ्च यद्दानं दानं साधारणं स्मृतम् ॥४॥

भाषार्थः—पुरस्कार (इनाम) देना यह धन रुपये का वा मान का दान कहा गया है उसमें मान के साथ पुरस्कार देना भूमिका दान कहागया है । साधारण दान गरीबों के लिये धन का किया जाता है तथा वस्त्रादि शरीर के काम में आने वाली वस्तुओं का दान साधारण कहा गया है ॥३-४॥

विशेषकार्येषु महीप्रदानात्
प्रशस्यते राज्यमुपैति दार्ढ्यम् ।
मानं बलं स्यादिह बाहुजानाम्
कुपात्रदानेन दरिद्रतैव ॥५॥

द्रव्यं सदुपदेशार्थं पुण्यस्थानाय दीयते ।
दाताभवेद्धनस्वामी देवत्वं यातु वा दिवि ॥६॥

भाषार्थः—विशेष कार्यों पर (विशेष अवसर पर) भूमि प्रदान करने से राजा के राज्य की प्रसंशा होती है तथा राज्य दृढ़ता प्राप्त करता है। अर्थात् इस प्रकार भूमिदान करने से क्षत्रियों की सेना बल) बढ़ जाती है जिससे राज्य दृढ़ रहा करता है। क्षत्रियों का मान होना यही उन का बल है। अर्थात् इस बल से राज्य को दृढ़ रखने में क्षत्रिय समर्थ रहा करते हैं। तथा कुपात्र के लिये दान करने से दरिद्रता ही आती है। एवं जो धन अच्छे उपदेश और पवित्र स्थानों पर दिया जाता है उसका देने वाला हमेशा धन का स्वामी होता है तथा स्वर्गलोक में देवता बनता है ॥५-६॥

अतिलोभाभिलग्नत्वात् जायते धनसंक्षयः ।
दानेन वृद्धिमाप्नोति परलोके फलप्रदम् ॥७॥

भाषार्थः—अत्यन्त लोभ में लगने से धन का संक्षय (नाश) हो जाता है तथा दान से वह धन बढ़ता है तथा परलोक में फल को देने वाला भी होता है ॥७॥

यथा पौरुषसंलग्नः धनं प्राप्नोति सर्वदा ।
राजविद्यापरिज्ञाता महीमाप्नोति निश्चितम् ॥८॥

भाषार्थः—जिस प्रकार पौरुष (पुरुषार्थ) में लगा हुआ मनुष्य सर्वदा सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा राज्य विद्या के जानने वाले निश्चय पृथ्वी को प्राप्त कर लेता है ॥८॥

प्रजानां स्वस्य भर्तृणां मुत्साहं वर्द्धयेन्नृपः ।
उत्साहेन कार्याणि साध्यान्यपि भवन्ति हि ॥९॥

उत्साहेन विहीनस्तु जायते ह्यसमर्थताम् ।
दुष्टानान्तु समुत्साहं वर्द्धयेन्नैव भूपतिः ॥१०॥

तथा दुष्टसमुत्साहं मर्दयेच्छिन्नवाञ्छया ।
तदा वर्धयेत्तु राज्यस्य श्रियः सन्त्यन्यथा सदा ॥११॥

भावार्थ—प्रजा तथा अपने भृत्यों का सदा राजा उत्साह बढ़ाता रहे । उत्साह ही से बड़े २ भी कार्य सिद्ध हो जाते हैं । उत्साह से हीन मनुष्य असमर्थ हो जाता है । राजा को चाहिये कि दुष्टों के उत्साह को कभी न बढ़ावे किन्तु दुष्टों के उत्साह का मर्दन करता रहे तब राज्य लक्ष्मी प्राप्त करता है नहीं तो सदा आपत्तियां विद्यमान रहा करती हैं ॥९-१०-११॥

चार-प्रबन्ध-निरूपणम्

अष्टादशः पाठः

चारैर्वृत्तपरिज्ञानं प्रकुर्याद् भूपतिः सदा ।
सर्वदैतत् परिज्ञेयं भूपालाश्चारचक्षुषः ॥१॥

चारैरतो भूमिपालो जानीयात्सर्ववृत्तकम् ।
किञ्चित्कालं प्रजावृत्तं शृणुयात् नित्यशो नृपः ॥२॥

ग्रामेषु पत्तनेष्वेव रक्षाकरणपण्डितान् ।
धर्मन्यायसत्यसक्तान् योजयेत्पृथिवीपतिः ॥३॥

नियुक्तानां मानवानां विपरीता यदाऽऽकृतिः ।
भवेत् तान्दण्डयेत् भूपः प्रजा कल्याणहेतवे ॥४॥

एतदाचरणाभावे अधर्ममाचरन्ति ते ।
तस्मादेतानि कार्याणि भूपतिः प्रविलोकयेत् ॥५॥

भाषार्थः—चार (गुप्तदूतों) द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त को राजा जान ले क्योंकि राजा के चार (दूत) ही चक्षु बताये गये हैं इसलिये राजा को चारों से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानना चाहिये राजा को चाहिये कि नित्य प्रति प्रजा का वृत्तान्त कुछ समय अवश्य सुना करे । ग्राम (गांव) और नगरों में रक्षा करने में प्रवीण धर्म, न्याय और सत्य में लगे हुओं को नियुक्त करे और उन निश्चित किये हुए मनुष्यों की जब विपरीत आकृति (चेष्टा) हो तो प्रजा के कल्याण के निमित्त राजा उन्हें दण्ड दे यदि ऐसा न किया जाय तो वे लोग अधर्म का आचरण करते ही रहते हैं इसलिये इन सब कामों को राजा स्वयम् देखता रहे ॥१-२-३-४-५॥

राज्य कार्येषु कुशलै वृत्तं विद्यान्महीपतिः ।
संनिर्णीता नृपस्याज्ञा नियमत्वेन कथ्यते ॥६॥
भूपते र्नियमै राज्ये सुखवृद्धि र्भवेत्सदा ।
भूपतेस्तु नवीनाऽऽज्ञा प्रजासु स्यात्प्रकाशिता ॥७॥

भाषार्थः—जो मनुष्य राज्य का काम करने में कुशल हों उनसे भी राजा सव वृत्तान्तों को जानले । भलीभांति निर्णय की हुई राजा की आज्ञा को नियम कहते हैं, तथा उन नियमों के अनुसार राज्य में सदा सुख की वृद्धि होती है राजा को अपनी नवीन आज्ञा भी निकालते समय प्रजा में भलीभांति प्रकाशित कर देनी चाहिये ॥६-७॥

रक्षाकर्मपरायणो वलयुतो राज्यस्य संरक्षणे
विद्यायां कपटे छलेऽपि निपुण स्सचारवर्गः कृतिः ।
दक्षो भेदनये, विमूर्च्छनविधौ गन्धादिभिर्वा भवे
त्तत्रस्वामि शुभेच्छुकोऽस्तु कुशलो धूर्ताग्रजो निश्चितः ॥८॥

एवं राज्य प्ररक्षार्थं रक्षकाः सन्तु निश्चिताः ।
सच्चरित्रा कुलीनाश्च विश्वेशभयसंयुताः ॥९॥

भाषार्थः—राज्य की रक्षा के लिये, वलवान् रक्षा करने में कुशल,विद्या,कपट और छल में निपुण अर्थात् जो कि पढ़े लिखे नाना-रूप धारण कर सके। भेद नीति तथा गन्धादि (भोजन, धुआं, स्पर्श आदि) द्वारा जो बेहोश कर देने में कुशल हों अर्थात् शत्रु के मित्रों में भी भेद पैदा कर सकें और वेहोश करके उसे होश में भी लासके, स्वामि का हितचिन्तक, सव प्रकार से कुशल और धूर्तों में अग्रणी इस प्रकार गुप्त दूतों का समुदाय निश्चित रहना चाहिये। इसी प्रकार राज्य की रक्षा के लिये रक्षक (सिपाई) लोक भी सच्चरित्र (जिनका आचरण शुद्ध, लोकनिन्दा रहित हों) कुलीन और परमात्मा के भय से युक्त होने चाहिये ॥८-९॥

प्रजादुःख निवारणार्थ योग्यताप्राप्ति निरूपणम्

एकोनविंशः पाठः

धर्मविद्याङ्ग हीनाश्च निर्वीर्याः कुष्ठरोगिणः ।
अन्यायिनोऽरक्षकाश्च क्रूरकर्म रता अपि ॥१॥
राजविद्यापरिज्ञेभ्यः क्षत्रियेभ्यश्च येजनाः ।
भूविभाग मदातारो हर्त्तारः शासनाक्षमाः ॥२॥
राजविद्यामहत्तत्वं त्यजन्ति क्षत्रियाश्चये ।
तेषांजातेश्चहानिः स्यात् भूपतिर्नर्क मश्नुते ॥३॥

भाषार्थः—धर्म, विद्या और किसी अंग से हीन, वीरता रहित, कुष्ठ रोगी, रक्षा करने में असमर्थ, क्रूर कर्म में लगे हुए न्याय हीन और राजविद्या के पण्डित क्षत्रियों को भूमि का विभाग नहीं देने (तथा ऐसों की भूमि हरने वाले) वाले, शासन करने के योग्य नहीं है। तथा जो क्षत्रिय राजविद्या के महत्व को छोड़ देते हैं उनकी जाति की हानि हो जाती है और वहां का राजा नर्क भोगता है ॥१-२-३॥

शास्त्रेऽश्रद्धाश्च नैराश्यं भूमिपालः करोतियः ।
परिणामेविनाशं च नर्क संलभते तथा ॥४॥

भाषार्थः—जो राजा शास्त्रों में अश्रद्धा और निराशा धारण कर लेता है वह परिणाम में विनाश और नर्क प्राप्त करता है ॥४॥

वुद्धयाबलेनप्राप्तस्य राज्यस्यावीक्षणेन च ।
राजा नाशमवाप्नोति राज्य मन्याश्रयं भवेत् ॥५॥

भाषार्थः—बल तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त किए हुए राज्य को न सभालने से राजा नष्ट हो जाता है तथा राज्य दूसरों के हाथ में चला जाता है ॥५॥

शोक नैराश्य निन्दाश्च घूतं दुर्वचनन्तथा ।
स्त्री मद्याखेट संसेवा वाहुल्पे नार्थदूषणम् ॥६॥
आलस्यासंयमौचापि दिवास्वापादयस्तथा ।
दोषाः भूपस्य संप्रोक्ताः योग्यता हानिकारकाः ॥७॥

भाषार्थः—शोक, निराशा, निन्दा जुआ खोटे वचन अधिकता से स्त्री, मद्य और आखेट (शिकार) का सेवन करना, अर्थ दूषण (देने योग्य को न देना न देने योग्य को देना) आलस्य, इन्द्रियों को अपने वश में न रखना और दिन में सोना आदि (जो कि पूर्व वर्णन कर दिये गये हैं यथा विश्वासघात) ये सब राजा के दोष वर्णन किये गये हैं तथा ये ही राजा की योग्यता को नष्ट करने वाले हैं ॥६ ७॥

भूपतेर प्रबन्धेन दुर्जनाः कर्मचारिणः ।
तेषांये बान्धवास्तेपि राज्यद्रव्यं हरन्ति हि ॥८॥
एवंदीनप्रजावित्त मन्या यात्प्राप्नु वन्त्यपि ।
सदादुर्व्यसनेष्वेव तद्द्रव्यं योजयन्तिते ॥९॥
शापंददातिभूपाय यदा सन्दुःखिताः प्रजाः ।
तदाल्पायुर्महीपालः प्राप्य नश्यति सर्वथा ॥१०॥

भाषार्थः—राजा का प्रबन्ध ठीक न होने से जो दुर्जन कर्मचारी हैं वे तथा उनके बान्धव राज्य के धन को चुराते (हरण) हैं इसी प्रकार दीन प्रजा के धन को भी अन्याय पूर्वक ग्रहण करते हैं। और वे उस धन को खोटे कामों में लगाते हैं जब प्रजा दुखी होकर राजा को शाप देती है तब राजा अल्प आयु प्राप्त कर विनाश को प्राप्त होता है ॥८-९-१०॥

U. A P. P. J

शून्यसिंहासनम्।

पौरुषहीनदशा ।

U A.P. PRESS, Ju.

धर्मकार्यं परित्यज्य स्वार्थी दीनाश्रयत्यपि ।
नैरर्थक्यं मद्यसेवां नीचस्तौर्यत्रिकं नृपः ॥११॥
दुर्व्यसनेषु नारीषु लग्नो राज्यात्पतत्यधः ।
शून्यंसिंहासनंतस्य राज्यमन्ये हरन्ति च ॥१२॥

भाषार्थः—जो राजा धर्म कार्य को छोड़कर स्वार्थ आदिकों का आश्रयण करता है तथा निरर्थकता मद्य पीना, तौर्यत्रिक (गाना, नाचना, बजाना) को ग्रहण करता है एवं खोटे व्यसन और नारियों में लगा रहता है उस राजा का शून्य सिंहासन को दूसरे हरने के लिये तैयार रहते हैं ॥११-१२॥

स्वार्थी दिंष्वभिलिप्तत्वा-दज्ञाने नैव योजनः ।
कर्तव्येषुकार्येषुशैथिल्यं प्रकरोत्यथ ॥१३॥
विषयेषु सुखं त्विच्छन् परित्यजति पौरुषम् ।
पशुवद् ज्ञानहीनः सन् लभतेचाधमां गतिम् ॥१४॥
पौरूषस्य परित्यागे दुर्बलो रासभो यदा ।
पतत्यन्नौ पक्षिणश्च यथेच्छं भक्षयन्ति तम् ॥१५॥
एवं पौरुषहीनानां जनानां जायते दशा ।
अतएवा पौरुषन्तु प्रकुर्यादबलोपि सन् ॥१६॥

भाषार्थः—जो मनुष्य अज्ञान वश स्वार्थादि दोषों में लीन हो कर करने योग्य कार्य में शिथिलता करदे हैं और विषयों में सुख की इच्छा करते हुए पौरुष को छोड़ देते हैं वह पशु के समान अज्ञानी मनुष्य अधोगति को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार पौरुष के त्याग देने पर दुर्बलता को प्राप्त हुआ गधा जब भूमि पर गिर जाता है तब उसको दूसरे पशु पक्षी अपनी इच्छा के अनुसार भक्षण करते हैं। इसी प्रकार निष्पौरुष मनुष्यों की दशा हुआ करती है अतएव दुर्बल मनुष्य को भी पुरुषार्थ करना चाहिये ॥१३-१४-१५-१६॥

बान्धवैराश्रितैर्भूपैः सुहृद्भिश्च विनानृपः ।
करहीनोऽभि जायेत न राज्यार्हो यतो भवेत् ॥१७॥

भाषार्थः—बान्धव, और आश्रितभूप (जागीरदार) तथा अपने मित्रों के विना राजा कर हीन (हाथ) होता है अतएव वह राज्य करने योग्य नहीं है ॥१७॥

राजर्षीणां विनाशिक्षां पादहीनो महीपतिः ।
गणनाऽज्ञेषुतस्यास्ति न राज्यार्होयतो भवेत् ॥१८॥

भाषार्थः—राजर्षियों की शिक्षा के विना राज पैरों से हीन समझा जाता है और उसकी गणना (गिनती) अज्ञों (मूर्खों) में होती है इसलिये वह राज्य करने योग्यं नहीं है ॥ १८ ॥

बलप्रदं विशुद्धञ्च सुखेनाश्नातियोऽशनम् ।
अव्यायामा दूवृद्धिमेति जठरं तस्य देहिनः ॥१९॥

भाषार्थः—जो प्राणी बलदायक और शुद्ध भोजन सुखपूर्वक करता है ऐसी दशामें व्यायाम न करने से उसका उदर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है अतः असमर्थ है ॥१९॥

बलबुद्धियुतं राज्यं बलवत्प्रति पाद्यते ।
दुर्दशां लभतेभूढ स्तन्मर्यादा विघातकः ॥२०॥
यथाल्पतरणऽभ्यासी पाथोधौ विनिमज्जति ।
तथा दशाऽभि जायेत कचिन्नास्त्य वलंबनम् ॥२१॥

भाषार्थः—बल और बुद्धि से जो युक्त राज्य है वह बलवान् राज्य कहा जाता है । ऐसे राज्य की मर्यादा को भंग करने वाला मनुष्य दुर्दशा को प्राप्त करता है । जिस प्रकार थोड़ा तरने के अभ्यास
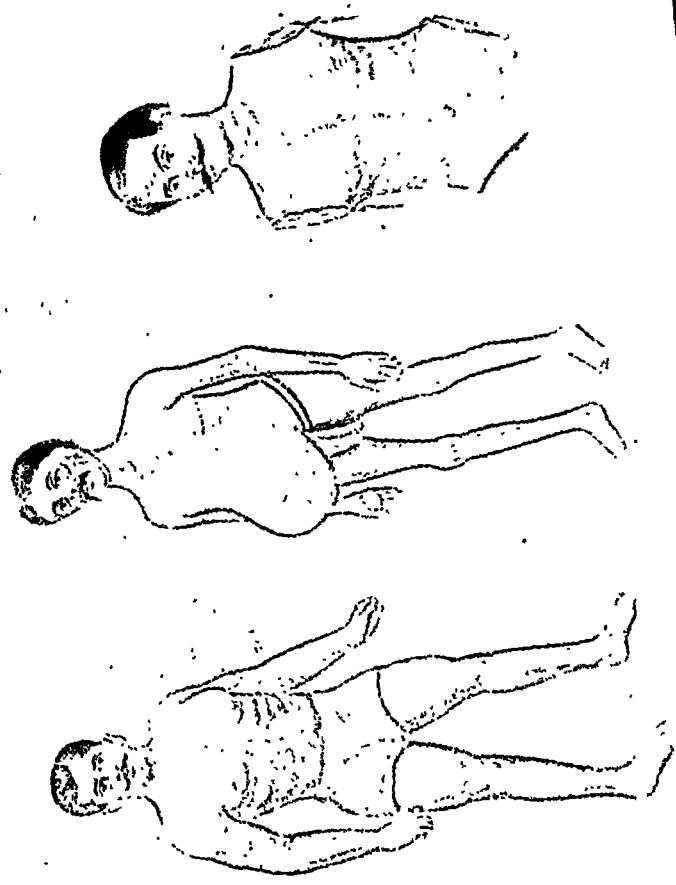
अधिकस्वार्थसुखादिफलम् ।

U A.P. PRESS, Ju.

मर्यादातन्तराज ।

U A.P. PRESS, Ju.

वाला मनुष्य समुद्र में डूब जाया करता है उसी प्रकार उस मर्यादा भंग करने वाले की दशा होती है उसके लिये कहीं पर आश्रय प्राप्त नहीं होता है ॥२०-२१

स्वार्थादीनांसमाधिक्ये नरो नाशयति स्थितिम् ।
तदैव शुभ चिह्नानि विनश्यन्त्येव निश्चितम् ॥२२॥

विजित्यातो मनुष्यस्तान् शुद्धभावं समाचरेत् ।
तदाबलं तथाबुद्धि स्तस्य वृद्धिमुपैति च ॥२३॥

भापार्थः—स्वार्थादि दोषों की अधिकता में पड़कर मनुष्य अपनी स्थिति को नष्ट कर लेता है तब उसके शुभ चिह्न निश्चित नष्ट हो जाते हैं । इसलिये उन स्वार्थादिकों को जीत कर शुद्ध भाव का आचरण करे तब उस मनुष्य के बल और बुद्धि वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२२-२३॥

स्वार्था दिष्वभि लिप्तत्वात्–क्षित्यधर्मः प्रजायते ।
नीचता चात्ममानित्वं पुंसां वसति मानसे ॥२४॥

समूलं नाशमायान्ति नराः लोकदुराशिषा ।
कार्यादौ सौख्यलिप्सुर्ना कार्यसिद्धिमुपैति नो ॥२५॥

अन्यायिनां सन्ततिश्च प्रभूना जायते यदा ।
युध्वा परस्परं शीघ्रं नाशमायाति सर्वथा ॥२६॥

एवमन्याय माश्रित्य यश्चिनोति धनंनरः ।
तदाऽद्रष्टेन रूपेण जायन्ते तस्य हानयः ॥२७॥

भापार्थः—स्वार्थादि दोपों में लगे रहने से संसार में अधर्म होता है तथा मनुष्यों के हृदय में नीचता और अभिमान आजाता है । तब संसार के दुरापीर्वाद से उक्त प्रकार के मनुष्य समूल नष्ट

हो जाते हैं। जो मनुष्य कार्य का प्रारम्भ करने के प्रथम ही सुख की इच्छा करता है इसके कार्य की सिद्धि नहीं होती। जब अन्याय करने वालों की सन्तान अधिक होती है तो सब प्रकार से आपस में युद्ध करके नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जो मनुष्य अन्याय पूर्वक धन संचय करता है तब अदृष्ट रूप से उस मनुष्य की हानियां होजाती हैं ॥२४-२५-२६-२७॥

शासनशक्तिप्रबन्धाचार निरूपणम्

विंशः पाठः

भूमेर्वायोस्तथाग्नेश्च चन्द्रस्य वारि सूर्ययोः ।
यमस्येन्द्रस्यतेजांसि प्राप्नुयात्क्षिति नन्दनः ॥१॥
शुद्धोच्चैश्वर भावैश्च स्वेष्टेभूत्वा दृढ स्तथा ।
संयमित्वं च संप्राप्य कुर्यान्न्यायं प्ररक्षणम् ॥२॥

भावार्थः—भूमि, वायु, अग्नि, चन्द्र, जल, सूर्य, यम और इन्द्र इन सबों के तेजों को राजा प्राप्त करे तथा शुद्ध, उच्च और ईश्वरभाव से अपने इष्ट में दृढ़ होकर एवं अपनी इन्द्रियों को वश में करके न्याय और रक्षा करे ॥१-२॥

धार्मिकाधार्मिकौक्षान्त्या यथा धरति मेदिनी ।
तथाक्षमांपालनाञ्च प्रकुर्यात्क्षितिनन्दनः ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार क्षमा पूर्वक धर्मात्मा और अधर्मात्माओं को पृथ्वी धारण करती है उसी प्रकार क्षमा और पालना राजा भी करता रहे ॥३॥

तत्त्वानेकीकरोत्येव जलंस्वीय गुणैर्यथा ।
तथैवैक्यगुणं भूपः प्राप्नुयात् मङ्गलेच्छ या ॥४॥
विरुद्धगामिदुष्टानां विधायाशु निबन्धनम् ।
कुर्यात्स्वीयाश्रितान्भूपो राज्य वृद्धिस्तदा भवेत् ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार पांचों तत्वों को जल एक कर देता है उसी प्रकार एकता के गुण को राजा अपने मंगल की इच्छा से

सीखे। जो दुष्ट विरुद्ध आचरण करने वाले हों उन्हें नीति द्वारा बांध कर राजा अपने आधीन करले तब उसके राज्य की वृद्धि होती है ॥४-५॥

अग्नितुल्योपयोगी स्यात्-पदार्थ निर्मितौनृपः ।
यथाग्निः समभावेन संस्पृशन्तं दहत्यपि ॥६॥

दण्डयेत् समभावेन तथा राजा प्रियान्स्वकान् ।
एवंकृतेनजायेत सर्वशौ राज्य मङ्गलम् ॥७॥

भाषार्थः—जिस प्रकार अग्नि समस्त सभ्यता के पदार्थों के बनाने में उपयोगी है उसी प्रकार राजा की भी उपयोगिता होनी चाहिये तथा जिस प्रकार समान भाव से अग्नि स्पर्श करने वाले को जलाती है उसी प्रकार अपने प्रिय मनुष्य को भी कुमार्ग चलने पर राजा समान भाव से दण्ड दे ऐसा करने से सब प्रकार से राज्य का कल्याण होता है ॥६-७॥

स्थावरेषुजङ्गमेषु यथा संविद्यते मरुत् ।
राज्यवृत्तं परिज्ञातुं चारासन्तु महीपतेः ॥८॥

भाषार्थः—जिस प्रकार स्थावर और जंगमों में वायु व्याप्त है उसी प्रकार राज्य के वृत्तान्त को जानने के लिये राजा के गुप्तदूत सर्वत्र विद्यमान रहने चाहिये ॥८॥

विधुर्यथागुणैः स्वीयैः प्रसादयति मानवान् ।
रक्षान्यायगुणै र्भूपः प्रजाः सन्तोष येत्तथा ॥९॥

भाषार्थः—जिस प्रकार चन्द्रमा अपने निर्मलता आदि गुणों से मनुष्यों को प्रसन्न करता है उसी प्रकार रक्षा और न्याय के गुणों से राजा प्रजा को सन्तुष्ट करे ॥९॥

यथाभानुर्जलंभूमेः समाकर्षति भानुभिः।
तथासुखेनभूपालः प्रजाभिः करमाप्नुयात् ॥१०॥

भाषार्थः—जिस प्रकार सूर्य भूमि से थोड़ा २ जलको खींचता है उसी प्राकार सुखपूर्वक प्रजा द्वारा थोड़ा २ कर राजा ग्रहण करे। अर्थात् जिससे प्रजा दुःखी और दरिद्री नहो इसलिये सूर्य के गुणों को राजा ग्रहण करे ॥१०॥

यमराजसमोभूत्वा राजादण्डंसमाचरेत्।
येनपापन्नकुर्वन्तु भयेनमानवाः क्षितौ ॥११॥

भाषार्थः—राजा यमराज की समानता को धारणकर के दण्ड-नीय मनुष्यों को दण्ड दे जिस के भय से संसार में मनुष्य पाप न कर सकें ॥११॥

न्यायमिन्द्रसमोभूत्वा कुर्याद्भूपोयथायथम्।
समानाजायतेवृष्टिः भूमेः सर्वस्थले यथा ॥१२॥

धनैः सम्पूरितो लोक जायते येन सर्वतः।
एवंभूमिपतिर्भूयात् ज्ञानसारसमीक्षकः ॥१३॥

भाषार्थः—राजा का कर्तव्य है कि इन्द्र के समान गुण ग्रहण कर के यथार्थ न्याय करे जिस प्रकार भूमि के सम्पूर्ण स्थल (शुद्ध या अशुद्ध) में समान रूप से वर्षा होती है जिससे सब ओर से संसार धन से पूरित हो जाता है इसी प्रकार राजा को भी ज्ञान पूर्वक सार को देखना चाहिये ॥१२-१३॥

राजाज्ञानीतथामन्त्री ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
विपत्तौसम्मतिंधीरः प्राप्नुयान्मन्त्रिभिर्बुधैः ॥१४॥

भाषार्थः—अर्थात् ज्ञान के सारको जानने वाला राजा तथा ज्ञान विज्ञान युक्त मन्त्री होना चाहिये। और आपत्ति काल में राजा को चाहिये कि धीरता धारण कर विद्वान् मन्त्रीयों से सम्मति प्राप्त करे ॥१४॥

स्वकीयेष्टेऽधिकप्रेम्णा योगमाया सुखप्रदा ।
क्षत्रियाणां मानसेतु प्रवेषति योग्यताम् ॥१५॥

योग्यतैव यदामायां समाकर्षतिनिश्चितम् ।
तदा न्यायोरक्षणश्च स्वस्त्यादिनवकन्तथा ॥१६॥

संयमोदान उत्साहः धर्माद्द्रव्यस्यसाधनम् ।
शुद्धोच्चैश्वर भावांश्च प्रवर्तन्तेप्रजास्वपि ॥१७॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में अधिक प्रेम रखने से सुखों को देने वाली योगमाया क्षत्रियों के हृदय में योग्यता प्रविष्ट करती है । जब यह योग्यता ही माया को निश्चय रूप से खींचती है तबही न्याय, रक्षा और स्वस्त्यादि नों बातें होती हैं । तथा संयम, दान में उत्साह, धर्म पूर्वक पैदा करना, शुद्ध, उच्च और ईश्वर भाव ये राजा में बरतते हैं ॥१५-१६-१७॥

वृद्धिंवाप्रोन्नतस्थानं वाञ्छन्ति मानवाश्चये ।
राजविद्योपदेशेन सुमतिं शक्ति मेव च ॥१८॥

ज्ञानंविशुद्धंवालोके प्राप्नुवन्तुहितेच्छ या ।
न्याय रक्षा धिकारेण क्षत्रियाणान्तु संस्थितिः ॥१९॥

भाषार्थः—जो मनुष्य वृद्धि और उच्च पद को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे राजविद्या के उपदेशानुसार, सुमति, शक्ति, और विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करे । तथा न्याय और रक्षा करनेसे ही क्षत्रियों की संसार में स्थिति होती है ॥१८-१९॥

U.A.P. PRESS, Ju.

श्रीशिवार्द्धांगिनि ।

सर्व शक्तिमति! सर्वे! शिवे! शाम्भवि प्रेरिके।
शिवार्द्धाङ्गिनि? माहेशि? शान्ति? वीरान् शिवप्रिये? ॥२०॥
महामायापते? सर्व शक्तिनाश्च यते? तथा।
चन्द्रशेखरहे शाम्भ? पशूनाश्चा यते? भव? ॥२१॥
ईश? हे शंकर? सदा हे महाशिव सर्वशः।
महादेवचमे दुःखं दूरीकृत्य वस गृहे ॥२२॥

भाषार्थः—हे सर्व शक्ति मति ? हेसर्वे ? हे शाम्भवि ? हे प्रेरिके ? हे शिवार्द्धाङ्गिनि ? हे शान्ति ? हे वीरे ? हे शिव प्रिये ? (उक्त संबोधन पार्वतीजी के हैं) हे महामाया पते ? हे सर्व शक्ति पते ? हे चन्द्रशेखर ? हे शाम्भ ? हे पशु पते ? हे भव ? हे ईश ! हे शंकर ? हे महाशिव ? हे महा देव ? सदा सब प्रकार से मेरे दुःखों को दूर करने के लिये मेरे गृह में निवास करो। हे सर्व शक्ति मति, प्रजा रक्षण हेतवे ॥२०-२१-२२॥

हेसर्व शक्ति मति? मे प्रजा रक्षण हेतवे।
नित्यमभ्यस्त सेनायाः बलंस्यादतुलं सदा ॥२३॥
शर्वे? धर्म युतो भूत्वा कुर्याम धनसंचयम्।
शिवे? मे कुरु कल्याणं सर्वत्रराज्य मण्डले ॥२४॥
शाम्भवि? नान्य जीवैःस्या-दाश्रयो मेकदाचन।
प्रेरिके! मेप्रजाःनित्यं सन्मार्गेषु चलन्तुहि ॥२५॥
शिवार्द्धाङ्गिनि स्वांपत्नी-जानीयामर्द्ध देहवत्।
महत्वं देहि माहेशि! सर्वथा पृथिवी तले ॥२६॥
शिवप्रिये! प्रियःस्याम स्वभार्यायाश्चसन्ततम्।
प्रजाप्रीतिकरश्चापि सर्वार्थ सिद्धिहेतवे ॥२७॥
शान्ते! मह्यं सुखंदेहि शान्ति वृद्धिं निरन्तरम्।
एक वीरे! देहि मह्यं वीरभावंतु केवलम् ॥२८॥

भाषार्थः—हे सर्व शक्तिमति ! प्रजा की रक्षा के लिये नित्य-प्रति अभ्यास प्राप्त की हुई मेरी सेना का अतुलवल हो। हे शर्वे ! मैं धर्मयुक्त होकर ही धन को इकट्ठा करूं। हे शिवे ! मेरे सम्पूर्ण राज्य में कल्याण हो। हे शाम्भवि ! मेरा अन्य जीवों के साथ आश्रय न हो। अथात् मैं स्वतन्त्र रहूं। हे प्रेरिके ! मेरी प्रजा शुभ मार्ग पर चलने वाली हो। हे शिवार्द्धाङ्गिनि ! मैं अपनी पत्नी को अपनी आधी देह के समान समझूं। हे महाशिंह ! इस पृथ्वी में मुझे सदा वढ़ाई दो। हे शिवप्रिये ! मैं अपनी स्त्री का प्रेमी वनूं तथा सव कामनओं को सिद्ध करने के लिये प्रजा का भी प्रिय होरहूं। हे शान्ते ! मुझे शान्ति, वृद्धि और सुख प्रदान करो। हे एक वीरे ! मुझे एक वीर वनाओ अर्थात् मैं एकला ही गणनीय वीर वनूं ॥२३-२४-२५-२६-२७-२८॥

महामायापते ! मह्यं महामाया पतिं कुरू ।
सर्वशक्तिपते! मह्यं शक्तिं देत्यक्षयांमुदा ॥२९॥

चन्द्र शेखरे ! हे शाम्म-शिव ? स्याम प्रजा प्रियः ।
शर्व हे ममसर्वस्वं-प्रजा एव भवन्तु हि ॥३०॥
पालना य पशुपते ? जीवानान्दे हि मे मतिम् ।
शंकरस्यात्सदा चारैः वृत्तज्ञानं हितेच्छ या ॥३१॥

ईश मे देहि कृपया स्वाभि भावं निरन्तरम् ।
महेशत्वयि प्रीतिस्यात्-सर्व मङ्गल कारिणी ॥३२॥
महादेव कृपां कृत्वा दान शक्तिं प्रदेहि माम् ।
कल्याणंकुरु मेनित्यं महाशिव ! मही तले ॥३३॥
दुरितानि मदीयानि नाशत्वं महा मते ! ।
स्थितं मां कुरुदेवेश न्यायार्थं रक्षणाय च ॥३४॥

भाषार्थः—हे महा माया पते ! मुझे सम्पूर्ण सम्पत्तियों का स्वामी वनाओ। हे सर्व शक्ति पते ! मुझे अक्षय शक्ति दीजिये।

हे चन्द्रशेखर ! शम्भ शिवभव ! मैं प्रजा का प्रेमी बनूं । हे शर्व !
मेरा सर्वस्व प्रजा ही होवे । हे पशुपते ! प्राणियों की पालना के लिये
मेरी बुद्धि बनाओ । हे शंकर संसार के हित की इच्छा से मैं गुप्तदूतों
द्वारा प्रजा के वृत्तान्त को जानूं । हे ईश ! मुझपर कृपा कर के मुझे
स्वामी भाव प्रदान कीजिये । हे महेश ! सम्पूर्ण कल्याण करने वाली
मेरी प्रीति आप में हो । हे महादेव कृपाकर मुझे दान शक्ति प्रदान
कीजिये । हे महाशिव ! मेरा नित्यप्रति कल्याण कीजिये । हे महामते !
मेरे पापों को नष्ट कीजिये । हे देवेश ! मुझे न्याय और रक्षा के लिये
स्थित कीजिये ॥२९-३०-३१-३२-३३-३४॥

यथाबल भवेद्यस्य पौरुषं च भवेद्यथा ।
तथा प्राप्तिं करोत्ये व प्राकृतो नियमः स्मृतः ॥३५॥

भावार्थः—जिस प्राणी का जितना बल तथा पौरुष होता है
वह उतनी उस संसार में अपने बल पौरुष अनुसार प्राप्ति कर
सकता है । अर्थात् धन, जन, भोजन, यश आदि बल पौरुषानुसार
ही प्राप्त हो सकते हैं । यह प्राकृतिक नियम है ॥३५॥

राज्यमङ्गलाय क्षत्रियसभामंगल समाप्ति निरूपणम्

एक विंशः पाठः

शुद्धस्थानेविशुद्धर्त्तौ प्रबन्धचिन्तनाय वै ।
द्विवारंप्रतिवर्षेस्यात् क्षत्रियाणांशुभा सभा ॥१॥

राजविद्योपदेशस्य तस्यां स्यात्परिचिन्तनम् ।
सुप्रचारविचारोवा राज्येयेनाऽस्तुमङ्गलम् ॥२॥

भाषार्थः—शुद्ध स्थान और विशुद्धऋतु में "राज्य का प्रबन्ध किस रीति से करना चाहिये" इस बात का विचार करने के लिये प्रत्येक वर्ष में क्षत्रियों की मनोहर सभा होनी चाहिये । और उस सभा में राजविद्या के उपदेश का चिन्तन तथा राज्य में अच्छी बातों के प्रचार के लिये विचार होना चाहिये जिस से राज्य में कल्याण बना रहे ॥१-२॥

वर्षेवर्षे पुण्यतीर्थे राज्ञांस्यान्महतीसभा ।
यस्यांस्यात्सर्वलोकानां हिताय परि चिन्तनम् ॥३॥

भाषार्थः—प्रत्येक वर्ष में पुण्य तीर्थ स्थान पर एक बार राजाओं की महा सभा होजाना चाहिये जिसमें सम्पूर्ण संसारिक मनुष्यों के हित के लिये विचार किया जाय ॥३॥

आश्रितानांमहीपानां सभ्यानां प्रकृतेस्तथा ।
विशेषेषुचकार्येषु राजासम्मति माप्नुयात् ॥४॥

राज्यप्रजावर्गसंयुक्तचक्राकारसभा ।

U. A P. P. J.

राज्यान्तरङ्गसभा ।

UDAYA ART P. PRESS.
JODHPUR.
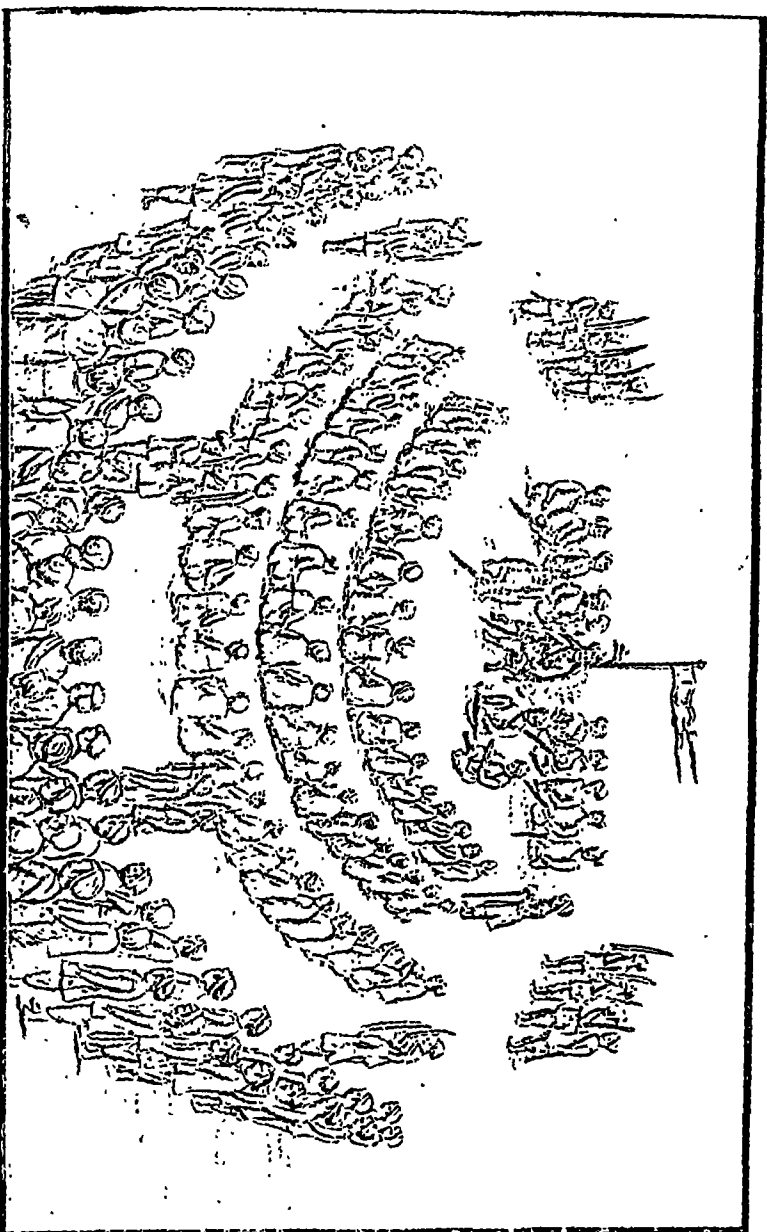
राज्यवर्गप्रजायुक्तार्द्धचन्द्राकार महासभा ।

UDAYA ART P. PRESS.
JODHPUR

राज्यप्रजावर्गसंयुक्तसोपानाकार सभा ।
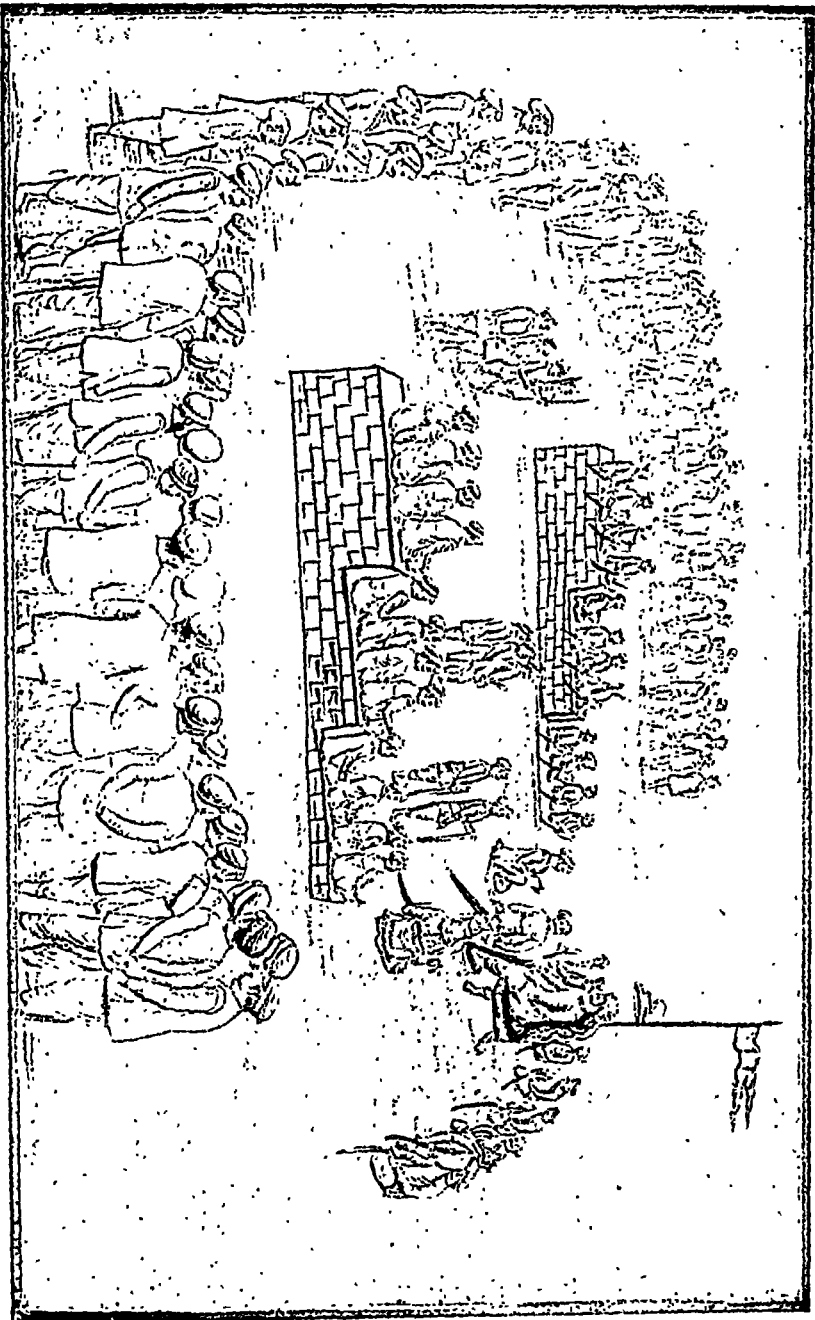
UDAYA ART P. PRESS
JODHPUR.

राज्यवहिरङ्गसभा ।

UDAYA ART P. PRESS.
JODHPUR.

भाषार्थः—राजा को चाहिये कि विशेष कार्यों में अपने आश्रित रहने वाले जागीरदार तथा प्रजा से निश्चित किये हुए सभासदों की सम्मति को प्राप्त करे ॥४॥

प्रत्येकजातिपुरुषाः जात्युन्नति समीहया ।
स्थापयन्तुसभारम्याः भूलोके स्यात्तदाशुभम् ॥५॥

भाषार्थः—प्रत्येक जाति के पुरुषों को चाहिये कि अपनी जाति की उन्नति की इच्छा से अर्थात् प्रचलित कुरीतियां हटाने तथा सुरीति चलाने की इच्छा से सभायें स्थापित करें क्यों कि ऐसा करने से ही संसार में प्रत्येक जाति के मनुष्यों का कल्याण हो सकता है ॥५॥

श्रीपार्वत्युवाच

तीव्रबुद्धिंबलंतीक्ष्णं प्राप्नुवन्तिकुतोजनाः ।
इत्येवंतुकृपांकृत्वा ब्रूहिमांप्राणवल्लभः ? ॥६॥

भाषार्थः—हे नाथ ! (शंकरजी) तीव्र बुद्धि तथा तीक्ष्ण बल को मनुष्य कहां से प्राप्त करते हैं यह सब बातें कृपा कर कहिये ॥६॥

श्रीशंकरउवाच

राजविद्योपदेशेन बुद्धिस्तीव्राप्रजायते ।
बलं तीक्ष्णमानवानां स्यादतः क्षितिमङ्गलम् ॥७॥

भाषार्थः—श्रेष्ठ राजविद्या के उपदेश से मनुष्यों की तीव्र बुद्धि तथा तीक्ष्ण बल होता है अतएव (तीव्र बुद्धि और तीक्ष्ण बल होने से ही) संसार में मङ्गल रहता है ॥७॥

राज्यशक्तिः क्षत्रियाणां विद्यैषाविद्यतेक्षितौ ।
चिरकाले राज्याणि निर्धाराणिभवन्ति हि ॥८॥

पुनः शाणाभिसंयोगात् निशितानि भवन्ति च ।
तथैवराजविद्यायाः शक्तिः स्याच्छासने पुनः ॥९॥

भाषार्थः—यह राजविद्या संसार में क्षत्रियों की राज्य करने की शक्ति है। जिसभांति समय अधिक हो जाने से शस्त्रों की धार जाती रहती है तथा दुबारा शाण पर चढ़ाने से वे तीक्ष्ण (तेज, धारयुक्त) हो जाते हैं इसी प्रकार राजविद्या के ज्ञान से दुबारा शासन (राज्य) करने में शक्ति होजाती है ॥८-९॥

एतच्छास्त्रानुसारेण योनृपः शास्तिमेदिनीम् ।
मङ्गलंतस्यजायेत सुखेनदीर्घजीवितम् ॥१०॥

भाषार्थः—इस राजविद्या नामक शास्त्रानुसार जो राजा राज्य करता है उसका कल्याण तथा सुख पूर्वक दीर्घायु होती है। अर्थात् राजविद्यानुसार राज्य करने वाला राजा, प्रजा का आर्शीवाद प्राप्त करता है, धन, धान्य और सन्तान वाला होकर चिरकाल तक अखण्डित, सुख पूर्वक राज्य भोगता है ॥१०॥

आवयोरेषसंवादः सर्गादौसंप्रजायते ।
स्वस्त्यादि नवकाचारो-ज्ञानश्चैते न जायते ॥११॥

भाषार्थः—शंकर भगवान्, पार्वतीजी से कहते हैं कि यह हम दोनों का संवाद सर्ग के आदि काल में हुआ करता है तथा इस से स्वस्त्यादि नौ बातें बरतती हैं और इसी द्वारा क्षत्रियों में शासन के ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥११॥

रक्षापरोभूमिपतिर्यदास्यात्-
विज्ञोऽनिशं न्यायमतिं दध्यात् ।
दक्षस्तथाधर्मकृतौ च भूया-
दाशिवंस्याद्भुवनेनित[illegible]म् ॥१२॥

भाषार्थः—जब विज्ञ राजा रक्षा कर्म में लगा रहे तथा निरंतर अपनी बुद्धि को प्रजा का न्याय करने में लगावे एवं धार्मिक कार्यों में कुशलता प्राप्त करे तब संसार में सर्वदा कल्याण रह सकता है ॥१२॥

यत्किंचित्कार्यजातं स्यात् श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ।
तस्मिन् सिद्धिरवश्यं स्यात् नचविघ्ना भवन्ति हि ॥१३॥

भाषार्थः—जो कोई काम श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक किया जाय उस कार्य में अवश्यमेव सिद्धि होती है एवं ऐसे कार्य में विघ्न भी उपस्थित नहीं होते ॥१३॥

राजविद्योपदेशस्य संप्राप्तिः सुकृतै र्भवेत् ।
सत्यज्ञानं तया तेन स्वस्त्यादिनवकं भुवि ॥१४॥

भाषार्थः—श्री राजविद्या के उपदेश की प्राप्ति सुकृतों से ही होती है तथा उस प्राप्ति से सत्यज्ञान प्राप्त होता है सत्यज्ञान से स्वस्त्यादि नौ बातें संसार में वरतती हैं ॥१४॥

इष्टप्रीतिः सुमत्यास्यान्न्यायः शक्त्याच रक्षणाम् ।
शुद्धोच्चैश्वरभावाः स्यु स्तदा राज्यं दृढं भवेत् ॥१५॥

भाषार्थः—अपने इष्ट में प्रेम, सुमति से न्याय, शक्ति से रक्षा तथा राजाओं के शुद्ध [illegible]च्च तथा ईश्वर भाव हों तब राज्य की दृढ़ता हो सकती है ॥१५॥

एटामण्डलका[illegible] [illegible]जनगरे विप्रान्वयो यः सुधीः
वैद्येन्द्रो [illegible]यदेव इद्धविभवस्तस्यात्मजोऽयं कविः ।
विख्यातो र[illegible] [illegible]त्त इत्यभिधया श्रीराज[illegible]विद्यामिमाम्
संवादै[illegible] [illegible]ह पञ्चभिः प्रकुरुते पूर्णा[illegible] [illegible]वत्वीश्वरः ॥१६॥

भाषार्थः—एटा मण्डलान्तर्गत कासगंजनामक नगर में रहने वाले विप्रवंशोत्पन्न, वैद्यों मे इन्द्रके समान प्रतापशाली पण्डित जयदेवदत्त कापुत्र रविदत्त इस नाम से विख्यात यह कवि इस राजविद्या को पांच संवादों में लिख कर यहां सम्पुर्ण करता है सो भगवान् से प्रार्थना है कि सर्वदा रक्षाकरें ।

इति श्री राजविद्यां पञ्चमोपदेशः